डा० शेफाली

पुस्तक के लेखक भट्टजी हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि और नाटककार हैं। समस्या का गहन अध्ययन, विषय-वस्तु का सूक्ष्म चयन, मार्मिक गठन और प्रवाहमयी अर्थ-गर्भित शैली का अनूठापन, ये सब उनके साहित्य की विशेषताएँ हैं।

डा० शेफाली—लेखक के 'नये मोड़' सामाजिक उपन्यास का परिवर्द्धित-संस्करण है। इसमें देश की राजनीतिक और सामाजिक विषमताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इस चरित्र-प्रधान उपन्यास में मानव-जीवन के उत्थान और पतन का जो अन्तर्द्वन्द्व परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ, उसका विश्लेषण ही इस उपन्यास का मूल लक्ष्य है।

डा० शेफाली

['नये मोड़' उपन्यास का परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक

उदयशंकर भट्ट

१९६०

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा — दिल्ली

लेडी डाक्टर शेफाली ने बाहर घण्टी की आवाज सुनते ही नौकर को पुकारकर कहा—"देखो तो बाहर कौन है ? मालूम होता है कोई रोगी है।"

नौकर दरवाजे से लौटकर बोला—"एक आदमी बहुत जरूरी काम से आपसे मिलना चाहता है। मैंने कहा, 'इस समय नहीं मिल सकतीं डाक्टर साहब, सबेरे आना।' "

"हाँ हाँ, बुलाओ न, कौन है ?" शेफाली ने खाने की मेज पर बैठे-बैठे प्रतीक्षा करते हुए कहा। इस समय शेफाली भोजन के लिए बैठ रही थी। इसी बीच में यह पुकार हुई। नौकर के साथ ही आदमी बरामदे में आकर खड़ा हो गया और बेचैनी से ऐसे खड़ा हो गया जैसे उसका सारा शरीर विवशता का रूप धारण किये हो, या कि वह अपने सर्वांग से लेडी डाक्टर को एकबारगी बिना रुके देख लेना चाहता हो। रात के नौ बजे का समय था। दिन-भर रोगियों को देखने व दवा-दारू के बाद स्नान करके भोजन के लिए बैठते ही इस व्यक्ति ने आकर दस्तक दी। शेफाली के लिए यह कोई नई बात तो थी नहीं, रोज ही ऐसा होता था। वह परोसी हुई थाली छोड़कर बाहर बरामदे में आ गई और उसकी तरफ ऐसे देखने लगी मानो उसकी घबराहट को वाणी दे रही हो।

आगन्तुक ने लेडी डाक्टर को देखते ही घिघियाते हुए कहा—"डाक्टर साहब, सेठ राममोहन के घर बहुत तकलीफ है। उनकी स्त्री मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। जल्दी चलिए। बाहर मोटर खड़ी है।"

"क्या बात है ?"

"ठीक-ठीक प्रसव नहीं हो रहा। मालूम होता है कष्ट के मारे उनके प्राण निकल जायँगे। आपको तकलीफ...तो..." आगन्तुक चुप हो गया। शेफाली चुपचाप भीतर कमरे में गई और जरूरी दवाइयों का बक्स लेकर मोटर में आ बैठी। मोटर अबाध गति से चल पड़ी।

राममोहन की पत्नी को सचमुच बहुत कष्ट था। वह दर्द के मारे बेहोश हो गई थी। एक नर्स और कई डाक्टर वहाँ थे। नये-नये इन्जेक्शन दिये जा रहे थे, परन्तु कोई लाभ नहीं हो रहा था। कभी-कभी चेतना हो जाती, उस समय उसकी दर्द-भरी चिल्लाहट सुनकर वहाँ बैठे हुए लोगों के प्राण विचलित हो उठते थे। राममोहन, जो कभी साधना के कमरे और कभी बाहर बरामदे में टहल रहा था, शेफाली को देखते ही दोनों हाथ मसलता हुआ निहोरे के स्वर में कहने लगा—"मेरी पत्नी को बचाइए डाक्टर! उसके प्राण निकल रहे हैं," इतना कहते हुए वह शेफाली को रोगिणी के कमरे तक छोड़ आया। वह धड़धड़ाती भीतर चली गई और उपचार करने लगी। उसने नर्स को छोड़कर बाकी सबको कमरे से बाहर कर दिया।

थोड़ी देर के बाद कमरे से बाहर आकर उसने राममोहन से पूछा—"दोनों में से एक बच सकता है; बच्चा या उसकी माँ।"

"क्या दोनों नहीं ?"

"नहीं, जल्दी बोलो।"

राममोहन कुछ देर रुका। अन्त में उसके मुँह से निकल गया—"उसकी माँ को, डाक्टर साहब !"

शेफाली भीतर चली गई। सब लोग बाहर बेचैनी से टहल रहे थे। बेचैन राममोहन उस समय भी बीच-बीच में टेलीफोन पर कभी बाजार-भाव की आलोचना करता, कभी खरीदे या बेचे हुए माल की खबरें अपने साथी व्यापारियों को दे रहा था। इसी बीच कभी-कभी बात करते-करते हँस भी पड़ता था, जैसे पत्नी का कष्ट और घर का वातावरण

व्यापार में कहीं खो गया है। जिस समय शेफाली साधना के कमरे से लौटी तब तक और लोग चले गए थे। केवल राममोहन टेलीफोन पर हँस-हँसकर उस दिन के व्यापार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था। साधना की चीख-पुकार कम हो रही थी। कभी-कभी वह चिल्ला उठती, फिर शान्त हो जाती। इसी बीच में शेफाली ने आकर सूचना दी—"तुम्हारी पत्नी बच गई है, बच्चे को काटकर निकाला गया है।" इतना कहकर वह भीतर चली गई।

राममोहन की उम्र अट्ठाईस वर्ष और उसकी पत्नी की बाईस साल; दोनों का विवाह हुए पाँच साल हो चुके थे। यह पहला प्रसव-काल था। विवाह के बाद राममोहन के माता-पिता का देहान्त हो चुका था। गृहस्थी का सारा भार उन दोनों पर आ पड़ा। पत्नी साधना जीवन के स्वप्नों की तरह राममोहन को प्रिय थी, इसीलिए बच्चे का मोह छोड़कर उसने साधना को बचाने का आग्रह शेफाली से किया। वैसे भी राममोहन उन लोगों में अपने को नहीं गिनता था जो मूल की अपेक्षा सूद की परवाह करते हैं। वह मानता था, बल्कि उसने सोचा कि फूल की रक्षा के लिए पेड़ की डाल काटना न केवल अदूरदर्शिता ही है, मूर्खता भी है। साधना राममोहन के जीवन की साधना थी। साधना के साथ उसने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध ब्याह किया था।

राममोहन जब बी० ए० के आखिरी साल में था, तभी साधना फर्स्ट इयर में दाखिल हुई। साधना के रूप-सौन्दर्य पर भौंरों की तरह कालेज के लड़के मँडराने लगे। राममोहन में कोई विशेषता नहीं थी—न तो वह पढ़ाई में तेज था, न अच्छा खिलाड़ी और न डिबेटर। वह उनमें भी नहीं था जिन्हें लड़कियों को अपनी ओर खींचने की कला आती है; जो जबान में चूरन का-सा चटपटापन भरकर, आँखों से शराब पीकर, हाथों से जमीन और आसमान दोनों के छोर मिलाते हैं; जो प्रोफेसर के सामने किताबों में आँखें गड़ाए रहते हैं, कानों से देखते हैं और सौन्दर्य का मोहन मन्त्र पढ़ते रहते हैं। वह एक बीच का लड़का

था। साधारण ज्ञान, साधारण रूप, एक तरह से साधारण मध्यवित्त का प्राणी, जो संसार में केवल मनुष्य-संख्या बढाने आते हैं। फिर भी साधना ने राममोहन को ही पसन्द किया। वह हर नये काम के लिए भरपूर चन्दा देता, रुपया ऐसे लुटाता जैसे जवानी में दिल लुटाया जाता है। बस, इसी से एक दिन मेनका ने विश्वामित्र को पसन्द कर लिया। राममोहन का भाग्य हँसा और साधना का रूप। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया और एक दिन दोनों स्त्री-पुरुष के अनादि बन्धन में जकड़ गए। उस दिन राममोहन ने देखा कि उसके भाग्य की पुरानी गाँठों में से एक ने खुलकर उसकी सोती हुई प्यासी आशा को तृप्ति और विश्वास के रूप में बदल दिया है। उस समय उसने न तो उत्सुकता, जिज्ञासा और तर्क के मर्म तक पहुँचने की चेष्टा की और न वे पुराने परिच्छेद ही दुहराए। वह सौन्दर्य की मादक साँसों के तारों से अपने जीवन की रागिनी मिलाकर गाने लगा। इधर साधना, जो गरीब लड़की थी, जिसके कुल से लहर की तरह चंचल लक्ष्मी बहुत दिनों से रूठ गई थी, इस अभिनव किन्तु नई सहेली लक्ष्मी को पाकर फूली न समाई। उसने साधारण राममोहन को असाधारण लक्ष्मी का कृपा-पात्र मानकर आत्म-समर्पण करने में जरा भी झिझक का अनुभव नहीं किया।

यही बात एक बार उसने कालेज की एक सहेली से कही थी—"मेरे पास न तो विद्या की चमक है न बुद्धि की तेजी; मेरे पास तो रूप है। फिर क्यों न मैं अपने रूप को ही सोने का मुलम्मा चढ़ाकर चमका दूँ, और यह काम राममोहन-जैसे व्यक्ति से शादी करके ही हो सकता है। क्यों न मैं उसके धन से अपने को गर्वित करूँ।"

सहेली ने जवाब दिया—"ठीक है, सभी मनुष्य तेज नहीं होते, परन्तु धन की चमक से जो भीतर नहीं होता वह भी चमकने लगता है। धन में और कुछ चाहे न हो वह अपने गर्व से, अपने प्रसाधन से मनुष्य को राम से लेकर रहीम तक का पार्ट अदा करने में बाहरी सहायता तो

कर ही सकता है।"

साधना ने उत्तर दिया—"हाँ, यही बात है।"

जिस समय दूसरी बार शेफाली साधना के कमरे से आई तो चम्पा के फूल की हल्की मुस्कराहट के समान उसने राममोहन को साधना के बच जाने की बधाई दी।

राममोहन ने जड़ता से भरी कृतज्ञता के साथ शेफाली के शुभ्र मुख पर लहराते यौवन की झीनी छाया में एक मुस्कराहट देखी और आभार स्वीकार करते हुए कहा—"धन्यवाद, आपकी कृपा से ही मेरी पत्नी को जीवन-दान मिला है।"

कहने को यह कहा जा सकता है कि शेफाली राममोहन को देखकर एक बार भीतर ही भीतर चौंक-सी उठी, परन्तु उसने प्रत्येक बीमार के उपचार को दिखाने वाली आशावादिता और स्वभाव की गम्भीरता से अपने हृदय के बवंडर को दबा लिया और उसी मुस्कराहट के साथ वह रात की फीस के डबल रुपये लेकर मोटर में आ बैठी। राममोहन ने मोटर स्वयं ड्राइव करने के लिए शेफाली का दवा का बक्स अपने-आप उठा लिया। दोनों आकर आगे की सीट पर बैठ गए। रास्ते में कोई बात नहीं हुई। राममोहन सड़क के दोनों ओर बिजली के प्रकाश की तरह साधना और शेफाली का प्रकाश पाकर मोटर की अबाध गति के साथ-साथ स्वयं भी दौड़ने लगा। केवल उतरते समय शेफाली की तरफ का दरवाजा खोलते हुए राममोहन ने अपना हृदय कृतज्ञता से भिगोकर पूछा—"क्या आप साधना को प्रतिदिन दो बार देखने का कष्ट उठा सकेंगी ?"

"क्यों नहीं, जब तक वह ठीक नहीं हो जाती, तब तक मैं सुबह-शाम दोनों समय आकर देख लिया करूँगी।"

"मेरी मोटर आपको ले आया ले जाया करेगी।"

शेफाली बक्स उठाकर धड़-धड़ करती सीढ़ियों पर चढ़ गई। राममोहन खाली मोटर लेकर लौट आया, जैसे नये बिजली के प्रकाश

में दीये की रोशनी मद्धम पड़ गई हो।

साधना अपने कमरे में लेटी थी। मुँह खुला हुआ और सारा शरीर दूध-सी धुली हुई सफेद चादर से ढका था। मालूम होता था जैसे पीली कनेर का एक गुच्छा चाँदनी में खिला पड़ा हो। इस समय उसे अपेक्षाकृत कम कष्ट था, इसीलिए उसे नींद आ गई थी। नर्स उसकी खाट के पास आरामकुरसी पर ढुलक गई थी। राममोहन साधना को देखकर अपने कमरे में लौट आया और अपने व्यापार के काम में लग गया। परन्तु इतना निश्चित है कि उसका मन काम में नहीं लग रहा था और न उसे नींद ही आ रही थी। प्रत्येक नये कागज पर दस्तखत करते हुए साधना की कष्ट-भरी कराह और शेफाली की छाया-मूर्ति उन अक्षरों में उलझ जाती, जैसे वह प्रत्येक बार बक्स में से नई दवा की शीशी निकाल रही हो या थर्मामीटर का पारा झाड़ रही हो, या इंजेक्शन की सुई साधना के शरीर में चुभोकर जिन्दगी की बूँदें उसके शरीर में डाल रही हो। और इसी बीच उग्र गर्जन की तरह साधना की विकृत स्वर-भरी पुकार अक्षरों के सीधे-टेढ़े रेखा-केन्द्रों पर आकर रुक जाती हो। यह पहला ही अवसर था, जब उसने जिन्दगी और मौत की लड़ाई देखी और इतने निकट से कि साधना की चीख के साथ-साथ जैसे उसके शरीर से भी कोई चीज खिंची जा रही हो। अन्त में सब काम जैसे का तैसा छोड़कर वह अपने पलँग पर जा लेटा। उसे कब नींद आ गई, यह उसे भी याद न रहा।

शेफाली दूसरे दिन प्रातःकाल हिमावृत कमलिनी की तरह वही बक्स लिये साधना को देखने आ गई। साधना निश्चल प्रतिमा की तरह पड़ी हुई थी, जैसे जिन्दगी-मौत की गोद से छीनकर लाई गई हो। उसने आँखों से ही शेफाली को प्रणाम किया और होंठ हिलाकर उसके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की। शेफाली ने थर्मामीटर लगाकर, नब्ज देखकर उसके धन्यवाद को स्वीकार किया और चुपचाप नर्स से दवा-दारू की व्यवस्था करके पाँच-सात मिनट बाद ही लौट गई।

राममोहन अभी खाट पर पड़ा अपनी रात की नींद का उत्तरार्द्ध, आलस्य उतार रहा था। उसे यह ध्यान भी न था कि लेडी डाक्टर समय की इतनी पाबन्द होगी। वह जो मोटर भेजने का वचन दे आया था, उसकी तो अभी भूमिका भी तैयार न थी। उसने अपने आलस्य को आज पहली बार धिक्कारा और चटपट शेफाली से मिलने के लिए तैयार होने से पहले ही देखा कि शेफाली साधना को देखकर चली भी गई है। शाम को शेफाली को स्वयं लाने की प्रतिज्ञा-सी करके वह अपने काम में लग गया। दिन-भर उसका मन दुकान के काम में नहीं लगा। राममोहन को दुकान पर काम भी क्या था ! वह बैठा-बैठा बाजार के भाव-ताव टेलीफोन पर पूछता या आये-गये वैसे ही लोगों से गप्प मारता। मुनीम लोग अपना काम करते। धन के बँटवारे में चौदह आने भाग उसी का होता, क्योंकि उसने मनुष्य का मस्तिष्क खरीद लिया था। जैसे नमक की खान में हर चीज नमक बन जाती है इसी तरह राममोहन की दुकान पर काम करनेवाले व्यक्तियों का परिश्रम धन की राशि बढ़ाने में केवल राममोहन का साथ देता। इसी बीच में दो बार वह साधना को भी देख आया। वह मुरझाये हुए बासी फूल की तरह नर्स की देख-रेख में उसी तरह पड़ी हुई थी। नींद उसे जब-तब घेर लेती और आँख खोलकर देखती कि इस कष्ट के बदले में मिला उसे कुछ भी नहीं है। केवल कटे हुए मांस पिंड की स्मृति दर्द में लिपटी हुई रह गई है। नर्स ने जब शेफाली की कार्यकुशलता की प्रशंसा में अतिरेक-विवेक का ध्यान न रखकर स्तोत्र पढ़ना प्रारम्भ किया तो राममोहन के हृदय का जैसे द्वार खुल गया, जिसमें प्रेम-सा चिपचिपा रस बहने लगा, ऐसा उसे भासित हुआ। शेफाली की रात की मूर्ति उसके ध्यान में आ गई और उसी समय उसे लिवा लाने की प्रतिज्ञा को दुहराकर वह दुकान पर चला गया।

यथासमय राममोहन मोटर लेकर शेफाली को लेने गया। उस समय डिस्पेन्सरी में बैठे हुए एक बूढ़े-से कम्पाउण्डर ने उसे बताया कि

डाक्टर दो बजे दोपहर से जो गई हैं तो अभी तक उन्होंने लौटने का नाम नहीं लिया है और कोई ठीक भी नहीं है। राममोहन चुपचाप एक कुरसी पर जा बैठा। शेफाली के रोगियों को देखने के कमरे में एक कलेण्डर और महात्मा बुद्ध की तस्वीर के अतिरिक्त और कुछ न था। मूविंग शेल्फ में डाक्टरी की कुछ किताबें, मेज पर कार्ड-बोर्ड जिल्द का एक बड़ा-सा पैड, उसमें स्याहीचूस, एक तिथिवार कलेण्डर, दवात-कलम और एक 'प्रिस्क्रिप्शन' पैड के सिवा और कुछ नहीं था। रोगियों के बैठने के लिए दो बेंच, एक तरफ एक कोने में वाश-बेसिन और कमरे के पीछे रोगियों के देखने का विशेष स्थान था। राममोहन बैठा रहा।

लगभग एक-डेढ़ घण्टा बैठने के बाद भी जब शेफाली नहीं आई तब उसने कम्पाउण्डर से एक बार फिर पूछा। वृद्ध ने अपना पहला उत्तर दुहरा दिया और आने वाले लोगों की दवा बनाने लगा। इसी समय एक दवा लेने वाले से मालूम हुआ कि डाक्टर साहब सब मरीजों को देखकर ही लौटेंगी। राममोहन, जो अब सब तरह से ऊब चुका था; हारकर अपने घर पहुँचा तो नौकर ने बताया कि लेडी डाक्टर दूसरी बार फिर साधना को देखकर चली गई है और दवा भी उन्होंने जो लिखकर दी थी, वह आ गई है। साधना की अवस्था में धीरे-धीरे अन्तर आ रहा था। वह सबेरे से अब कुछ अच्छी थी; धीरे-धीरे बोल भी रही थी। राममोहन वहीं जाकर बैठ गया। उसे लगा जैसे वह बहुत थक गया है।

"क्या दुकान से आ रहे हो?" साधना ने होठों के साथ आँखों के संकेत से पूछा।

"लेडी डाक्टर को बुलाने गया था, पर उसका कुछ भी पता न लगा। यहाँ आने पर मालूम हुआ कि वह तुम्हें देख भी गई है।"

"हाँ, बड़ी अच्छी है बेचारी। मुझे तो उसने बचा लिया।"

"फीस की उसे बिलकुल परवाह नहीं है। इसीलिए शहर में सबसे अधिक उसी की पूछ है," नर्स ने कहा।

"कोई नई आई है। पहले तो इसका नाम नहीं सुना।"

"कोई साल हुआ। जो कोई कुछ दे देता है वही ले लेती है। लोभ तो छू नहीं गया और स्त्रियों के रोगों में तो इसकी कोई बराबरी ही नहीं कर सकता," नर्स ने साधना के शरीर की चादर को ठीक करते हुए कहा।

"मेरा तो हर काम उसने किया है। इन्हें—नर्स को—तो हाथ ही नहीं लगाना पड़ा। नहीं तो भला लेडी डाक्टर क्या इतना करती हैं? दूर से देखती रहती हैं, हाथ भी नहीं लगातीं," साधना ने कहा।

"निरभिमान, डाक्टर हो तो ऐसी हो! इसी से बहुत सी लेडी डाक्टर इससे ईर्ष्या करती हैं। कहती हैं 'इसने हमारा काम चौपट कर दिया।' कोई-कोई तो इसे डाक्टर ही नहीं मानती। कहती हैं जाली डिग्री है, कोई नर्स है, लेडी डाक्टर बन गई है," नर्स बोली।

इसके साथ ही घड़ी देखकर नर्स ने दवा पिलाई। साधना का शरीर छूकर बोली—"अरे, टैम्प्रेचर हो गया है क्या?" उसी समय उसने थर्मामीटर लगाया और नाड़ी की गति देखने लगी। फिर राममोहन की तरफ देखकर बोली—"घबराने की बात नहीं है, ज्वर होना जरूरी है। कष्ट क्या कम उठाया है?"

नर्स के इतना समझाने पर भी राममोहन का चेहरा गम्भीर हो गया। "तो क्या डाक्टर को बुलाऊँ? एक बार वह देख जायगी; बुखार होना तो किसी तरह भी ठीक नहीं है।" इतना कहकर वह शेफाली की तरफ स्वयं दौड़ गया।

शेफाली उस समय स्नानागार में थी। बीस-पचीस मिनट बाद जब वह बाहर निकली तो उसने भीतर से ही कहला दिया कि ज्वर में डरने की कोई बात नहीं है, यह स्वाभाविक है।

राममोहन कुछ भी न कह सका, कुछ देर बैठकर वापस लौट आया। शेफाली सामने नहीं आई। राममोहन ने एक बार उससे मिल लेने का प्रयत्न भी किया, किन्तु अनावश्यक समझकर शेफाली ने टाल दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही राममोहन उठकर डाक्टर की ओर चल

पड़ा, किन्तु वह तो रोगियों को देखने निकल चुकी थी। राममोहन फिर लौट आया। आठ बजे के लगभग शेफाली साधना के घर पहुँची। राममोहन भी वहीं था। डाक्टर सीधी साधना के कमरे में गई और उसे देखने लगी। शेफाली साधना की परीक्षा करके दवा के सम्बन्ध में नर्स से पूछताछ करके जैसे ही लौटी वैसे ही राममोहन सामने आ गया। उसने राममोहन की ओर निरीह दृष्टि से देखकर कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं है। आज ज्वर नहीं होगा। दुर्बलता तथा कष्ट की अधिकता से ऐसा हो गया है। अच्छा नमस्ते !"

शेफाली चली गई। राममोहन उससे साधना के सम्बन्ध में और कुछ भी न पूछ सका। फीस के सम्बन्ध में भी उसने कुछ न कहा। फीस की उसने प्रतीक्षा भी नहीं की। तीन बार देखने पर भी डाक्टर का फीस की चर्चा न करना राममोहन के लिए आश्चर्य की बात थी। उसे मालूम है कि ये डाक्टर लोग रोगी के प्राण निकलने पर भी फीस नहीं छोड़ते। किन्तु इस स्त्री का ढंग बिलकुल और ही है। सुन्दरता में वह साधना से किसी तरह भी कम न थी। उस समय सफेद खादी की साड़ी में नख से शिख तक उसका गाम्भीर्य और रूप छलका-सा पड़ता था। दृष्टि में निरीहता, स्वच्छता, पैनापन उसका गुण था ; उसी से वह अपने पेशे की रक्षा करती थी। राममोहन को लगा कि जैसे वह उसके सामने तुच्छ है—न उसके धन का कोई मूल्य है न वैभव का। शेफाली आकर सीधी साधना के कमरे में जाती और बिना इधर-उधर देखे बाहर निकल जाती। जैसे एकमात्र उसका उद्देश्य रोगी को देखना ही हो, बस। शेफाली की निरीह प्रकृति ने राममोहन को उसके सम्बन्ध में विचारने के लिए बाध्य कर दिया। इतनी सुन्दर स्त्री और इतनी निरभिमान और कर्तव्यशील, यही आश्चर्य का विषय है। साधना के प्रसव-पीड़ा प्रारम्भ होने के पूर्व ही कुछ मित्रों ने उससे शेफाली को बुलाने का आग्रह किया था। फिर भी उसने अपने पुराने डाक्टर तथा एक पहचानी हुई नर्स को बुलाकर ही काम चलाना उचित समझा। जब उनके किये कुछ

न हो सका और साधना की अवस्था दुखद से दुखदतर होती गई तब उसने अपनी दुकान के मुनीम को शेफाली को लाने भेजा। दूसरे दिन दुकान पर बैठे मुनीम ने प्रसंग उठने पर राममोहन को जब भोजन की थाली छोड़कर उसके घर दौड़े आने का समाचार सुनाया तब उसका हृदय श्रद्धा तथा सम्मान के अतिरेक से भर उठा। इस पर एक आश्चर्य की बात यह हो रही थी कि शेफाली अपनी विजिट की फीस भी नहीं माँगती। एक बार उसकी इच्छा हुई कि घर जाकर उसकी फीस दे आए। वह जितना ही शेफाली के सम्बन्ध में सोचता उतनी ही उसकी उत्सुकता बढ़ती जाती। वह इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि प्राणनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। प्राणनाथ को देखते ही राममोहन खिल उठा।

"साधना की कैसी अवस्था है, ठीक तो है न? मैंने तो अभी सुना," प्राणनाथ ने आरामकुरसी पर बैठते-बैठते पूछा।

"उसके जीने की तो कोई आशा थी नहीं, परन्तु एक नई लेडी डाक्टर शेफाली ने उसे बचा लिया।"

"शेफाली?" प्राणनाथ ने आश्चर्य, उत्सुकता तथा कौतूहल की दृष्टि से प्रश्न-भरे स्वर में पूछा।

"यह शेफाली कौन है? कोई नई लेडी डाक्टर है शायद! नाम तो बिलकुल नया है। हम बैरिस्टरों को शहर के सभी लोगों का ज्ञान रहता है। आज बार-रूम में भी उसका जिक्र चल रहा था। हमारे वह बृजेन्द्रनाथ हैं न, उनकी लड़की को उसने बचा लिया। बीमारी तो न जाने क्या थी! चलो यह अच्छा ही हुआ। मतलब की बात कहूँ। बात यह है प्रेक्टिस की हालत तो तुम जानते ही हो। छः मास होने आए अभी तक मामूली खर्च भी नहीं निकलता। पापा से भी कहाँ तक रुपया मँगाऊँ। विलायत में ही मेरा खर्च सँभालने में उन्हें कठिनाई पड़ती थी। इसके अलावा तुम जानते हो हम विलायत से लौटे हैं, हर चीज चाहिए। आखिर जवानी है तो उसे जवान भी तो बनाकर रखना पड़ेगा। मुँह पर पट्टी तो बाँधने से रहा! मैं चाहता हूँ तुम्हारे सब केस मैं किया करूँ।"

"अच्छी बात है मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ! वैसे मेरे वकील तो वही बृजेन्द्रनाथ हैं," राममोहन बोला ।

प्राणनाथ ने तिरस्कार-भरे स्वर में उत्तर दिया—"छिः, वह बुड्ढा क्या खाकर वकालत करेगा, जो कल तक मुख्तारगिरी करता-करता जैसे-तैसे वकील बना है ? जरा मेरे करिश्मे भी तो देखो । वैसे तुम मेरे पुराने साथी हो, तुम्हें तो पहले ही मुझे अपना वकील बना लेना चाहिए था, किन्तु जो अब तक नहीं हो सका उसकी याद दिलाना तो जरूरी है ही, इतना तो तुम मानोगे ।"

राममोहन ने उसी ढंग से उत्तर दिया—"बृजेन्द्रनाथ को छोड़ तो मैं नहीं सकता, पर कुछ केस मैं तुम्हें दूँगा ।"

"भाई, बात यह है कि तुम्हें अपने केस तो देने ही होंगे, और अपने दोस्तों के केसेज़ भी दिलाने होंगे । तुम थोड़े दिनों बाद देखोगे कि प्राणनाथ शहर का लीडिंग वकील होगा । उस दिन हाईकोर्ट में बहस करते हुए मैंने सरकारी प्लीडर के दाँत खट्टे कर दिए । जज भी मान गया ; और जज कौन हम लोगों से दूर हैं ? आखिर हमीं में से तो जज बनते हैं । मैं खुद जज होना चाहूँ तो हो सकता हूँ ।"

"इसमें क्या शक है ।"

"असल बात यह है कि मुझे इस समय पाँच सौ रुपयों की सख्त जरूरत है । काम तो मैं तुम्हारा करूँगा ही, उसी में से काट लेना । और क्या हाल-चाल हैं ? हाँ, यह तो तुमने बताया ही नहीं कि बच्चा क्या हुआ—लड़का या लड़की ? मेरा खयाल है कि लड़का ही हुआ होगा । तुम्हारे जैसे जवाँमर्द से लड़की की उम्मीद तो की नहीं जा सकती । यदि रुपया न हो तो चैक दे दो ।"

राममोहन ने दराज में से पाँच सौ का एक क्रास चैक काटकर दे दिया ।

"मेरे योग्य कोई काम हो तो बताना । परन्तु यह क्या तुमने मन-हूसियत फैला रखी है कि न शरबत, न चाय । शराब तो भला पिलाओगे

ही क्या ?"

राममोहन इस समय बातें करने के मूड में नहीं था, फिर भी उसने प्राणनाथ के लिए चाय मँगाई। अपने-आप भी एक प्याला पी लिया। चाय पीते-पीते प्राणनाथ बोला—"तुम्हें मालूम है कि मैंने अभी तक शादी नहीं की है। विलायत में एक से दोस्ती हो गई थी, लेकिन वह बड़ी खर्चीली थी और पापा सुनते तो मेरा रहना हराम कर देते, हालाँकि मैं किसी की परवाह नहीं करता। खैर, जाने दो इन बातों को; हाँ कोई, अच्छी लड़की हो तो मैं शादी करना चाहूँगा। वैसे कभी-कभी सोचता हूँ शादी एक कण्ट्रैक्ट है, न भी की जाय तो भी कोई बुराई नहीं है। क्या विचार है तुम्हारा ? तुम मेरे पुराने दोस्त हो, इसलिए जरा बेतकल्लुफ होकर पूछ रहा हूँ। रात क्लब में एक औरत से जान-पहचान हो गई। खूब पीती है भई, मैं तो मान गया। सच कहता हूँ, नशे में उसकी आँखों के डोरे लाल हो उठे थे। अच्छा चलूँ। कभी उधर भी आया करो न ? तुम तो पूरे बनिए होते जा रहे हो। अरे, रुपया, माना कि बड़ी चीज है, लेकिन है तो साला फूँकने के लिए ही न ? किसी ने क्या ठीक कहा है, 'जवानी के सागर में गोता लगाने के लिए तू रुपये की नाव पर चढ़कर चल, तुझे जीवन का वास्तविक रत्न मिलेगा।' कहो कैसा है ? तुम आज गुम-सुम क्यों हो ? कोई चिन्ता है क्या ? चिन्ता जीवन की सबसे बड़ी मूर्खता है, लेकिन लोग प्रायः यह मूर्खता करने से वाज नहीं आते।"

राममोहन बोला—"तुम्हारी बात समाप्त हो तो बोलूँ। और बोलूँ भी क्या, जब तुम्हीं सब-कुछ कहे डाल रहे हो तो मेरे लिए बाकी ही क्या रहा ! हाँ, एक काम तो करो, जरा शेफाली का पता तो लगाओ यह है कौन, कहाँ से आई है ?"

प्राणनाथ एकदम बोल उठा—"दोस्त, उड़ो मत, उसने तुम्हारी बीवी को ही अच्छा नहीं किया, तुम्हें भी घायल कर दिया है। खैर, मैं एक बार देखूँगा। प्राणनाथ बैरिस्टर की चार आँखें हैं। उसके कान भी

देखते हैं और आँखें भी सुनती हैं। अच्छा चलूँ। आज एक को दावत दी है। तुम्हारा चैंक तो कल ही भुनेगा, पर ढारस तो है ही।" इसके साथ ही वह मुँह से सीटी बजाता चला गया। नीचे उतरते-उतरते फिर लौटकर बोला—"राममोहन, दोस्त इतना काम और करो कि मुझे अपनी कार में इम्पीरियल तक पहुँचा दो, नहीं तो देर हो जायगी। गेटिंग टू लेट।"

राममोहन ने अनमने भाव से नौकर के द्वारा मोटर-ड्राइवर से प्राणनाथ को पहुँचाने को कहला दिया।

इतने में नर्स ने आकर साधना के बुलाने की सूचना दी। साधना उस समय पहले की अपेक्षा स्वस्थ थी। पति के आते ही बोली—"क्या तुमने डाक्टर की फीस नहीं दी?"

"केवल एक बार की फीस दी है। सोच रहा हूँ कल आवे तो पूरी फीस चुका दूँ। तुम्हारी क्या सलाह है?"

"ठीक है। कल सबेरे की गाड़ी से माँ आ रही हैं मुझे देखने।" इतना कहकर उसने पत्र उसके सामने फेंक दिया, "यह अभी हलकू दे गया है?"

राममोहन ने पत्र सरसरी दृष्टि से पढ़ डाला और उसी समय हलकू को बुलाकर आदेश दिया कि सबेरे की गाड़ी से जाकर माँजी को स्टेशन से ले आए। इतना सुनकर साधना ने कहा—"क्या तुम स्टेशन तक नहीं जा सकते?"

"मेरा इतने सबेरे उठना कठिन है। साढ़े पाँच बजे गाड़ी आती है। उस समय मैं उठ सकूँगा, इसमें मुझे सन्देह है। यह गाड़ी लेकर उन्हें उतार लायगा।"

"परन्तु वे अपने मन में क्या कहेंगी? पहली बार तो वे हमारे घर आ रही हैं। उनके खाने-पीने की अलग व्यवस्था भी तो करनी होगी।" इतना कहकर साधना राममोहन की ओर देखने लगी।

राममोहन 'अच्छा ध्यान रखूँगा,' कहकर चला गया। वह प्रयत्न

करके भी पार्वती को लेने न जा सका। सोकर ही नहीं उठा था वह। पार्वती के घर आ जाने पर भी वह सोता ही रहा।

उसके इस व्यवहार से साधना को चोट पहुँची। वह पड़ी-पड़ी बहुत देर तक बड़बड़ाती रही। "पहली बार माँ आ रही हैं मुझे देखने, फिर भी इन्होंने उनके प्रति उपेक्षा दिखाई। उनको लेने नहीं गये। सबेरे उठकर जाने में हानि ही क्या थी! यह ठीक है सबेरे उठने की आदत नहीं है, फिर भी यदि कभी ऐसा मौका आ ही जाय तब क्या सोना नहीं छोड़ देना होता। माँ बिधवा हैं, गरीब हैं, इसीलिए उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार किया गया है," आदि-आदि बातें वह नर्स से कहती रही।

जब पार्वती स्टेशन से उतरकर हलकू के साथ आई, तब भी साधना ने एक प्रकार की लज्जा का अनुभव किया और उसके आते ही वह पति के अस्वस्थ होने का बहाना बनाने लगी। पार्वती ने कुछ भी जवाब नहीं दिया, केवल उसकी कुशल पूछकर चुप हो गई। हलकू ने ही उसके स्नान-ध्यान का प्रबन्ध किया और वह नहाकर अपनी पूजा में बैठ गई। लगभग नौ बजे तक पूजा करती रही। इस बीच में राममोहन उठकर एक बार साधना की तरफ गया, परन्तु साधना मुँह फेरकर लेटी रही। राममोहन निर्द्वन्द्व-सा अपने कमरे में लौट आया और प्रातःकाल का समाचारपत्र पढ़ने लगा।

इसी समय शेफाली साधना को देखने आ पहुँची। साधना को देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उसने कहा—"आज तो शरीर ठीक है। बस, कुछ दिनों में ठीक हो जाओगी। जरा हवा से बचाना।" इसके साथ ही उसने मेज पर रखी दवा की शीशी देखकर पूछा—"क्या कल दवा नहीं पी? यह एक मात्रा बच कैसे गई?" शेफाली ने अपने हाथ से साधना को दवा पिलाई।

वह उठने को ही थी कि साधना ने प्रार्थना-भरे स्वर में कहा—"आप बिलकुल मशीन की तरह काम करती हैं। क्या इतना समय भी

नहीं है कि कभी दो-चार मिनट मेरे पास बैठें ? आपने मेरे प्राण बचाए हैं, डाक्टर साहिब !"

शेफाली ने जाते-जाते मुड़कर मुस्कराते हुए कहा—"दिन-भर बीमारों को देखना पड़ता है, इसीलिए मशीन बन जाना पड़ा है, साधना रानी।"

"परन्तु मुझे तो न जाने आपसे क्यों इतना स्नेह हो गया है कि कई बार दिन में आपकी याद आती है। यह नर्स तो आपको ईश्वर की तरह मानती है। मेरी प्रार्थना है कि आप दोनों समय में एक बार अवश्य दस-पाँच मिनट मेरे पास बैठा करें। न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता है कि आप मेरी बड़ी बहन हैं।"

शेफाली स्नेहाभिषिक्त-सी होकर साधना के पास पड़ी कुरसी पर बैठ गई और उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। साधना ने शेफाली का हाथ अपने हाथों में ले लिया तथा आँखें बन्द करके उसके स्पर्श-सुख का उपभोग करने लगी। इसी बीच में साधना ने सूचना दी कि आज सबेरे माँ आ गई हैं, वे भी आपके दर्शन करना चाहेंगी।

"अवश्य-अवश्य, मैं तुम्हारी माँ के दर्शन करूँगी। अच्छा अब, चलूँ देर हो रही है।" इतना कहकर शेफाली बक्स उठाकर चलने लगी।

दरवाजे से निकलते ही राममोहन मिल गया। उसने नमस्कार करते हुए कहा, "आप फीस न लेकर मुझे लज्जित कर रही हैं। कृपा करके दोनों बार प्रतिदिन आने की फीस तो ले लिया कीजिए। मैं जानता हूँ आपको फीस की चिन्ता नहीं है। आपने अपनी कर्तव्यनिष्ठा से हमको ही नहीं सारे शहर को मोह लिया है, और साधना तो आपकी चेली बन गई है।"

शेफाली ने कुछ कठोर होकर कहा, "फीस आपको स्वयं देनी चाहिए। क्या माँगने की जरूरत है, लाइये ?"

राममोहन उसकी कठोरता से अभिभूत हो गया।

उसे आशा थी कि जिस सदयता, सदाशयता से उसने बातचीत की

है वह भी उसी तरह उत्तर देगी, किन्तु उसका कठोर तथा रूखा व्यवहार देखकर वह स्तब्ध रह गया। उसे अपने धन का गर्व एकदम हो आया। मानो उसकी आस्था का संचित प्रासाद एकदम ढह गया हो। उसने तत्काल उसी स्वर में उत्तर दिया ; "ठहरिए, मैं आपकी फीस के रुपये अभी लाया।" इतना कहकर वह अपने कमरे की ओर तेजी से गया। शेफाली दरवाजे के पास कुछ देर तक खड़ी रही फिर बक्स उठाए बाहर निकल गई। उसके हृदय में कुछ प्रसन्नता का-सा अनुभव हुआ, मानो राममोहन से उसने कोई पुराना बदला लिया हो। फिर भी स्वभाव के विरुद्ध कठोर होने के कारण उसे खेद भी हुआ। इसी सोच-विचार में शेफाली दूसरे रोगी के कमरे में घुस गई। उसे सोचने का अवकाश ही नहीं रहा।

राममोहन जब रुपये जेब में डालकर कमरे से निकला तो उसने देखा कि डाक्टर वहाँ नहीं है। दरबान से मालूम हुआ कि डाक्टर गाड़ी में बैठकर चली गई। वह बहुत देर तक वहीं खड़ा सोचता रहा।

धनी व्यक्ति रुपये का दबाव कभी नहीं सह सकता। रुपये के बल पर ही तो उसे दूसरों पर शासन का अवसर मिलता है। यह कैसे सम्भव है कि रुपये के लिए कोई उसे दबा ले। वह धन-राशि को दुगुना-तिगुना करके अपने प्रभाव को स्थापित करेगा। एक मामूली व्यक्ति, जो रुपये के लिए ही सब कुछ कर रहा है, उस पर अपना अंकुश कैसे रख सकता है ? इसी तरह के विचार राममोहन के मस्तिष्क में घूमने लगे। राममोहन के पास रूप-सौन्दर्य नहीं था, विद्या का भी कोई विशेष प्रभुत्व उसके पास नहीं था ; धन तो था। पिछले युद्ध में चोर-बाजारी के द्वारा उसने लाखों रुपये कमाए थे। इस समय नगर का सबसे बड़ा धनी न सही, धनी तो वह है ही। उसकी गिनती नगर के प्रतिष्ठित धनाढ्यों में तो है ही। फिर वह क्यों एक साधारण स्त्री से दबे ! यह माना वह सुन्दर है, उसने उसकी पत्नी को जीवन-दान दिया है, किन्तु इससे क्या, वह धनी तो है ही, जिसके द्वारा वह असम्भव को

सम्भव कर सकता है, और साधना भी तो उसके घर धन के लिए ही आई है; पार्वती ने, जिसकी साधना इतनी तारीफ करती है, उसके धन के बल पर ही तो अपनी लड़की दी है। उसे पार्वती और साधना से भी एक प्रकार की विरक्ति हो गई। उसे मालूम होने लगा जैसे सभी पर उसने इस धन के बल पर शासन करने का अवसर पाया है। दूसरे क्षण ही उसे शेफाली के प्रति सोची गई बातों से दुःख हुआ। वह सोचने लगा कि शेफाली को रुपये की चिन्ता नहीं है। धन के बल पर उसने नगर के लोगों को नहीं मोहा है। उसमें कर्तव्यनिष्ठा, तप, त्याग, विद्या तथा सदयता है, जिससे उसने नागरिकों की बुद्धि पर, उनके मस्तिष्कों पर, उनके हृदयों पर अधिकार कर लिया है। वह नगर की प्रसिद्ध सुन्दरी है। मेरे-जैसे अनेकों व्यक्ति अपने हृदय की प्यास बुझाने के लिए उसके दास बनने को उत्सुक होंगे। वह सचमुच सुन्दरी है। वह आज ही शेफाली के घर जाकर उसकी फीस के डबल रुपये देकर अपनी कठोरता तथा असावधानी के लिए क्षमा माँगेगा। न जाने क्यों अपने हृदय में शेफाली के प्रति एक ममता, एक स्नेह का अंकुर-सा उगा-उगा मालूम होता है। साधना इसके सामने कुछ भी नहीं है। इसी तरह की उधेड़-बुन में पार्वती आ गई और उसने राममोहन का नाम लेकर पुकारा; उसके स्वर में स्नेह भरा हुआ था। राममोहन ने सकपकाकर पार्वती को प्रणाम किया।

"अच्छे तो रहे भैया, सुना कुछ तबियत खराब थी ?"

"नहीं, ऐसी कोई बात तो थी नहीं। तुम जानो अम्मा, काम क्या थोड़ा है ?"

"हाँ भैया, जरा शरीर का ध्यान रखा करो। काम तो होता ही है।"

"आपको मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"कष्ट क्या होता, वहाँ भैया ने बैठा दिया, हलकू ने यहाँ उतार लिया।"

"अरे हलकू, अम्मा के जल-पान का कुछ प्रबन्ध किया या नहीं ?"

पार्वती ने उत्तर दिया, "मेरे जल-पान की तुम चिन्ता न करो भैया, मैं इस घर का क्या जल भी पी सकती हूँ ? साधना को देखना था, देख लिया। वह ठीक हो रही है। बच्चा तो खैर, भगवान् और देंगे। बड़ा कष्ट भोगा है लड़की ने। तुमने भी रात-दिन एक कर दिया।" इतना कहते-कहते पास पड़ी एक कुर्सी पर पार्वती बैठ गई और कहने लगी, "साधना का शरीर अभी बहुत कमजोर है। अच्छा तो यह हो कि मैं उसे कुछ दिनों के लिए घर ले जाऊँ वहाँ खुली हवा में रहेगी। क्या कहते हो ?"

राममोहन बोला, "यदि साधना चाहे तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ! पर अभी उसका जाना क्या ठीक होगा ? अभी तो वह उठने-बैठने लायक भी नहीं है।"

हलकू ने आकर इसी समय सूचना दी कि अम्माजी के लिए रसोई खाली है, जो कुछ बनाना हो वह ला दे।

पार्वती ने उत्तर दिया, "अभी नहीं, मैं शाम को खाना बनाकर खा लूँगी। तू बाजार से मुझे दूध ला दे, मैं पी लूँगी।"

राममोहन को चुप देखकर पार्वती उठकर साधना के कमरे में चली गई और राममोहन नहा-धोकर दुकान पर जाने की तैयारी करने लगा।

दोपहर को दुकान से लौटते हुए राममोहन घर लौटने की अपेक्षा शेफाली के घर चला गया। वह उस समय रोगियों को देखकर लौटी ही थी। राममोहन के आने का समाचार पाकर स्वयं बाहर आ गई और उसे अपने कमरे में ले गई। राममोहन ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "आपकी फीस के रुपये देने आया हूँ। मुझे खेद है कि इतनी देर हुई।" इतना कहकर उसने सौ रुपये का नोट उसके सामने मेज पर रख दिया।

शेफ़ाली ने कुछ देर तक चुप रहकर पूछा, "यह क्या है, मुझे मेरी फीस के रुपये दीजिए मैं अधिक न लूँगी।"

राममोहन ने तत्क्षण उत्तर दिया ; "आपने मेरी स्त्री को प्राण-दान दिया है। उसी के अनुसार तो नहीं, बल्कि यह उसकी तुच्छ भेंट है। मैं तो आपसे इस जीवन में कभी उऋण हो सकूँगा, ऐसी आशा नहीं है डाक्टर!"

इस प्रकार दीनता-नम्रता-मिश्रित सम्बोधन सुनकर वह अपनी कठोरता को स्थिर न रख सकी, फिर भी उसने गम्भीरता धारण किये ही कहा, "आप जानते हैं राममोहन बाबू, मैं डाक्टर हूँ। मेरा काम रोगियों की सेवा करना है। उसी के सहारे मैं जीवन-निर्वाह भी करती हूँ। आप क्या समझकर मुझे अधिक रुपये दे रहे हैं? मुझे मेरी फीस चाहिए और कुछ नहीं। अच्छा, मुझे काफी काम है, मैं क्षमा चाहती हूँ।" इतना कहकर वह उठने लगी।

राममोहन पराजित-सा हो गया, उसके धन का गर्व उस नारी के सामने तिल-तिल करके बह गया। उसने चुपचाप पचास रुपये निकाल कर मेज पर रख दिए फिर बोला, "परन्तु आप साधना को दोनों बार बराबर देखती रहेंगी, ऐसी आशा तो मैं कर ही सकता हूँ।"

"हाँ हाँ, साधना जब तक पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो जाती तब तक मैं उसे बराबर देखती रहूँगी, इसकी आप चिन्ता न करें। अच्छा!" राममोहन उठकर चलने लगा, इसी समय शेफाली ने जाते-जाते एक बार रुककर कहा, "क्षमा कीजिए, मेरा व्यवहार तनिक रूखा हो गया, किन्तु मैं विवश हूँ, काम ही इतना रहता है।"

राममोहन 'नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है' कहकर बाहर निकल गया।

मार्ग में चलते-चलते उसे ज्ञात हुआ कि उसका बल आज पानी की बूँदों के गिरने से ढहती रेत के समान हो गया है। जिस व्यक्ति ने चोर-बाजार से पैसा पैदा करते समय बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारियों का मुँह बन्द कर दिया, आज वह साधारण नारी के सामने पराभूत एवं अकिंचन सिद्ध हुआ। उसके हृदय में एक प्रकार की तीव्र कटुता तथा

प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न हुई। उसे लगा कि उसके आत्म-सम्मान, उसकी प्रतिष्ठा, उसके धनी होने के ईश्वरीय वरदान को एक साधारण नारी ने कुचल दिया है। वह प्रारम्भ से ही धन के महत्त्व को स्वीकार करके चला है और उसके अभ्रंकष कशाघात में चौंधिया देने वाली चपत को सभी ने सिर झुकाकर वरदान की तरह स्वीकार किया है। वह मानता रहा है कि लक्ष्मी की प्रतिष्ठा में सब गुण हैं, सब सौन्दर्य हैं और जीवन का अविरत, अखण्ड, अनिर्वचनीय और अमन्द प्रकाश है। पर...क्या वह उसे दण्ड दे, क्या उसे पीस डाले? क्या करे? क्या मान ले कि वह हार गया है? नहीं वह इसका उपाय करेगा। साधना के प्राण-दान का विचार करके उसने शेफाली के विरुद्ध सोचने का विचार बदल दिया और धन से ही उसका बदला लेने की बात सोचता रहा। दोनों में से कोई भी बात हो सकती है, उसने अपमान का कड़वा घूँट पी ही तो लिया। घर आकर भोजन करते समय हलकू ने बताया कि अम्माजी ने आज महाराज को बड़ी डाँट लगाई, इससे उसने काम छोड़ दिया है।

राममोहन ने मुँह का कौर मुँह में दिये रहकर ही पूछा, "क्यों?"

हलकू बोला, "मालिक, मुझे कुछ नहीं मालूम, वह काम छोड़ बैठा है, इतना जानता हूँ।"

हलकू यह बात कह ही रहा था कि पार्वती ने आकर एकदम कहना प्रारम्भ कर दिया—"लड़की देख-भाल नहीं कर सकती तो घर लुटने के लिए नहीं है। आँखों-देखी मक्खी तो निगली नहीं जा सकती भैया?" राममोहन खाते-खाते पार्वती के मुँह की ओर देखता रहा। पार्वती कहती रही, "तुम्हारी कुछ बात नहीं है। तुम परहेज नहीं कर सकते न करो, परन्तु स्त्रियों की घर में मान-मर्यादा तो है ही। वह धूर्त हुक्का पीते-पीते बिना हाथ धोये रसोई में चला गया। भला मैं यह अत्याचार कैसे देख सकती थी। मैंने आज उसको जवाब दे दिया। जब तक मैं हूँ तब तक किसी रसोइये की जरूरत नहीं है।"

राममोहन अवाक् होकर सुनता रहा। उसे यह सब अच्छा न लगा, पर केवल इतने से ही नौकर को निकाल देने की बात उसकी समझ में नहीं आई। फिर भी वह चुप रहा। पार्वती ने अपना समर्थन न पाकर कुछ जड़ता का अनुभव किया और खाने के सम्बन्ध में कुछ और न पूछ सकी। राममोहन घर में यह काण्ड देखकर बाहर चला गया।

पार्वती ने साधना से जाकर वही दुहराया तो साधना लेटे-ही-लेटे बोली, "तुमने यह क्या किया माँजी, नौकर आजकल मिलते कहाँ हैं? माना कि जब तक तुम हो किसी तरह काम चल जायगा, परन्तु तुम्हारे बाद तो हमको नौकर की जरूरत पड़ेगी ही।"

"तो क्या तू भी इतना काम नहीं कर सकती, जो नौकर के बस में रहना पड़ता है; यह ठीक नहीं है। पढ़ने-लिखने का यह अर्थ नहीं है कि आदमी घर का काम भी न कर सके।"

इसी पर साधना ने उत्तर दिया, "मैं भी कहाँ काम कर पाती हूँ! मुझे मिलने-जुलने वालों से ही फुरसत नहीं मिलती, मुझसे रोटी नहीं बनती। दो-ढाई घण्टे तो नहाने-धोने में लग जाते हैं।"

पार्वती बोली, "मुझसे भूल हुई साधना, जो मैंने भ्रष्टाचार देखकर तेरे नौकर को अलग कर दिया। मैं गरीब औरत क्या जानूँ कि तुम्हारे घर में धन का महत्त्व नौकर से ही है," इसी तरह की बहुत सी बातें वह कहती रही।

अमीरी और गरीबी में जो एक भेद है वह बाहर ही नहीं दिखाई देता, भीतर भी रहता है। दो दिन में ही वह भेद माँ-बेटी में उभर आए। साधना की हर बात का उसकी माँ विरोध करती। उसकी फिजूलखर्ची पर उसे फटकारती। माँ जो उपदेश उसे देती, उसमें बड़प्पन की बू थी। साधना जो सुनती उसमें उसे माँ की मूर्खता, अज्ञता लगती। दो ही दिन में माँ को लगा जैसे साधना उसकी लड़की होती हुई भी उससे बहुत दूर चली गई है। बेटी और जमाई दोनों की तरफ से उसे अपने प्रति उपेक्षा दिखाई दी।

शेफाली अपने डाइनिंग रूम में जैसे ही भोजन करने बैठी वैसे ही गिरधर आकर कुरसी पर बैठ गया। बोला—"हमारी समिति ने निश्चय किया है कि चित्रकला तथा संगीत की छात्र-प्रतियोगिता में आप सभा-पति होंगी। बस, आप स्वीकृति दे दीजिए।"

शेफाली ने खाते-खाते कहा, "सुनो गिरधर, मैंने तुमसे कह दिया है कि किसी ऐसे काम में मैं भाग न लूँगी। क्या तुम मुझे मेरा काम ही करने नहीं दे सकते ?"

"नहीं, जब आपकी ही प्रेरणा से यह कार्य हो रहा है तब आप बाहर कैसे रह सकती हैं ? आखिर इसमें आपका सम्मान भी तो है। आपने 'ट्रॉफी' के लिए धन दिया है। इसकी आयोजना में आपका हाथ है फिर आप दूर क्यों भागती हैं ?"

"मैं दर्शक के रूप में आ जाऊँगी, परन्तु मेरा सभापति बनना तो किसी तरह भी सम्भव नहीं है।"

गिरधर उदास हो गया। वह जितने उत्साह से आया था, उतना ही निराश हो गया। वह चाहता था कि जो नारी लड़कियों की उन्नति में प्रच्छन्न रूप से इतना भाग ले रही है उसका सम्मान भी तो होना चाहिए। वैसे भी इस सम्मान के द्वारा वह शेफाली को खुश करना चाहता था और चाहता था यह दिखाना कि वह भी महत्त्वहीन, नगण्य नहीं है। किन्तु शेफाली ने न माना। वह चुप हो गया। थोड़ी देर के बाद बोला, "तो आप आयेंगी तो ? देखिए नगर के सभी प्रतिष्ठितों को हमने आमन्त्रित किया है।"

"हाँ, आने का यत्न करूँगी।"

"क्या आने में भी यत्न की आवश्यकता है ?"

"बात यह कि मुझे बीमारों के देखने से अवकाश नहीं मिलता, काम इतना बढ़ गया है। क्या करूँ! मुझे सेवा में आनन्द भी मिलने लगा है। यह अब मेरा पेशा नहीं है।"

"यह तो मैं जानता हूँ। लोग आपको 'मसीहा' की तरह पूजने लगे हैं। इधर चित्र-कला भी आपकी इसी कारण रुक गई है। अच्छा तो वे अपने चित्र तो हमें लगाने के लिए दे दीजिए।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। वे चित्र मैंने प्रदर्शनी के लिए नहीं बनाये। वे मेरी 'हाबी' हैं। तुम उनके लिए मुझे दिक न करो। तुम भी खाना क्यों नहीं खा लेते गिरधर?"

गिरधर ने कोई उत्तर नहीं दिया। शेफाली ने रसोइये को बुलाकर भोजन लाने की आज्ञा दी। गिरधर खाने लगा। दोनों भोजन कर ही रहे थे, इसी समय शुभदा आई। आते ही उसने कहा, "दीदी, कल होने वाली संगीत की छात्र-प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए मुझे विवश किया गया है। मैं स्वाकृति दे आई हूँ। अरे गिरधर, तुम भी यहीं हो?"

"शुभदा, तुझे अवश्य भाग लेना चाहिए। मेरा विश्वास है तुझे कोई-न-कोई पारितोषिक अवश्य प्राप्त होगा। क्यों गिरधर?"

"अवश्य, बशर्ते शुभदा संकोच न करे। पिछले दिनों कालेज में तो इसने रेढ़ ही मार दी, हालाँकि स्वर तथा संगीत की दृष्टि से कोई भी इसके बराबर नहीं था।"

शुभदा बोली, "लड़कों ने मेरे उठते ही तालियाँ पीट दीं, तमाम हॉल कोलाहल से गुँजा दिया, मैं क्या करती?"

शेफाली ने हँसकर कहा, "यदि कल भी ऐसा ही हुआ तो?"

शुभदा चुप हो गई। गिरधर कहने लगा, "कला के प्रदर्शन में संकोच काम नहीं देता। शायद शुभदा इसे अपना भूषण समझती है।"

शेफाली ने स्वीकार किया कि वह कल की प्रतियोगिता में अवश्य आयगी।

गिरधर चला गया। शेफाली के अनुरोध पर शुभदा ने सितार

लेकर गाना प्रारम्भ किया। पहले मालकोंस फिर एक विहाग गाया। निश्चय हुआ कि मालकोंस ही कल सुनाया जाय। सचमुच शुभदा का गला बहुत सुन्दर था। उसके स्वर के उतार-चढ़ाव तथा ताल से संगीत में जान आ गई। रात के उस एकान्त प्रदेश में राग मानो मूर्तिमान हो उठा।

शुभदा एक बंगाली लड़की है। जिस समय कलकत्ता में अकालग्रस्त बंगाल के प्राणी आकर अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसकर प्राण-विसर्जन कर रहे थे, उन दिनों शुभदा भी अपने अन्न-पीड़ित माता-पिता के साथ ढाका के पास किसी गाँव से कलकत्ता आ गई। अकाल से पूर्व वह ढाका के हाई स्कूल से मैट्रिक पास कर चुकी थी। दिनदिन बढ़ने वाली दुरवस्था के कारण अन्नत्रस्त लोगों के एक गिरोह ने मधुसूदन वसाक के अन्न-भण्डार को लूट लिया; उनके प्रतिरोध करने पर उनके घर में आग लगा दी। बहुत दिनों तक वह अपने परिवार को किसी तरह पालते रहे। इसी बीच क्षुधा से पीड़ित होने पर उनकी पत्नी तथा एक बड़ा कन्या का अवसान हो गया। एक लड़का था, वह युद्ध में आहत होकर मर गया। मधुसूदन एकमात्र अपनी कन्या शुभदा को लेकर कलकत्ता आये, परन्तु उन्हें कहीं काम न मिला। और तो और माँगने पर भीख भी न मिली। ऐसी निरीह अवस्था में एक दिन सायंकाल के समय हावड़ा के पुल के पास मधुसूदन भी भूख से तड़प कर इस कष्ट से छुटकारा पा गए। शुभदा पहले लड़कियों के व्यापारियों के चंगुल में पड़ गई। एक दिन उस नरक से भाग निकलने पर वह बंगाल में औषधि-वितरण करने गये हुए डाक्टरों के बैंच की लेडी डाक्टर शेफाली को मिल गई। शेफाली ने उसे आश्वासन दिया तथा अपने साथ ले आई। तब से शुभदा शेफाली के ही पास रहती और कालेज में पढ़ती है। शेफाली उसे अपनी छोटी बहन की तरह मानती है। शुभदा पहले कुछ दिनों तक निराशाच्छन्न तथा दुखी रही। रह-रहकर उसे अपने परिवार का ध्यान होने पर रोना आ जाता। एक दिन उसने

उसी आवेश में शेफाली के कम्पाउण्डर की दृष्टि बचाकर विष खा लिया, परन्तु डाक्टर के तात्कालिक प्रयत्न से वह बच गई। फिर एक मास तक बराबर बीमारी भोगकर उठने पर साधारण स्वास्थ्य-लाभ हुआ। अब भी उसे कभी-कभी विष का प्रभाव बेचैन कर देता है। अठारह वर्ष की इस लड़की को शेफाली से इतना स्नेह हो गया है कि वह उसे अपना सर्वस्व समझती है। बहुत दिनों तक शेफाली को वह अपनी स्वामिनी समझती रही, परन्तु शेफाली के व्यवहार ने उसे उसकी बहन बनने को बाध्य कर दिया। शेफाली के ही अनुरोध पर उसने संगीत का अभ्यास प्रारम्भ किया है। जिस समय रात को शुभदा सितार लेकर गाती है उस समय शेफाली चित्र बनाती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल साधना ने कहा, "आज वाई० एम० सी० ए० हॉल में संगीत तथा चित्रकला की प्रतियोगिता है। क्या ही अच्छा होता कि मैं वहाँ जा सकती डाक्टर ?"

शेफाली ने टेम्परेचर लेते हुए कहा, "बहुत नहीं, तीन-चार दिनों तक मैं तुम्हें घर में चलने-फिरने की आज्ञा दे सकूँगी।" थर्मामीटर देख-कर बोली, "बुखार तो नहीं है, फिर भी दवा खाते रहना ताकि फिर न आ जाय। अच्छा चलूँ।"

साधना ने हाथ पकड़ कर कहा, बैठिए न ! आप तो बैठती भी नहीं हैं। क्या आज आप वहाँ जायँगी ? मेरी सखी की लड़की का भी पार्ट है। सुना है शुभदा नाम की लड़की बहुत अच्छा गाती है।"

शेफाली ने उत्सुकतावश पूछा, "तुमने कहाँ से सुना ?"

"वैसे ही मेरी सखी की लड़की कहती थी। सचमुच मुझे इन चीजों से बहुत प्रेम है। मैंने ऐसे अधिवेशन कभी मिस नहीं किये हैं डाक्टर। जीवन में यही तो है हँसना-खेलना। कभी-कभी इच्छा होती है कि मैं भी सुनाऊँ, पर अब तो सुनने के दिन हैं न ?"

"तुम, क्या तुम भी गाती हो ?"

"आप शुभदा को जानती हैं क्या ?"

"हाँ।"

"सचमुच, कैसी है वह ?"

"मेरे पास ही तो रहती है। मेरी छोटी बहन है।"

"हाँ," इतना कहकर वह गद्‌गद्‌ हो गई। "एक दिन उसे लाइए न, मैं भी देखूँ। वैसे तो कभी-कभी रात को आकर कृष्णा गाना सुनाती है, परन्तु उसके वही पुराने गाने हैं—सुनती हूँ जी पर पत्थर रखकर। डाक्टर, क्या आप उसे एक दिन ला सकेंगी ? अच्छी होने पर मैं एक दिन आपके सत्कार में पार्टी देना चाहती हूँ।"

शेफाली ने पूछा, "राममोहन कहाँ है ?"

"वे तो दुकान गये हैं। आपकी काफी तारीफ करते हैं।"

शेफाली चुप रही।

साधना फिर बोली, "मुझे अब आप घर की-सी लगती हैं। मैं अब आपको डाक्टर नहीं कहूँगी। आपका नाम लेकर या 'दीदी' कहकर पुकारा करूँगी। आपको पसन्द है न ?"

"पसन्द क्यों नहीं है। मैं सब बीमारों को अपनी बहन, माँ, बेटी समझती हूँ। तुम्हें भी।"

"क्या ?"

"बहन !"

"हाँ, ठीक है।" साधना शेफाली का हाथ पकड़े रही। कभी-कभी प्रेमातिरेक से वह उसका हाथ चूम लेती। इसके साथ ही साधना कह बैठी, "एक बात पूछूँ ?"

"पूछो न ?"

"आपने विवाह क्यों नहीं किया ?"

शेफाली एकदम हाथ छुड़ाकर उठ खड़ी हुई। "यह सुनकर क्या करोगी साधना, यह कहने की बात नहीं है। फिर कभी सही।" शेफाली के जाते-जाते पार्वती कमरे में आ गई। साधना ने कहा, "यह मेरी माँ हैं।"

शेफाली ने रुककर नमस्ते किया। पार्वती ने आशीर्वाद दिया तथा बोली, "डाक्टर साहिबा, आपने मेरी बच्ची को बचाया है। ईश्वर आपका भला करे।"

शेफाली ने कोई उत्तर नहीं दिया। साधना ने जिज्ञासा-भरे स्वर में अनुरोध किया, "माँ आपको देखने को उत्सुक थीं। यदि देर न हो तो एक प्याला चाय पी लीजिए; कृपा होगी।"

पार्वती ने वही बात और भी जोरदार शब्दों में दुहराई। शेफाली ने कार्यव्यग्रता का बहाना किया, किन्तु अन्त में उसे पार्वती का अनुरोध टालने का साहस न हुआ। नौकर को बुलाकर चाय लाने की आज्ञा दी गई। इसी बीच में पार्वती ने पूछा, "बेटी, क्या तुम्हारा विवाह नहीं हुआ ? ऐसी सुन्दर हो, लाखों में एक ! क्या तुमने विवाह किया ही नहीं ?"

शेफाली ने अनमने भाव से पार्वती के प्रश्न को टालना चाहा। जब वह इस पर भी न मानी तब उसने कहा, "क्या विवाह कोई आवश्यक बात है ? मैं नहीं मानती कि विवाह आवश्यक है। मनुष्य को कोई काम चाहिए, जिसमें उसका मन लगे। वह काम मुझे मिल गया है। दिन-रात रोगियों की सेवा करती हूँ, इसी में मुझे प्रसन्नता है।"

साधना ने बीच में ही बात काटकर कहा, "माँ, इनकी एक बहन बड़ा सुन्दर गाती है। आज वाई० एम० सी० ए० में उसका संगीत है।"

पार्वती बोल उठी, "क्या उसे भी अनब्याहे रखना है, बेटी ! तुम बड़ी पढ़ी-लिखी लड़कियों के सामने मैं हूँ तो मूर्ख, परन्तु इतना कहूँगी कि बिना ब्याह के स्त्री का जीवन बड़ा कठिन हो जाता है। ब्याह से पहले साधना का भी यही विचार था, तब मैंने इससे कहा कि 'मेरे रहते तू ऐसा नहीं कर सकती। मेरे बाद चाहे सो करना।' अब भगवान् की दया से सुखी है।" शेफाली ने कोई उत्तर नहीं दिया। चाय आने पर चुपचाप पीकर चली गई।

उस दिन उत्सव में जब शेफाली पहुँची तो आधा कार्यक्रम समाप्त हो चुका था। शुभदा ने बहन के आने में देर देखकर अपना नाम हटवाकर पीछे रखवा लिया। मिसेज ईदुलजी, एक पारसी महिला, सभानेत्री के पद पर थीं। कार्यक्रम बड़ा आकर्षक था। गिरधर तथा कालेज के अन्य छात्र-छात्राओं का प्रबन्ध था। शेफाली के प्रवेश करते ही गिरधर ने उसे ले जाकर डाइस के पास प्रतिष्ठित महिलाओं के स्थान पर बैठा दिया। श्रोताओं के आग्रह पर गिरधर को एक कविता सुनानी पड़ी। संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। चित्रकला की प्रदर्शनी पहले समाप्त हो चुकी थी। जब शुभदा की बारी आई तब वह मंच पर आकर बैठ गई। धीरे-धीरे सितार लेकर उसने रात के निश्चित गानों को दुहराया। शेफाली के कारण या न जाने कैसे शुभदा तन्मय होकर गाने लगी। सौभाग्य से उसका गीत श्रोताओं ने मन्त्र-मुग्ध होकर सुना। समाप्त होने पर लोगों ने फिर आग्रह किया। इस बार उसने एक बंगाली गीत सुनाया। वह रवीन्द्रनाथ का गीत था—

पान्थ तुमि पथिकजनेर सखा हे
पथे चलाइ सेइ तो तोमाय पाओया, आदि

संगीत के पश्चात् शुभदा अपने स्थान पर बैठने की अपेक्षा बहन के पास आकर बैठ गई। शेफाली ने उसकी पीठ ठोकी। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद निर्णायकों ने जो निर्णय दिया उसमें शुभदा का संगीत सर्वप्रथम रहा और चित्रकला में शेफाली के चित्र अधिक पसन्द किये गए यद्यपि वे पारितोषिक में न थे। पारितोषिक एक और कन्या को मिला। एक व्यक्ति ने शेफाली के चित्रों को खरीदने का आग्रह किया, किन्तु 'ये बेचने के लिए नहीं हैं' कहकर टाल दिया गया। जब शेफाली को अपने चित्रों के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ तो वह भीतर-ही-भीतर बहुत झल्लाई, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि शेफाली और शुभदा की प्रसिद्धि चित्रकार तथा संगीतज्ञ के नाते हो गई। राममोहन तथा प्राणनाथ ने आकर दोनों को बधाई दी। स्वयं सभापति मिसेज ईदुलजी ने शुभदा

की प्रशंसा की ।

घर आने पर शेफाली ने गिरधर को फटकारा और बिना आज्ञा उसके चित्र प्रदर्शनी में रखने के कारण उसे बहुत झिड़का। गिरधर को इससे कोई अप्रसन्नता नहीं हुई। उसने कहा, "आपके मत से मैं सहमत नहीं हूँ। आपने कला को छिपाकर उसकी हत्या की है, मैंने उसका प्रकाश किया है। वैसे आप जो कुछ भी कहेंगी, मैं सहर्ष सह लूँगा" इस बात को सुनकर शेफाली भी भीतर-ही-भीतर प्रसन्न हुई। अपना यश कौन नहीं सुनना चाहता ! शुभदा और गिरधर भीतर-ही-भीतर हँसे ।

उसी समय राममोहन के साथ प्राणनाथ आया। राममोहन ने शुभदा को अपनी ओर से पेशावरी 'ग्लव्स' भेंट किये ।

शुभदा ने मना भी किया, किन्तु शेफाली के कहने पर उसने स्वीकार कर लिया। राममोहन ने प्राणनाथ का परिचय कराते हुए कहा, "यह मेरे मित्र प्राणनाथ, बैरिस्टर ! यूरोप में बहुत दिन रहे हैं। आप वहाँ की कई प्रसिद्ध पार्टियों में काम करते रहे हैं।" शेफाली ने मुस्कराकर उसका स्वागत किया ।

प्राणनाथ ने कहा, "मैंने यूरोप की प्रदर्शनियों में 'पाब्लोपिकासो' के चित्र देखे हैं और उस समय के, जब वह कम्युनिस्ट नहीं था और उसके बाद के भी, किन्तु आपके चित्रों में रोरिक और अवनीन्द्र की कलात्मकता के अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ है, जो आपका अपना है। वैसे स्वभावतः मैं रोमाण्टिक चित्रों को पसन्द करता हूँ, परन्तु आपके 'आसन्न मृत्यु' चित्र ने मेरी भावना को बदल दिया है। मैं मानता हूँ यथार्थता भी कला का वास्तविक मूल्य है। मैं विश्वास करता हूँ यदि आपने अपनी कला को बढ़ने दिया, जिसकी कम ही सम्भावना है क्योंकि आपका पेशा एकदम कलाहीन है, तो मैं कह सकता हूँ कि इन चित्रों के द्वारा आप अमर हो जायेंगी।"

गिरधर बोला, "जीवन-दान की कला को क्या आप हीन

समझते हैं ?"

प्राणनाथ ने उपेक्षा की दृष्टि से गिरधर की ओर देखकर कहा, "जीवन-दान एक पेशा होते हुए भी कला नहीं है, रस नहीं है। एक प्रकार के निश्चित सिद्धान्तों पर चलने की प्रेरणा है, नियम-पालन है। डाक्टर शरीर के मिस्त्री हैं, जिनका काम शरीर-रूपी मकान को देर तक बनाये रखना है।"

शुभदा बोली, "जीवन को बनाए रखना ही तो सृष्टि में महत्त्वपूर्ण है। कला-भावना उसी के ऊपर तो निर्भर करती है।"

प्राणनाथ ने तत्क्षण उत्तर दिया, "डाक्टर जीवन नहीं है, जीवन को बढ़ाये रखने का निमित्त है, इसलिए उसका महत्त्व ईंटों की दीवारें या टूटे-फूटे की मरम्मत करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जीवन के स्रष्टा स्त्री-पुरुष हैं। सौन्दर्य, प्रतिभा, शक्ति भी उनके प्रयत्नों का सार है। डाक्टर तो केवल फटे हुए को सींने वाला दर्जी है, यदि इतनी बात से आप उसका महत्त्व समझती हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

शुभदा चुप हो गई। गिरधर बोलना नहीं चाहता था। मालूम होता था कि प्राणनाथ ने सबको प्रभावित कर दिया है। शेफाली ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं डाक्टरी के महत्त्व को बढ़ाना नहीं चाहती। वह न मिस्त्री के काम की तरह है, न दर्जी के। वह संसार के सौन्दर्य, स्वास्थ्य, प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाये रखने वाला एक लगन का स्रष्टा है, जिसके प्रयत्नों में जीवन की स्थिरता है। डाक्टर मृत्यु को जीतने के प्रयास का प्रतीक है, यदि वह शुद्ध रूप से उसी भावना को लेकर काम करे। मुझे रोगियों की सेवा में वास्तविक आनन्द आता है। चित्रकला तो मेरे लिए एक 'हॉबी' है। 'हॉबी' जीवन के आनुषंगिक आनन्द का साधन है। जो लोग इसको प्रधान रूप से अपनाते हैं, उनको मैं प्रणाम करती हूँ।"

फिर भी प्राणनाथ की बातों से शेफाली प्रभावित हुई। उसे लगा जैसे यह व्यक्ति जहाँ ज्ञानी है वहाँ अनुभवी भी है; बहुश्रुत होने के साथ

बहुद्रष्टा भी है; बत्तीस-तेतीस की आयु में जैसे इस व्यक्ति ने अपने अनुभवों से बहुत-कुछ कूड़ा-कर्कट छानकर नवीन दृष्टि से जीवन का संग्रह किया है। बातचीत में तीव्र, विवेचनात्मक दृष्टि, पार तक जाने वाली प्रतिभा, उसके साथ ही शारीरिक सौन्दर्य और वाणी का विलास, इन सबने मिलकर शेफाली, शुभदा तथा गिरधर को मोह लिया।

राममोहन ने आगे प्रसंग बढ़ाने के लिए कहा, "प्राणनाथ अच्छे मित्र ही नहीं हैं, संसार को खुली आँखों से भी उन्होंने देखा है। यूरोप के सभी देशों में ये घूमे हैं।"

प्राणनाथ ने बीच में बात काटते हुए कहा, "इससे क्या होता है राममोहन, मनुष्य को उन्हीं अनुभवों से लाभ होता है जिनका उसके दैनिक जीवन से सम्बन्ध होता है। यद्यपि मैं मानता हूँ कि परोक्ष रूप से मनुष्य स्वयं वही नहीं है जैसा वह दिखाई देता है; उसके सम्बन्ध, उसका ज्ञान दूर तक व्याप्त होते हैं। यद्यपि आज मेरे उन व्यापारों, कामों का यहाँ कोई महत्त्व नहीं है, कोई उपयोगिता भी नहीं है, जो मैंने जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैण्ड में प्राप्त किये हैं।"

शुभदा बोल उठी, "तो आप कितने दिन तक यूरोप में रहे?"

"लगभग आठ साल। पढ़ने गया था बाप के खर्च पर, घूमना मेरा लक्ष्य हो गया, और काम भी किया।"

"क्या काम?" शेफाली बीच में पूछ बैठी।

"ये सब लम्बी बातें हैं। फिर भी मैंने प्रायः सभी प्रकार की सभा-सोसाइटियों में घुसकर देखा और पाया कि हर सोसाइटी में मुश्किल से एक प्रतिशत आदमी ईमानदार हैं, पाँच प्रतिशत अन्ध-विश्वासी जो दूसरे की बुद्धि को बड़ा मानकर चलते हैं, दस प्रतिशत स्वार्थी और शेष अवसरवादी होते हैं।"

"क्या मतलब?"

प्राणनाथ जैसे अपने दिमाग की किताब खोलकर उसमें से कुछ पन्ने पढ़ रहा हो, बोला, "यूरोप में विचारों का बड़ा संघर्ष है। सभी

तो पढ़े-लिखे हैं। सभी की समस्याएँ हैं, इसलिए वहाँ मनुष्य का मस्तिष्क निश्चेष्ट नहीं है। सभी के मस्तिष्क में एक भयंकर द्वन्द्व उठता रहता है।"

बातचीत गम्भीर हो चली थी। वातावरण में निस्तब्धता आ गई थी, फिर भी जैसे सभी प्राणनाथ की बात सुनने के लिए उत्सुक थे। राममोहन का मन दुकान की तरफ था। वह रह-रहकर बेचैन हो उठता। एकाध बार उसने प्रसंग बदलकर बात को समाप्त करने की कोशिश की, परन्तु प्राणनाथ जैसे छा गया था। बाकी सब उसे सुनने को तैयार थे। हारकर राममोहन बोला, "अच्छा, मैं अभी आ रहा हूँ। क्षमा कीजिए, जरा जरूरी काम याद आ गया।" इतना कहकर राममोहन चला गया।

शेफाली ने पूछा, "यूरोप आपको कैसा लगा ?"

"आपका क्या मतलब है ? यूरोप अच्छा है। सब आदमी अपनी-अपनी दृष्टि लेकर यूरोप जाते हैं। पढ़ने-लिखने वालों के लिए, सैर-सपाटे वालों के लिए और व्यापारी वर्ग के लिए—सभी के लिए अपने-अपने दृष्टिकोण से वह विचित्र देश है। सबके लिए सब-कुछ वहाँ मिलता है। जहाँ वह पूरा भौतिकवादी देश है वहाँ विलास की भी कमी नहीं है। शिक्षा-शास्त्री भी वहाँ एक से एक बढ़कर हैं, विचारक भी। मैंने वहाँ के सभी वर्गों को देखा है। उनमें घुल-मिलकर रहा हूँ। मुझे लगा, आचार जैसी कोई चीज वहाँ नहीं है।"

"क्या मतलब, क्या सभी आचारहीन हैं ?"

"हाँ, हमारे आचारों के साथ वहाँ के लोगों का मेल नहीं खाता। वे जहाँ विचारों में स्वतन्त्र हैं वहाँ देश की रूढ़ियों के भी कट्टर पालक हैं। वे उसे एटीकेट या शिष्टाचार मानते हैं। इधर जर्मनी में काफी दिन रहा हूँ ; वह विचित्र देश है।"

"किस दृष्टि से ?"

"विचारों की दृष्टि से। द्वितीय महायुद्ध से पहले उसकी तैयारी देखकर हैरानी होती थी। साम्यवादी, समाजवादी और साम्राज्यवादी

इन तीन प्रकार के विचारों का जितना संघर्ष मैंने जर्मनी में पाया उतना और कहीं नहीं। इसीलिए मैं तीन वर्ष तक जर्मनी में रहा। कुछ काम भी कर लेता था, जिससे गुजारा हो जाता था। आपको शायद मालूम हो, जर्मनी बुद्धिमत्ता का, विज्ञान का, सबसे बड़ा केन्द्र है। वहाँ के मनुष्य का निर्माण विचित्र ढंग से हुआ है। हिटलर ने अपने शासन-काल में उसमें एक प्रकार की कट्टरता भर दी। वहाँ का व्यक्ति अपने को संसार में सबसे श्रेष्ठ समझने लगा।"

"तो आप वहाँ कौनसी पार्टी में शामिल हुए ?"

"कई पार्टियों में, और अन्त में कम्यूनिस्ट पार्टी में। वही मुझे अच्छी लगी। उसी का काम मुझे ठीक ढंग से काम करनेवाला लगा। बाकी फासिस्ट मैं हो नहीं सकता था, क्योंकि फासिज्म का प्रचार केवल जर्मन लोगों के लिए था। सोशलिस्ट पार्टी वहाँ अवसरवादी थी। कम्यूनिस्ट पार्टी का काम और ध्येय संसार में कम्यूनिज्म का प्रचार करना था। बड़ी कठिनाई से एक मित्र की सहायता और बराबर प्रयत्न करने के बाद मुझे उसमें घुसने के लिए छः मास लगे।"

"तो क्या आपका विश्वास है कि संसार के कल्याण के लिए केवल यही एक विचार सुसंगत है ?" शेफाली ने प्रश्न किया।

"हाँ, उस समय तो यही था।"

"और आज क्या है ?" शुभदा ने पूछा।

"आज मैं मानववाद का उपासक हूँ।"

"वह क्या बला है ?" शेफाली ने व्यंग्य करते हुए पूछा।

प्राणनाथ उत्तर देने ही जा रहा था कि शेफाली के नौकर ने रोगी देखने के लिए एक आदमी के आने की खबर दी। शेफाली उसी समय बाहर चली गई। लौटकर बोली, "क्षमा कीजिए प्राणनाथ बाबू, एक बीमार को देखने जाना पड़ रहा है। आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।" इतना कहकर शेफाली अपना बक्स लेकर बाहर चली गई।

शुभदा इतने पर भी प्राणनाथ की बातों में रस ले रही थी। गिरधर

भी प्राणनाथ की बातों में तल्लीन था। वह कट बैठा, "यह मानवतावाद वस्तुतः कोई वाद नहीं है, एक प्रकार की विचार-धारा है जो समय और परिस्थितियों से निकली है।"

प्राणनाथ ने उत्तर दिया, "आज मनुष्य के सब पुराने मूल्य बदल गए हैं। वह स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से विशाल तथा व्यापक की ओर जा रहा है। मानो विज्ञान तथा प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों का निरन्तर उद्घाटन हो रहा है। नये-नये आविष्कारों के द्वारा देश और काल की सीमाएँ टूट रही हैं। आदर्शों की अपेक्षा यथार्थवादी दृष्टिकोण ने मनुष्य को एक नये ढंग से सोचने को बाध्य कर दिया है।"

शुभदा ने जाना जैसे यह व्यक्ति व्याख्यान दे रहा है। उसका मन ऊबने लगा। फिर गिरधर भी कुसमुसाने लगा। प्राणनाथ ने यह देखा और अन्त में उसने कहा, "मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि सब-कुछ परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। और ये हमारे निरन्तर अवचेतन मनों के आविष्कार हैं; कोई वस्तु अपने-आप अकारण नहीं होती। अच्छा, फिर आऊँगा," कहकर वह उठा।

शुभदा बोली, "तो क्या आप भी कम्यूनिस्ट रहे हैं?"

"हाँ, काफी दिनों तक। मैं जर्मन कम्यूनिस्ट पार्टी का मेम्बर था। वहीं काम करता रहा, जेल गया, मार खाई। विश्वास था कि अब लौटना मुश्किल है, पर समय ने पलटा खाया; जर्मनी का रूस से समझौता होने के कारण मैं भी छूट गया। पर बात यह है कि मैं कभी बहुत बड़ा कार्यकर्त्ता नहीं रहा हूँ। मैं तो सोचना और लिखकर प्रचार करना पसन्द करता रहा हूँ। मैं जिन दिनों पाँचवीं-छठी में पढ़ता था, उन दिनों भी असहयोग आन्दोलन में मैंने पढ़ना छोड़ दिया था।"

"मानवतावाद तो अधूरा रह गया," गिरधर बोला।

"मानवतावाद वैसे कोई वाद नहीं है। ईसाइयों के स्वर्गवाद से इस का आरम्भ हुआ, किन्तु आज मैं जिस मानवता का उपासक हूँ वह किसी एक की नहीं, संसार के सभी विचारकों द्वारा मनुष्यता की प्रतिष्ठा-पूजा,

उसकी उन्नति का रूप है। अच्छा चलूँ, देर हो रही है।"

शुभदा ने खड़े होकर विदा करते हुए आग्रह किया, "यह आपका घर है प्राणनाथ बाबू।"

प्राणनाथ दोनों को नमस्कार करके चला गया। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। गिरधर बोला, "अनुभवी और विचारक है, दुनिया देखे हुए है।"

"बैरिस्टर भी तो है।"

"हाँ।"

"इस संसार में ज्ञान अनन्त है। उसका सुख भी अनन्त है। कोई भी रूप हेय नहीं है। वह मनुष्य है जिसके कारण हेय और उपादेय होता है।"

"तो हेयता और उपादेयता वस्तु में नहीं, ग्राहक में है। ग्राहक-मनुष्य अपने अधूरे सुख-दुख के कारण वैसी विवशता अनुभव करता है। खैर, जाने दो इन बातों को। तुम एक कविता सुनाओ।"

"इस समय मूड में गम्भीरता छा गई है, इसलिए बस, अब जाता हूँ।"

गिरधर चला गया। शाम को प्राणनाथ के साथ राममोहन आकर निमन्त्रण दे गया। उसने कहा, "यह मेरा तो आग्रह है ही, साधना की भी प्रार्थना है। आप सबको आना होगा।" शेफाली ने अर्ध मन से उसके आग्रहपूर्ण निमन्त्रण को माना।

प्राणनाथ बोला, "पहले यह बताओ उस निमन्त्रण में मेरा नाम भी है या नहीं?"

राममोहन ने हँसकर कहा, "तुम्हें न भी बुलाता तो तुम कब माननेवाले हो!"

"तो वैसे तुम बुलाना नहीं चाहते क्यों?"

राममोहन बोला, "हाँ भाई, तुम्हारा नाम तो उसमें होगा ही। आखिर एक विचारक के बिना पार्टी का मजा भी क्या?"

शेफाली ने हँसकर कहा—"हाँ, यदि आपने प्राणनाथ बैरिस्टर को न बुलाया तो हम न आयँगे।"

इसी समय चाय आ गई। शेफाली ने बड़े सत्कार से प्राणनाथ तथा राममोहन को चाय पिलाई। राममोहन चाय पीते-पीते बोला, "प्राणनाथ, मैं एक बात पूछता हूँ। वकालत का पेशा क्या कम बोलने-वालों के लिए नहीं है ?"

प्राणनाथ चाय का प्याला नीचे रखकर वाक्-युद्ध की तैयारी के लिए सन्नद्ध वकील की तरह बोला, "सुनो राममोहन, वकालत बोलने का नाम ही तो है। वह वकील ही कैसा जिसे बोलना न आए। हम लोग संसार का कष्ट केवल वाणी के द्वारा दूर करते हैं, न्याय की प्रतिष्ठा करते हैं; झूठ और सच को दूध-पानी की तरह अलग करते है; सो केवल बोलकर ही तो, तर्क-संगत प्रतिभा से। और तुम सुनाओ जो चुपके-चुपके मुस्कराते हुए करोड़ों की सम्पत्ति हजम कर जाते हो—डकार भी नहीं लेते। सच पूछा जाय तो संसार में सबसे भयंकर व्यक्ति पूँजीवादी है। उसकी गहराई तक पहुँचना शायद विष्णु के बस की बात भी नहीं है। उसका पेट पाताल से गहरा है—समुद्र-सा अगाध, जिसमें असंख्यों गरीबी से पिसने वाले जीव कुलबुलाते रहते हैं। तुम्हारी निन्दा या करतूतों का स्तोत्र तो शेषनाग भी शायद ही कर सकें।"

राममोहन ने कहा, "तो क्या तुम समझते हो मैं वैसा पूँजीवादी हूँ ?"

प्राणनाथ ने कहा, "साँप सब एक-से हैं, चाहे छोटे हों या बड़े।"

इसी समय गिरधर भी किसी काम से आ गया। राममोहन ने सफाई देने की चेष्टा की; इसी बीच में शेफाली ने कहा, आपको मालूम है हमारे गिरधर बाबू कवि हैं। कल आपने इनकी कविता सुनी होगी। मेरा दुर्भाग्य है, मैं वह नहीं सुन सकी।"

शुभदा ने गिरधर की आँखों में हँसते हुए कहा, "गिरधर अच्छे

कवि ही नहीं हैं, गाते भी बहुत सुन्दर हैं।"

गिरधर ने 'जीवन के अधूरे चित्र' नाम की कविता सुनाई। नवयुवक गिरधर की स्वर-माधुरी तथा भावों से विलास करने वाली शब्द-योजना पर सुननेवाले मुग्ध हो उठे। प्राणनाथ के लिए तो हिन्दी कविता नई चीज थी। वह अँग्रेजी कविता के गीत गाता रहता था। वह उसके सामने देश की कोई भी कविता श्रेष्ठ मानने को तैयार न था। गिरधर की कविता सुनकर वह चुप हो गया। राममोहन, शेफाली शुभदा ने उसकी कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। शेफाली तथा शुभदा की इच्छा थी कि गिरधर एक कविता और सुनाये कि इसी समय राममोहन ने प्राणनाथ से पूछा, "हिन्दी कविता के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है प्राणनाथ ?"

प्राणनाथ ने उत्तर दिया, "सारी हिन्दी कविता के सम्बन्ध में नहीं कह सकता। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि गिरधर की कविता को जैसा मैं समझता हूँ उसके अनुसार यह द्वितीय श्रेणी के कवि भी अभी तक नहीं स्वीकार किये जा सकते। इनकी कविता पढ़े-लिखे मस्तिष्क और हृदय को प्रेरणा देती है। मुझे कविता सुनकर आनन्द आया। यूरोप में गाकर कविता पढ़ने की प्रथा नहीं है, न वहाँ कवि-सम्मेलन-जैसी कोई चीज है। विशेष रूप से आमन्त्रित होकर केवल योग्य व्यक्तियों के सामने कवि कविता-पाठ करते हैं। मैंने 'लैटर आफ एकेडेमी' में यूरोप के प्रसिद्ध कवियों का कविता-पाठ सुना है। उसमें श्रोता को कितना आनन्द आता है! वह सभा केवल सीमित लोगों की है। एच० जी० वेल्स, बर्नार्ड शॉ के भाषण भी मैंने सुने हैं। ऐसे अवसर पर प्रेसों के प्रतिनिधि भी एकत्रित होते हैं; वे रत्ती-रत्ती रिपोर्ट लेते हैं और दूसरे दिन समाचारपत्रों में आलोचना-प्रत्यालोचना के साथ उस कार्यवाही का वर्णन रहता है। मुझे हिन्दी की कविता सुनकर नया अनुभव हुआ। मैं मानने लगा हूँ कि भावों की दृष्टि से वह कविता सुन्दर है। एक बार मुझे 'न्यू-जर्स' के दल वाले कवि लेविस तथा मेकनीस से

भी मिलने का अवसर मिला है। उस दिन लन्दन की एक पार्टी में मैं सम्मिलित हुआ था। वहीं एक सज्जन ने उनके सम्बन्ध में बताया। वहाँ नये युग का एक कवि 'आडेन' है। वह राजनीति और मनोविज्ञान दोनों का विश्लेषण कविता में करता है। आत्म-विश्लेषण की रहस्यात्मिका पद्धति पर वह नहीं चला है, जैसी कि हमारे यहाँ प्रथा है। उसने अपनी कविता में युग की कटु अनुभूतियों का वर्णन किया है।"

राममोहन उठने के लिए आतुर था किन्तु प्राणनाथ के व्याख्यान से रुक गया। अन्त में जब उससे न रहा गया तो बोला—"बस, बस, रहने दो प्राणनाथ, मैंने जो-कुछ प्रारम्भ में तुम्हारे सम्बन्ध में कहा था, शेफाली जी इसका प्रमाण हैं कि वह झूठ नहीं सिद्ध हुआ।" इसके साथ ही वह हँस पड़ा।

प्राणनाथ उस समय भी व्याख्यान झाड़ रहा था। वह उस समय बहुत गम्भीर होकर बोल रहा था। राममोहन की बात सुनकर बोला, "चाय पीकर प्रेरणा प्राप्त हुई है, उसका प्रतिदान कर रहा हूँ राममोहन, अच्छा चलो। तुम यहाँ बैठने न दोगे। व्यापारी की बुद्धि हमेशा संक्षेप तथा मतलब की बात में रहती है।" इतना कहकर दोनों उठ खड़े हुए। शेफाली ने धन्यवाद देकर उन्हें दरवाजे तक पहुँचा दिया।

गिरधर भी थोड़ी देर बैठकर चला गया। शुभदा ने अपने कमरे में जाकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

शेफाली राममोहन तथा प्राणनाथ के सम्बन्ध में सोचने लगी। यह प्राणनाथ कितना सुन्दर और कितना बहुज्ञ है—हवा की तरह प्राण देने वाला। क्या इसे किसी बात का अभाव नहीं है? सन्तुलित अवस्था का नाम जीवन है। शरीर की रसग्राहिणी शक्तियों का अपने-अपने कार्य को पूरा करते जाना उसकी स्थिरता है। फिर वासना या सेक्स-तृष्णा को भी उसका आहार देना क्या उचित नहीं है? यह जीवन सभी ओर से तो रस लेता है। केवल अन्न, केवल पानी, केवल हवा या आग से जैसे काम नहीं चल सकता इसी प्रकार क्या यौवन भी एक

प्यास नहीं है ? प्यास, भूख···प्राणनाथ, राममोहन, पुरुष, स्त्री···
कितना सुन्दर स्वप्न है जीवन का स्वप्न ! परन्तु मैंने तो अपना
जीवन रोगियों की सेवा को दे रखा है न ? उस सेवा-भावना से क्या
मेरा काम नहीं चल सकता ? अवश्य मानसिक प्रेरणाओं को एकाग्र
करके एक तरफ लगा देने से शरीर के स्वास्थ्य को स्थिर रखा जा सकता
है। विवेकानन्द, परमहंस, दयानन्द आजीवन ब्रह्मचारी रहकर यदि
स्वस्थ रह सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि मैं अपने उद्देश्य की एका-
ग्रता में लीन रहकर सेक्स की भूख को न भूल जाऊँ। राममोहन ?
राममोहन का विचार आते ही शेफाली का हृदय विरक्ति से भर उठा।
वह इससे अधिक कुछ न सोच सकी। कमरे के बाहर छज्जे पर टहलने
लगी। उस समय रात के दस-ग्यारह का समय होगा। आकाश के एक
कोने से चन्द्रोदय हो रहा था। शायद उस दिन पंचमी या छठ थी,
चन्द्र के उदय के कारण नीले आकाश का यह कोना जगमगा उठा था,
आशा की किरण की तरह। उसे दिखाई दिया कि इतना सुन्दर होते
हुए भी यह चन्द्रमा अपनी धवलिमा में अन्धकार का चिह्न, लांछन ढोता
रहता है। हमारे सूर्य में भी अनन्त गड्ढे हो गए हैं। पहाड़ों में गुफाएँ
हैं, फूलों में कीट हैं, जहाँ सरिताओं में स्फुटिक-स्वच्छ जल है वहाँ उनकी
तहों में किरकिरा देने वाली बालू रेत भी है। इन पत्थर और ईंटों के
मकानों में मनुष्य नामक प्राणी रहता है, जिसमें अनन्त विकृतियों का
ढेर है। उसका ध्यान सामने के परिवार की ओर गया। उस छोटे-से
मकान में पशुओं की तरह बच्चे रहते हैं। उनके माता-पिता बच्चों के
जीवन की गाड़ी ढोने वाले दो बैलों की तरह हैं, जिनके पास कोई सुख
का साधन नहीं है। स्त्री प्रतिवर्ष एक बच्चा देती है। पालने की क्षमता
नहीं है, फिर भी बच्चे होते जाते हैं। लालन-पालन, शिक्षा-संस्कारों
के अभाव में भी ये दयनीय दम्पति सन्तान पैदा करते हुए मानो विवश
हैं। पिछले दिनों मुझे बुलाने के लिए इनके पास फीस नहीं थी, इस-
लिए मुझे न बुला सके, किन्तु मैं स्वयं गई और बिना फीस लिये मैंने

चिकित्सा की। मुझे इस काम से कितनी प्रसन्नता हुई! क्या यह वास्तविक सुख नहीं है?

उसने सुना कि दम्पति में झगड़ा हो रहा है। स्वर की कठोरता, बातों का घनापन बढ़ता जा रहा है। शेफाली ने और पास खड़े होकर सुनने का यत्न किया, किन्तु कोई बात साफ सुनाई नहीं दी, केवल कभी-कभी कोई वाक्य तेजी से बोलने पर सुनाई दे जाता। उस एकान्त रात में सुनसान होते हुए भी, क्रमशः कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। थोड़ी देर में ही उसने जाना कि पड़ोसी अपनी स्त्री को पीट रहा है। स्त्री मार खाकर भी चुप है। इसी बीच में बच्चे के रोने की आवाज सुनाई देने लगी। पुरुष ने उन बच्चों में बड़ी लड़की को भी मारा। वह पिटती और जोर-जोर से रोती जाती थी। शेफाली से यह सब न देखा गया। वह विवश होकर मकान से उतरी और उस मकान में गई। मकान शेफाली के पीछे की गली में था—तंग और गन्दा। उसके दरवाजा खटखटाते ही पड़ोसी नीचे उतर आया। सब लोग चुप हो गए।

शेफाली को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह उसे जानता था। वह जानता था कि वह लेडी-डाक्टर है। बिना फीस लिये डाक्टर लोग कहीं नहीं जाते, किन्तु शेफाली के सम्बन्ध में यह बात न थी। वह एकबार उसके घर बिना फीस लिये भी देखने आई थी। फिर भी इस अवस्था में उसके आने का वह किसी प्रकार भी स्वागत नहीं कर सकता था। उसके बाल बिखरे हुए थे। वह एक फटी हुई मैली बण्डी तथा घुटने तक का जाँघिया पहने था। उसने शेफाली को देखते ही प्रभाव या विवशता से पूछा, "कहिए, क्या बात है?"

शेफाली जितनी तेजी से उधर आई थी, उससे उसने यह नहीं सोचा था कि वह वहाँ क्या करने जा रही है। वह स्वाभाविक रूप से दयार्द्र होकर उन्हें कष्ट से बचाने आई थी। यदि आवश्यकता पड़ती तो आर्थिक सहायता के लिए भी वह तैयार थी, किन्तु उस व्यक्ति के इतना पूछने पर वह भूल गई कि उसे इसका क्या उत्तर देना चाहिए। फिर भी उसे

कुछ तो करना ही होगा, कुछ तो उत्तर देना ही होगा। इसी से वह बोली, "क्या तुम्हारे घर कोई कष्ट में है? बड़े जोर-जोर से आवाज आ रही थी। यदि मेरी सेवा की आवश्यकता हो तो तैयार हूँ।"

पड़ोसी ने कहा, "ऐसी तो कोई बात नहीं है।"

इतने में उसकी स्त्री आ गई। शेफाली को देखते ही उसने प्रणाम किया और बोली, "आइए डाक्टर साहब, अन्दर आ जाइए।"

लेडी डाक्टर अन्दर चली गई। उसने अन्दर जाकर जो देखा उससे उसके रोंगटे खड़े हो गए। लड़की एक तरफ पड़ी सिसक रही थी। शेष बच्चे चुपचाप पड़े थे। एक फटी दरी पर मामूली कम्बल में बच्चे पड़े थे। चिल्लाने तथा लड़ाई के कारण गोद का बच्चा जाग गया था। स्त्री उसे गोद में लिये थी।

शेफाली से न रहा गया। उसने कहा, "मुझे आपके घर में इस समय आने का कोई अधिकार नहीं है, किन्तु आप दोनों की लड़ाई तथा इस बच्ची का रोना सुनकर मुझसे न रहा गया, इसी से मैं आ गई हूँ।"

दम्पति चुप थे। वे क्या उत्तर देते? उन्हें लेडी डाक्टर को देखकर संकोच हो रहा था कि वे उसे बैठाएँ कहाँ?

इसी बीच में उसकी पत्नी बोली, "बहनजी, ऐसी तो कोई बात नहीं है। शायद आपको मालूम हुआ कि लड़ाई हो रही है। वैसे ही बच्चों की शरारत पर ये चिल्ला रहे थे।"

शेफाली क्या उत्तर देती! बिना कुछ कहे वह घर के चारों ओर दृष्टि डालकर लौट आई।

सबेरे उसने उन बच्चों की माँ को बुला भेजा। उसके हाथ में सौ रुपये देते हुए कहा, "मालूम होता है तुम्हारे पति बेकार हैं। यह घर

के खर्च के लिए हैं।" इतना कहकर वह मरीज को देखने वाले कमरे में चली गई।

हीरादेई पहले हिचकिचाई। वह 'बहनजी,' कहती हुई आगे चला भी कि इसी समय शेफाली ने लौटकर कहा, "इस समय जाओ, फिर बात करूँगी।"

हीरादेई चुपचाप बहुत देर तक खड़ी रही, फिर घर लौट आई।

रात के समय शुभदा के अपने कमरे में चले जाने पर शेफाली फिर उस पड़ोसी के घर पहुँची और जाकर उसकी पत्नी से कहा, "इन लड़कियों को पढ़ने भेजो। मैं इनकी पढ़ाई का खर्च दूँगी।" इसके साथ ही उसने हर-एक बच्चे से प्रेम-भरी बातें कीं और बोली, "इन बच्चों के कपड़े सिलवाओ। जितनी और आवश्यकता होगी मैं दूँगी।"

हीरादेई एकदम रोकर शेफाली के पैरों पर गिर पड़ी। शेफाली ने उसे उठाते हुए कहा, "मैं तुम्हारी बहन हूँ, जिस चीज की आवश्यकता हो, मुझसे कहना।" कुछ इधर-उधर की बातें करके वह चली आई।

इसी समय दरवाजे पर प्राणनाथ मिल गया। बोला, "शायद इतनी रात को आपके पास आना अनुचित है। फिर भी जी न माना। इधर से गुजर रहा था, सोचा मिल लूं। आपको कोई ऐतराज तो नहीं है?"

शेफाली ने बाहर से झिझकते हुए कहा, "एतराज किस बात का प्राणनाथ बाबू, आइये न! प्राणनाथ के भीतर आते ही शुभदा अपने कमरे से उठकर शेफाली के पास आ बैठी।

प्राणनाथ बोला—"राममोहन के ऊपर चोर-बाजार में ज्यादा दाम लेकर सामान बेचने का मुकदमा चल रहा है। बड़ी दौड़-धूप हो रही है। आज उसने मुझे भी अपना वकील बनाया है। ये लोग लूटने में डाकुओं से कम नहीं हैं। सरकार जितना ही कण्ट्रोल करती है उतना ही लोगों का कष्ट बढ़ता है और उतना ही व्यापारियों को कमाने का अवसर मिलता है।"

शुभदा पूछ बैठी, "तो फिर आप क्यों बेईमानों को बचाने पर तुले हुए हैं ? आपको तो सोच-समझकर केस हाथ में लेना चाहिए। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आपका कोई सिद्धान्त नहीं है। केवल रुपया कमाना ही उद्देश्य है चाहे जैसे मिले।"

प्राणनाथ ने उत्तर दिया, "शुभदा, मेरे सामने यह प्रश्न नहीं है कि मेरा क्लाइण्ट कैसा है, वह कितना ईमानदार है। मेरे सामने तो अपनी वकालत का प्रश्न है। इधर वकालत करते मुझे छः मास से ऊपर हो गए, मैं अभी तक अपना खर्च भी नहीं निकाल पा रहा हूँ। उसी वकील या बैरिस्टर की समाज में प्रतिष्ठा है, जो खूब कमाता है। जिसके पास बहुत से केसेज आते हैं; जो झूठ को सच बनाकर अपने मुवक्किल को जिता दे। भूखों मरने वाले योग्य से योग्य वकील को कोई भी नहीं पूछता, यहाँ तक कि जज भी नहीं। समाज में तो वह एक बेकार-सा आदमी है।"

शुभदा बोली, "तो इसका यह अर्थ हुआ कि आपके सामने धर्म-अधर्म कुछ नहीं है ?"

प्राणनाथ इस प्रश्न के लिए तैयार ही बैठा था। कहने लगा, "हमें पहले यह देखना होगा कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है ? वैसे मैं धर्म-अधर्म कुछ भी नहीं मानता। फिर भी आपके सामने एक वकील की हैसियत से बहस करने को तैयार हूँ। धर्म-अधर्म अपेक्षाकृत चीजें हैं। जिसको एक व्यक्ति धर्म मानता है दूसरा उसे धर्म नहीं मानता। मनुष्य को मारना आपकी दृष्टि में अधर्म है, किन्तु युद्ध में उसी व्यक्ति को मारना धर्म कहा जा सकता है। सबल व्यक्ति कानून बनाकर धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म बना देता है। हिटलर ने अपने सिद्धान्त-विरोधी प्रत्येक व्यक्ति को मार देना, उसे पीड़ित करना, धर्म बना रखा था। इसी तरह कम्यूनिस्ट अपने विरोधी को मार देने में कोई पाप नहीं समझता। वह ईश्वर को मानने वाले दकियानूसी विचार के प्रत्येक व्यक्ति को अपना शत्रु समझता है। उसे मार देने में उसे कोई आपत्ति

नहीं है।"

शेफाली ने कहा, "ये तो राष्ट्र में किसी व्यक्ति या दल के सबल होने पर बनाये गए अपने सिद्धान्त के अनुसार समाज का निर्माण करने वाले लोगों की बातें हैं। साधारणतया, सामान्य अवस्था में तो हमें धर्म-अधर्म को उसी रूप में स्वीकार करना होगा। उस अवस्था में धर्म का तो एक ही रूप होगा न? मान लीजिए, एक व्यक्ति चोर-बाजार के द्वारा अधिक लाभ उठाकर लोगों को उत्पीड़ित करता है, अपने स्वार्थ के लिए जरूरतमन्द लोगों को सामान न देकर उन्हें देता है जिनके पास पैसा है। उसके इस कार्य से हजारों व्यक्ति भूखों मरते हैं तो क्या उसका यह काम किसी भी अवस्था में धर्म है?"

प्राणनाथ ने कहा, "आप ठीक कहती हैं। हमें देखना चाहिए इस चोर-बाजार की क्रिया का प्रारम्भ कहाँ से होता है। आपको मालूम है, भारतवर्ष में इतना अन्न उत्पन्न होता है कि वह अपना ही नहीं दूसरे देशों का भी पेट भर सकता है? स्पष्ट है कि इस युद्ध में सरकार हमारी इच्छा के विरुद्ध लोगों को सेना में भरती करके ले जा रही है। जो अन्न होता है वह भी पूर्णरूप से हमारे गुजारे को न छोड़कर सब फौजों के लिए ले जा रही है। तो क्या आपकी दृष्टि में सरकार का वह अन्न, जिस पर हमारा अधिकार है, हमसे छीन ले जाना न्याय है? जब सरकार ही हमारे साथ न्याय नहीं करना चाहती और हमको लूट रही है तो ये छोटे-छोटे व्यापारी जो हमको लूट रहे हैं, उनमें कौन लूटने वाला बड़ा है? आप कहेंगी कि सरकार इन व्यापारियों के द्वारा हमें अधिक लूट रही है। अब और सुनिए। कष्ट है केवल गरीबों को; अमीरों तथा अधिकारियों को कोई कष्ट नहीं है। अमीर अधिक से अधिक रुपया खर्च करके सामग्री प्राप्त कर लेते हैं; अफसर अपने प्रभाव से प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ तक कि जिन लोगों ने कण्ट्रोल चलाया है वे भी उसके लाभ में सम्मिलित हैं; उनके भी हिस्से हैं। यदि व्यापारी उन्हें उनका पूरा शेयर नहीं देते तो वे व्यापार करने से वञ्चित कर दिए

जाते हैं। फिर आप बताइए, क्या सरकार स्वयं अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारियों को चोर-बाजार के लिए प्रोत्साहित नहीं करती ? बात यह है, जैसे सरकार लोगों की आँखों में धूल झोंककर फौजों के लिए अन्न, कपड़ा रुपया, संग्रह कर रही है, इसी तरह कर्मचारी भी व्यापारियों को दबाकर अपना पेट भर रहे हैं। व्यापारी इधर गरीबों का पेट काट-काटकर अपनी थैली में कमी नहीं होने देते। सबका बोझ पड़ता है गरीबों पर। अब दोषी कौन है—व्यापारी या सरकार ? वैसे तो इस लड़ाई से, यह कहना होगा, 'मॉरल' सबका गिर गया है—सरकार, अधिकारी, व्यापारी तथा गरीबों का, सबका। जिस देश में लोग आचारहीन हो जाते हैं उस देश की यही अवस्था होती है। बड़े को लूटते देखकर छोटे भी लूट मचाने लगते हैं, इसलिए केवल व्यापारी ही दोषी नहीं हैं। जो न्याय का ढोंग रचते हैं वे भी उतने ही दोषी हैं। इसके साथ ही जनसंख्या की वृद्धि, अन्न की कम उपज, ऊपर से आचारहीनता, आपा-धापी—ये सब चीजें हैं जिनके कारण सारा देश दुर्दशाग्रस्त और चोर-बाजारी का शिकार बन गया है।"

"पर यह कहाँ सिद्ध हो गया कि आपका चोर-बाजारी करने वालों को सहायता देना ठीक है," शुभदा पूछ बैठी।

"तो मैं क्या करूँ, भूखों मरूँ, या आत्महत्या कर लूँ ? कहिए।"

शुभदा इतनी दूर तक जाने को तैयार न थी, इसलिए चुप हो गई। यद्यपि सन्तोष उसे नहीं हुआ था, फिर भी वह बोली, "सच है, गड़बड़ सभी जगह है।"

शेफाली ने कहा, "इसका उत्तर तो प्राणनाथ बाबू ने दे दिया कि जब ऊपर से नीचे तक अधर्म ही अधर्म है तो व्यापारी क्या करें ? उसे भी मजबूर होकर यही करना पड़ता है जो वह कर रहा है। सभी तो जीना चाहते हैं 'वेस्टेड इण्टरेस्ट' या निहित स्वार्थ ही इस बुराई की जड़ है। तो क्या प्राणनाथ बाबू, राममोहन इस अभियोग से बरी हो जायँगे ?"

प्राणनाथ ने कहा, "निःसन्देह ! यह तो उनके रुपये पर निर्भर है जो बड़े से बड़े को उसकी तरफ फैसला करने को बाध्य कर देगा। उसके रुपये की शक्ति से हाईकोर्ट के बड़े से बड़े वकील का दिमाग उसके पाप को पुण्य सिद्ध करेगा। आप देखेंगी, राममोहन का बाल भी बाँका न होगा।"

शुभदा बोली, "किन्तु वह मेरी दृष्टि में तो···"

प्राणनाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और बोला, "खैर जाने दीजिए, मैं भी इसे अधर्म ही मानता हूँ। पर क्या करूँ ? और इन सबका एकमात्र उपाय है हमारे आर्थिक ढाँचे का पुनर्गठन। यही एक-मात्र इस कष्ट का उपाय है।"

दूसरे दिन इच्छा न होते हुए भी शुभदा के साथ शेफाली राममोहन के घर गई। और शुभदा तो प्राणनाथ से राममोहन के चोर-बाजार के द्वारा रुपया कमाने की बात सुनकर आने के लिए तैयार ही नहीं थी। उसने चलने से पूर्व इसका घोर विरोध किया। उसने कहा—"दीदी, क्या तुम ऐसे व्यक्ति के यहाँ जाना पसन्द करती हो जिसने हजारों गरीबों का खून चूसकर रुपया कमाया है। उसे याद आ रहा था कि बंगाल को भूखा मारने में इन्हीं लोगों का हाथ था, जो बंगाल सभ्यता, संस्कृति, विद्या-बुद्धि का केन्द्र युग-युगान्त से चला आ रहा था उसी के लोगों को वहाँ के इन चोरों ने भूखा मार डाला। पशु-पक्षियों और कीड़ों की तरह उन्हें विवश होकर प्राण देने पड़े"। शुभदा कहते-कहते एकदम रो पड़ी।

शेफाली ने प्यार करते हुए अपने हाथों से उसके आँसू पोंछे, तथा बहुत समझाने-बुझाने के बाद वह जाने के लिए तैयार हुई।

जिस समय ये दोनों राममोहन के घर पहुँचीं उस समय दरवाजे पर ही साधना मिली। साधना ने दोनों को आते देख आगे बढ़कर स्वागत किया। इसी समय राममोहन भी आ गया। उसने हाथ जोड़कर दोनों को नमस्कार किया। जिस कमरे में बैठने का प्रबन्ध था वह काफी

सजाया गया था। कुछ और व्यक्ति वहाँ बैठे हुए थे। शेफाली और शुभदा को साधना ने ले जाकर कुछ अन्य स्त्रियों के पास बिठा दिया। वे सब स्त्रियाँ एक से एक सुन्दर कीमती कपड़ों तथा साड़ियों से सुसज्जित थीं। प्रायः सभी के मुँह पाउडर से रंगे थे; होठों पर लिपस्टिक तथा नाखूनों पर नेल पेंट था। कुछ के नाखून शोभा के तौर बढ़े हुए थे। साधना ने शेफाली और शुभदा का परिचय कराया और वे दोनों बैठ गईं। यथासमय प्राणनाथ भी आ गया।

सब मिलकर कुल दस-बारह पुरुष थे और इतनी ही स्त्रियाँ। पुरुषों में अधिकतर व्यापारी वर्ग था, कुछ बिलकुल अपटुडेट भी। दो बूढ़े गाव तकियों का सहारा लिये आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। एक व्यक्ति अपनी पतलून की क्रीज ही बार-बार सँभाल रहा था। मालूम होता था, उसे वहाँ बैठने से अधिक अपने कपड़ों की चिन्ता है। प्राणनाथ के पास एक और व्यक्ति बैठा था, जिसकी सफेद दाढ़ी, भरा-पूरा मुख और सिर के बाल काफी लम्बे थे। वह राम-नामी चादर ओढ़ रहा था। मालूम होता था या तो वह किसी मन्दिर का पुजारी है या साधु। वह पालथी मारे, ध्यान लगाये हुए था। गाव तकिए के सहारे बैठे दो सेठ कह रहे थे, "व्यापार कोई क्या खाकर करेगा? सबका राशन है, सब पर कण्ट्रोल है। सरकार ने कोई चीज तो हम लोगों के लिए नहीं छोड़ी। घी डालते हाथ जलता है।"

दूसरा बोला, "वह व्यापारी ही किस काम का जो धोका खा जाय! हम तो पत्थर को सोना बनाकर भी पैसा कमाएँगे। सरकार डाल-डाल चलती है, हम पात-पात चलेंगे। मेरे ऊपर मुकदमा चलाकर सरकार ने क्या ले लिया! तीन लाख कमाया, एक लाख से अधिकारियों का मुँह बन्द कर दिया; दो लाख का फायदा ही सही, न सही तीन लाख। अफसर मान गए कि कोई है।"

पहले ने यह सुनकर कहा, "हाँ, सो तो ठीक ही है।"

प्राणनाथ इसके साथ ही बोल उठा, "काम वह है जो सफलता-

पूर्वक हो जाय। चोर उस समय तक चोर नहीं है जब तक वह पकड़ा नहीं जाता। कुछ लोग स्वार्थ सिद्ध करने के लिए धर्म की आड़ लेते हैं, कुछ असफल होने पर धर्म की दुहाई देते हैं। सचाई से दोनों परे हैं। ईमानदारी समाज के आदान-प्रदान की सफलता का नाम है जिस पर वह स्थिर रहता है। बहुत लोग जिसको सत्य समझते हैं वह सत्य है, जिसको झूठ समझते हैं वह झूठ है। एक झूठ दूसरी जगह जाकर सत्य बन जाता है ; वही अपने स्थान में झूठ है।" प्राणनाथ ने दार्शनिक की तरह निर्भय होकर ये बातें कह डालीं।

व्यापारियों ने उसकी बात समझी ही नहीं, इसलिए वे चुप रह गए। बार-बार पतलून की क्रीज सँभालने वाले नवयुवक ने, जिसका नाम दुर्गाकिशन था, प्राणनाथ की तरफ मुड़कर कहा, "यह तो 'यूटीलिटेरियनिज्म' का अधूरा सिद्धान्त है, जिसके बल पर आप बहुमत को प्रधानता दे रहे हैं। 'बहुजन-हिताय' का सिद्धान्त सब जगह ठीक नहीं है। वहाँ भी हमें विवेक के साथ बहुजन-हित को प्रधानता देनी होगी।"

प्राणनाथ उस नवयुबक की बातों का उत्तर देने के लिए जा ही रहा था कि कुछ संभ्रान्त नागरिक आ गए। उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं। एक वृद्ध थे, जो खास ढंग की पगड़ी बाँधे तथा रेशमी चोगा पहने थे। उनके साथ एक नवयुवक था जो उसी वेश में था। उन दोनों के पीछे एक काला-सा व्यक्ति तोंद फुलाए अचकन की दोनों जेबों में घड़ी की सोने की जंजीर डाले पगड़ी बाँधे आया। एक और व्यक्ति था, जो वैसी ही वेशभूषा में था, परन्तु उसके माथे पर लम्बा तिलक था। मालूम होता था रामानुज सम्प्रदाय का व्यक्ति है।

राममोहन ने सबको शिष्टाचार के साथ बिठाते हुए एक-एक का परिचय देना प्रारम्भ किया। जो दोनों गाव तकिए का सहारा लिये हुए थे, उनमें से एक के सम्बन्ध में कहा, "ये हमारे नगर के प्रसिद्ध धनी हैं—सेठ रामकुमार। ये सेठ बनवारीलाल, आपके यहाँ लाखों रुपये के

लेन-देन का काम होता है। इनके साथ के सेठ रामप्रसाद नगर के प्रसिद्ध ठेकेदार, आपने सरकार को युद्ध में एक लाख की सहायता दी थी।" क्रीज वाले नवयुवक की ओर संकेत करते हुए कहा, "ये हैं राय-बहादुर रामकिशन के लड़के दुर्गाकिशन। यहाँ के प्रसिद्ध बैंकर हैं। ये हैं महन्त गंगागिरि। इन्होंने प्रतिज्ञा की है कि एक हजार मन्दिर बनवाने के बाद दाढ़ी बनवाएँगे, इसीलिए आप इनकी दाढ़ी बढ़ी हुई देख रहे हैं। नवागन्तुकों में से ये मेरे मान्य सेठ राधाकिशन। आप नगर के सम्मान्य व्यक्ति हैं। आपका सरकार तथा जनता में सम्मान है। ये हैं इनके सुपुत्र दयाकिशन। ये रायबहादुर हीरालाल। ये एडवोकेट ताराचन्द, नगर के प्रसिद्ध वकील। ये मेरे मित्र बैरिस्टर प्राणनाथ।" इसके बाद स्त्रियों की ओर संकेत करके राममोहन ने बताया, "ये डा० शेफाली हैं, एम० बी० बी० एस०।"

सबने एक-दूसरे का अभिवादन किया और यथास्थान बैठ गए। कुछ देर तक चुप्पी रही, इसी समय महन्त गंगागिरि ने कहा, "मन्दिर, मैं नहीं, भगवान् स्वयं बनवा रहे हैं। इन धनिकों को प्रेरित कर देते हैं और ये बना डालते हैं। मैं तुच्छातितुच्छ व्यक्ति हूँ—निमित्तमात्र। हरि ओम्, हरि ओम्।"

रामकुमार ने कहा, "धनी तो पहले भी थे, किन्तु प्रेरित करने वाला न होने से यह काम नहीं हुआ था। साक्षात् भगवद्भक्त हैं महन्तजी। इन्होंने सनातन धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया है। अब तक तीन सौ नये मन्दिर बन चुके हैं। भगवान् की कृपा है।"

ठेकेदार रामप्रसाद ने पूछा, "पीपल वाले मन्दिर के लिए चूना तो आपको मिल ही गया होगा। कमी रह जाय तो मुझसे कहिएगा महन्त-जी, सरकारी काम के लिए जो आता है, उसी में से भिजवा दूँगा।"

महन्तजी ने उत्तर दिया, "आपकी कृपा है आत्मन्! इधर बीस मन्दिरों की नींव अगले चार मास तक रखी जाने के लिए भक्तों को तैयार कर लिया है। दो तो आपके सेठ साहब के हैं। एक सेठ

हीरालाल का है। सत्रह मन्दिरों के लिए मैंने दूसरे नगरों में भक्तों को तैयार किया है। हरि ओम्, हरि ओम् !"

दुर्गाकिशन ने बीच में ही बात काटकर कहा, "बाबूजी, अपनी नई कोठी में एक मन्दिर की बात कह रहे थे। कदाचित् आपकी ही प्रेरणा से।"

महन्त थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "दुर्गाकिशन बेटा, धर्म का काम तो तुम्हीं लोगों के ऊपर निर्भर है न ? आखिर धर्म के जो तीन पैर कट गए हैं वह एक पैर इन्हीं दानवीरों पर तो टिका हुआ है। हरि ओम्, हरि ओम् ! तू ही है परमात्मन् !"

प्राणनाथ को इन लोगों की बातों में कोई रस नहीं मिल रहा था। उसके प्राण भीतर-भीतर कुसमुसा रहे थे।

इसी समय दीवान बहादुर ने कहा, "आप ठीक कहते हैं महाराज, सचमुच धर्म के तीन पैर कट गए हैं। मेरा विचार है, इन मन्दिरों में नित्य-प्रति दो-तीन घण्टे कीर्तन की व्यवस्था भी हो जाय तो जनता का बहुत कल्याण हो।"

महन्त ने कहा, "मैं यह भी सोचता हूँ दीवान साहब, मैंने निश्चय किया है कि नित्य-प्रति कथा तथा कीर्तन अवश्य हो। धर्म का तो तुम समझो बिलकुल ह्रास होता जा रहा है। लोग आचरणभ्रष्ट, कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो गए हैं। न संध्या, न पूजा, न जप, न पाठ। होटलों में खाते हैं। अब एक और पख लगी है, इन अछूतों को मन्दिरों में जाने दो साहब ! भला पूछो इन मूर्खों से, अरे भाई, मन्दिरों में अछूत कैसे जा सकते हैं ? मैं तो मर जाऊँगा, प्राण दे दूँगा, पर अछूतों को मन्दिरों में न जाने दूँगा।"

सब लोग एकदम बोल उठे, "धर्म का नाश हो रहा है महन्तजी, आप-जैसे ही इसकी रक्षा कर सकते हैं महाराज !"

महन्तजी ने कहा, "तुम्हारे जैसे भक्त बने रहें तो धर्म का नाश नहीं होगा। अरे भाई राममोहन, कितनी देर है ? कुछ खीर-खार भी

है या यूँ ही पूड़ी खिलाकर टाल देगा।"

राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा, "सब-कुछ है महाराज !"

"एक मन्दिर तुझे भी बनवाना होगा। प्रतिज्ञा कर तभी मैं भोजन करूँगा, सुना ? तूने भगवान् की दया से बहुत रुपया कमाया है। दो-तीन लाख तो होगा ही।"

रामप्रसाद ठेकेदार ने तत्काल उत्तर दिया, "दो-तीन लाख ! दस की बात करो। राममोहन नगर के धनियों में है। फिर भी आजकल है बड़ी मुश्किल। इन्हीं सेठ हीरालाल को लो पिछली बौनी पाँच लाख की हुई है।"

हीरालाल ने मुस्कराकर सिर हिलाते हुए कहा, "दिया कितना जानते हो ? डेढ़ लाख—पूरा डेढ़ लाख। मैंने कहा था यदि यह रुपया न देना पड़ा तो एक धर्मशाला और एक मन्दिर बनवाऊँगा।"

महन्त बोल उठा, "तो अब भी क्या बिगड़ा है सेठजी, वह तो बनेगा ही।"

हीरालाल ने कहा, "हाँ, सो तो होगा ही, परन्तु कह रहा हूँ बच जाता तो मन्दिर के ही काम आता। भगवान् के निमित्त ही तो लगता, परन्तु उन्हें यह मंजूर ही न हुआ।"

सेठ राधाकिशन बोले, "शास्त्र में लिखा है, 'यदस्मदीयं नहि तत्परेषाम्', जो हमारा है वह और का नहीं हो सकता। शास्त्रों में विश्वास करो, धर्म से प्रेम करो, साधु-सन्त की सेवा करो, ब्राह्मण की पूजा करो। सुबह-शाम भगवान् का नाम लो, सब पाप धुल जायँगे।"

प्राणनाथ से जब उस घुटते हुए वातावरण में बैठे न रहा गया तो बोला, "नगर में एक प्रसूतिगृह की आवश्यकता है। यदि धनी लोग उधर ध्यान दें तो जनता का बड़ा कल्याण हो।"

इस पर सब लोग चुप रहे। किसी ने भी प्राणनाथ की बात का न तो उत्तर ही दिया न उधर ध्यान ही दिया।

महन्त ने कुछ भी न कहकर एक बार जोर से कहा, "हरि ओम्,

हरि ओम् !"

इसी समय मि० ब्रजेन्द्रनाथ ने कमरे में प्रवेश किया—पुराने ढंग के आदमी, पुरानी तेल से सनी फेल्ट कैप, गले से मैली कमीज से चिपटी हुई टाई जो न कोट से मैच कर रही थी न भीतर की वास्कट से ; कोट का रंग खाकी और वास्कट काली ; पतलून कत्थई ; देखकर मालूम होता था शायद इसकी क्रीज धोबी ने भी ठीक नहीं की थी ; होठ काले, दाढ़ी बढ़ी हुई, पान से दाँत लाल और मैल भरे हुए, उँगलियों में सिगरेट दबी हुई। ब्रजेन्द्रनाथ को देखते ही प्राणनाथ ने उसका स्वागत किया। ताराचन्द ने फीकी हँसी हँसते हुए 'आइए' कहा और दूसरी तरफ मुँह फेर लिया। ब्रजेन्द्रनाथ प्राणनाथ के पास आ बैठा और सब उपस्थित धनी लोगों को सिगरेट के हाथ से एक-एक करके सलाम किया।

सेठ राधाकिशन बोले, "वकील साहब, बहुत देर कर दी।"

वकील ने खीसें निपोरकर उत्तर दिया, "ह-ह-ह, देर हो गई दीवान साहब, आपकी अपील की तो ता० २४ पड़ी है न?"

"हाँ, अभी-अभी मुंशी ने बताया," परन्तु लोगों को अपनी तरफ देखते हुए जानकर रहस्य-भेद के डर से चुप हो गए।

इसके बाद ब्रजेन्द्रनाथ ने ताराचन्द की ओर मुखातिब होकर कहा—"तो क्या मिण्टो रोड की मार-पीट के मामले में तुम मुद्दई की तरफ से पेश हो रहे हो ? मुझे अभी-अभी खबर मिली है।"

ताराचन्द ने स्वीकारोक्ति की और कहा—"क्या करता, मजबूर था। सुना है, तुम भी तो मुद्दालेह की तरफ से खड़े हो रहे हो।"

"हाँ। सुनो ब्रजेन्द्रनाथ, जीतूँगा तो मैं ही। चाहे कितना जोर लगा लो !"

"अरे जाओ। भूल गए उस ताड़ी वाले मुकदमे की बात ! यहाँ ऐसे-वैसे नहीं हैं। कच्ची गोलियाँ नहीं खेले !" ब्रजेन्द्रनाथ ने मूँछों पर ताव देकर कहा ; और इसके साथ ही उसने पुराने कई मुकद्दमों के

किस्से सुना डाले। ताराचन्द बीच-बीच में छेड़ देता तो ब्रजेन्द्रनाथ भड़क उठता। बहुत देर तक यही चलता रहा।

इसी समय महन्त गंगागिरि ने जोर से जम्हाई लेकर एक बार 'हरि ओम् परमात्मन्' कहा और चुटकी बजाई।

ब्रजेन्द्रनाथ ने कुछ भी ध्यान न दिया और ताराचन्द से बात करता रहा। राममोहन ने भोजन के लिए दूसरे कमरे में जाने का आग्रह करते हुए कहा, "एक प्रसूतिगृह की तो सेठजी, नगर में बड़ी आवश्यकता है। मैं बैरिस्टर प्राणनाथ की बात की तरफ आप सब लोगों का ध्यान दिलाना चाहता हूँ।"

हीरालाल बोला, "वैसे तो बरात के लिए भी शादी-घर का होना आवश्यक है। नगर में जो दो-चार हैं वे मुहूरत के दिनों में बिलकुल भर जाते हैं ; लोगों को बड़ी तकलीफ होती है।"

रामकुमार ने कहा, "सेठ हीरालाल ने शादी-घर की जो बात कही वह ठीक है। पिछले दिनों मेरे भानजे की शादी थी। मैंने चौधरी हरभजन से शादी-घर देने को कहा तो बोले, "वह तो उन दिनों एक आदमी को दिया जा चुका है।"

मैंने कहा, "लालाजी, भानजे का शादी तो वहीं होगी, चाहे किसी ने भी लिया हो। रामकुमार की बात झूठ नहीं हो सकती।"

दूसरे पास बैठे हुए व्यक्ति ने कहा, "शादी-घर तो सेठजी आपने ले ही लिया। लेते क्यों न ? रुपया हमारा लगा और दूसरे लोग मौज उड़ाएँ, यह कैसे हो सकता है ! हमने शादी-घर क्या लफंगों के लिए बनाया है ?"

रामकुमार ने कहा, "चपरासी से चाबी लेकर ताला डलवा दिया। कर लो क्या करोगे ? अपने-आप दस-पन्द्रह दिन घूम-फिरकर वह आदमी चला गया।" इसी प्रकार की बातें करते हुए सब लोग दूसरे कमरे में चले गए।

भोजन के बाद जब शेफाली शुभदा के साथ चलने लगी तो साधना

ने और ठहरने का आग्रह किया। शुभदा बोली, "इन अजब खोपड़ा के लोगों की बातें सुनकर मेरा तो सिर चकरा गया। क्या यही आपके यहाँ का भद्र समाज है। जैसे सब स्वार्थी मूर्ख जुड़ गए हों!"

शेफाली ने योग देते हुए कहा, "जैसे जीवन में इनके लिए और कोई काम न हो। या तो व्यापार की बातें करेंगे या फिर थोथे धर्म का ढोल पीटेंगे। मैं तो कहती हूँ, इसमें इनका दोष भी क्या है; न ऊँची शिक्षा इन्हें मिली है और न इनके संस्कार ही सभ्य समाज के योग्य हैं। प्रत्येक मनुष्य जैसे अपने को 'ज्ञान-वारिधि' समझता है। अब तो हम चलेंगे साधना।"

शुभदा बोली, "न जाने किन मूर्खों को तुमने बुला बैठाया। सारा मजा किरकिरा कर दिया। न किसी को बात करने की तमीज, और न किसी बात का सलीका। यह है यहाँ का धनी-वर्ग, जिसमें राममोहन रहते हैं। इनके सामने एकमात्र उद्देश्य है अपना स्वार्थ सिद्ध करना। आज ताराचन्द और ब्रजेन्द्रनाथ की बातें सुनकर तो मुझे घृणा हो गई।"

राममोहन जो अपने धनी-वर्ग का प्रभाव डालने के लिए सबको विदा करके शेफाली और शुभदा की बातें सुन रहा था, एक दम अभिभूत-सा हो गया। आगे कुछ कहने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई। शुभदा ने फिर कहा, "चलो जीजी, देर हो रही है।"

शेफाली का पड़ोसी जगन्नाथ प्रतिवर्ष नये बच्चे पैदा करके अभाव, अकाल, रोगों की वृद्धि में कुशल होते हुए भी कमाने की कला में उतना ही निकम्मा सिद्ध हुआ। कई जगह जाकर उसने नौकरी की, कई सेठों के द्वार खटखटाने के बाद भी लक्ष्मी का मुख देखने का उसे अवसर न मिला। प्रायः सब जगह से वह अयोग्य ठहराकर निकाला गया। ठीक

सिफारिश न मिलने पर सरकारी नौकरी उसे मिली नहीं। यद्यपि वह एण्ट्रेन्स पास था, फिर भी उसके भाग्य में धक्के खाने लिखे थे, या उसने जान-बूझकर पच्चीस रुपये की डाकखाने की क्लर्की ठुकरा दी, यह बात उन दिनों उसने अपनी पत्नी को बताई, जब वह उससे सरकारी नौकरी करने का बराबर आग्रह करती रहती थी। जो आदमी उसे नौकरी दिलाने को तैयार था उसने कहा था, "नौकरी तो मैं तुम्हें दिलवा दूँगा, किन्तु दो सौ रुपये रिश्वत देने होंगे।" रिश्वत का नाम सुनकर पहले उसने सोचा कि कहीं से दो सौ रुपये माँगकर नौकरी प्राप्त कर ले। इस काम के लिए वह अपने पुराने हितू के पास गया, जिसने उसे शिक्षा में सहायता दी थी, उसे सहायता देने का वचन भी दे दिया। पर रास्ते में आते हुए जगन्नाथ के विवेक ने उसके हृदय को ग्लानि से भर दिया। वह सोचने लगा कि जिस नौकरी का प्रारम्भ इस तरह की रिश्वत से होता है क्या वैसी नौकरी उसे करनी चाहिए? यही बात वह देर तक सोचता रहा। बाग के एक कोने में बैठा वह इसी बात पर विचार करता रहा। अन्त में उसने निश्चय किया कि ऐसी नौकरी वह नहीं करेगा, नहीं करेगा। किसी भी और व्यक्ति की नौकरी करके वह निर्वाह कर लेगा, परन्तु ऐसी सरकारी नौकरी करना उसकी शक्ति से बाहर है, जिसमें दो सौ रुपये पहले रिश्वत में देने हों।

स्कूल की शिक्षा का प्रभाव उसके हृदय पर था, जिसमें अध्यापकों ने बताया था—"न्याय की सब जगह विजय होती है।" स्वयं कई बार वाद-विवाद में भाग लेकर उसने न्याय और धर्म के महत्त्व को ऊँचा सिद्ध किया था। उसने उन धनिकों की अपेक्षा उन गरीबों के चरित्र को ऊँचा बताया था, जो अन्याय से रुपया पैदा करके धनी नहीं बनते हैं। यही सब सोचकर न तो वह उस व्यक्ति से मिला, जिसने नौकरी दिलाने का वचन दिया था और न वह दो सौ रुपये देने को तैयार अपने हितू के पास ही गया। जब उसने घर आकर अपनी नवोढ़ा पत्नी को यह निश्चय सुनाया तो वह पहले तो झल्लाई परन्तु अन्त में जगन्नाथ की ज्ञान-भरी

बातें समझ में न आने पर चुप हो गई।

हीरादेई में पति के नौकरी न मिलने पर भी यौवन की न बुझने वाली प्यास जाग रही थी, जैसी कि प्रत्येक नवयुवती में होती है। जगन्नाथ अपने विवेक के सहारे बहुत बड़े पद पाने की उच्च आशा में रात को पत्नी की गरम साँसों में शराब के नशे-सी बेसुधी पाकर झूम उठता और लगातार दिन में इधर-उधर घूमकर नौकरी की तलाश में असफल होता हुआ भी सृष्टि-वृद्धि के प्रयत्न में असफल कभी नहीं रहा। दो सन्तानों तक तो उनके प्रेम में कमी न आई। अभाव-पीड़ित रहते हुए भी वे दोनों रात्रि के अन्धकार में भविष्य का उज्ज्वल प्रकाश देखा करते, जैसे प्रत्येक बच्चे की पैदाइश के साथ उनका भविष्य में प्रकाशित हो उठने वाला भाग्य कहीं दूर प्रतीक्षा कर रहा हो। फिर भी एक बात अच्छी थी कि जो सात-आठ बच्चे हुए, उनमें केवल तीन ही जिन्दा रहे। दो बार तो जुड़वाँ बच्चों ने जन्म लेकर हीरादेई को पागल बना डाला था। दिन में कुतिया की तरह दोनों तरफ दो बच्चों को लिटाकर दूध पिलाती। उस समय एक पैरों की तरफ पड़ा रहता, बाकी जमीन पर पड़े बच्चे चिल्लाते रहते। दिन में काम-काज में लगी रहने पर भी रात को जगन्नाथ को देखती तो वह भूल जाती कि वह नरक में पड़ी है। जगन्नाथ तो एक दम भूल जाता कि उसका संसार में कोई भी दायित्व है, यद्यपि इसके बाद उसे ग्लानि कम नहीं होती थी। लुढ़कते हुए पत्थर की तरह वह कभी एक जगह तो कभी दूसरी जगह नौकरी करता। बराबर न्याय और विवेक के सम्बन्ध में सोचने या दूसरे के धन के सामने विवश होकर हृदय को सान्त्वना देने के लिए विवेक और न्याय का ढिंढोरा पीटने की हलचल में उसे उस स्थान से निकल जाना पड़ता। वह धीरे-धीरे धनिकों का शत्रु भी हो चला। प्रत्येक धनी को वह बेई-मान समझने लगा और प्रत्येक गरीब को उन्हीं के द्वारा पीड़ित, ईमान-दार। परन्तु बात दोनों ओर ग़लत थी। न तो प्रत्येक धनी बेईमान था और न प्रत्येक गरीब ईमानदार। वह एक प्रणाली थी, जिसमें दोनों ही

पिस रहे थे। नौकरी करते हुए उसने दीवान साहब के यहाँ प्रतिमास किराया उगाहने का काम किया। मकानों के अभाव में किराये के अलावा पगड़ी के नाम से जो एक प्रकार की रिश्वत चल रही थी उसके लिए उसे ग्राहकों को तैयार करना पड़ता। जो अधिक देता उसी को दुकान-मकान किराये पर मिलते। दो-दो तीन-तीन हजार पगड़ी दीवान ले लेते तब मकान या दुकान उन्हें दिये जाते। जगन्नाथ का मन भीतर ही भीतर इस काम का विरोध करता, क्योंकि उस रुपये में से उसे कुछ भी न मिलता था। केवल बड़ा मुंशी भीतर ही भीतर खा जाता या मोटी रकम दीवान के घर जाती। उसे तो केवल गिने-चुने तीस रुपये ही मिलते। घर का खर्च अच्छी तरह न चलने पर भी बेईमानी या तथाकथित पगड़ी के लिए लोगों को उसे ही तैयार करना पड़ता। एक-दो बार जो कुछ भेंट उसे प्राप्त भी हुई वह भी उसने झुँझलाहट में आकर छोड़ दी। एक दिन बड़े मुंशी के साथ खटपट हो जाने पर उसे निकाल दिया गया। इसके बाद उसने सेठ हीरालाल, सेठ रामकुमार के यहाँ नौकरी की, किन्तु अस्थायित्व तथा दुर्भाग्य के सिवा उसके हाथ कुछ न आया।

अन्त में एक दिन गृह-कलह तथा बच्चों की भूख से तंग आकर उसने आत्महत्या की ठानी। परन्तु उसे जमुना में डूबने के लिए जाते समय एक व्यक्ति मिल गया, जिसने शाहदरे की मैंच फैक्टरी में उसे पचास रुपये की क्लर्की देने का विश्वास दिलाया और उस दिन दोपहर को वह पचास रुपये का नौकर हो गया। जगन्नाथ के घर छोड़ने के बाद हीरादेई स्वयं बहुत दुखी हुई, अपने को उसने बुरी तरह कोसा, अपनी जीभ को उसी जीभ से गालियाँ दीं। क्रोध में आकर सिर, छाती पीट डाले। बच्चों को बहुत बुरा-भला कहा। उनके पेट को भर-पेट कोसा। जगन्नाथ के न लौटने का ध्यान आते ही बहुत व्यग्र हो उठी। इधर-उधर उसने गली से बाहर निकलकर उसकी तलाश की, परन्तु जगन्नाथ के जमुना में बहने की प्रतिज्ञा करने वाले प्राण उसे बाजार में कहीं दिखाई न दिए। उसने पड़ोसियों के यहाँ, गली के बाहर साइकिल वाले

की दुकान पर जगन्नाथ को ढूँढ़ा। सब जगह से निराश होकर लौटने पर उसे शेफाली ताँगे से उतरती मिली। हीरादेई शेफाली को देखकर चुपचाप पास आकर खड़ी हो गई। शेफाली ने उसे इस तरह व्यग्र पागल-सी बनी कभी नहीं देखा था। दवाइयों का बैग हाथ में लिये शेफाली ने प्रश्न-भरी दृष्टि से हीरादेई को देखा। वह कुछ देर खड़ी रहने के बाद 'बहनजी' कहकर रो पड़ी।

शेफाली ने उसकी अवस्था देख साथ-साथ घर आने को कहा। दोनों मकान के बाहर बरामदे में आकर खड़ी हो गईं। जगन्नाथ की पत्नी ने बताया—"वह सवेरे ही जमुना में डूबने की प्रतिज्ञा करके गये हैं। मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पागल हो गई हूँ। हाय बहनजी, अब मैं क्या करूँगी ?" इतना कहकर हीरादेई शेफाली के पैरों पर गिर पड़ी। शेफाली के घर रोगियों की भीड़ लगी थी। इधर हीरादेई की परिस्थिति ने उसे ठहरने को विवश कर दिया था। उसी समय गिरधर घर में घुसता दिखाई पड़ा।

शेफाली गिरधर को बुलाकर हीरादेई की सहायता तथा जगन्नाथ की खोज-खबर लेने की बात कहकर बोली—"गिरधर, अभी ताँगा लेकर जमुना की तरफ जाओ और जगन्नाथ को ढूँढ़कर मेरे पास ले आओ। ये दस रुपये ले जाओ।" इतना कहकर दस रुपये का एक नोट उसने गिरधर के हाथ में रख दिया।

गिरधर कालेज जाने की तैयारी में था। शायद शुभदा से कुछ कहने आया था कि उसे शेफाली का यह आदेश मिला। उसने कालेज जाने का विचार छोड़ जमुना की यात्रा की। किन्तु वहाँ कहीं भी उसे जगन्नाथ का चिह्न तक न मिला। दो-तीन घण्टे इधर-उधर भटककर वह लौट आया। उस दिन शेफाली ने अपने नौकर के द्वारा जगन्नाथ के घर खाना भिजवाया। दोपहर को उसके घर जाकर भी समझा-बुझाकर उसे भी खिलाया। हीरादेई तो उस दिन पागल-सी हो गई। शेफाली रोगियों को न देखने जाकर उस दिन उसी के पास बैठी रही। गिरधर और शुभदा भी हीरादेई के घर पर बैठे उसे समझाते रहे।

गिरधर को शेफाली ने दो-एक बार और भी अपने नौकरों के साथ जगन्नाथ को खोजने भेजा, किन्तु कहीं भी जगन्नाथ का पता न पाकर वे लोग लौट आये। जमुना पर एक व्यक्ति बराबर उसे ढूँढ़ता रहा। मल्लाहों को भी आस-पास नाव लेकर खोजने भेजा गया था। इसी समय सायंकाल के सात बजे जगन्नाथ घर आ गया। शेफाली ने जगन्नाथ को उसकी मूर्खता के लिए डाँटा। परन्तु जगन्नाथ से मैच फैक्टरी में नौकरी का समाचार पाकर वह चुपचाप लौट आई। जगन्नाथ भी यथानियम रहने लगा।

एक दिन जगन्नाथ की नौकरी फिर छूट गई। यह उस समय मालूम हुआ जब वह फैक्टरी जाने का समय होने पर भी किताब पढ़ता रहा। हीरादेई ने जब दफ्तर जाने की बात चलाई तब जगन्नाथ बोला, "जाऊँ कहाँ, नौकरी तो छूट गई है। अब मैं नौकरी नहीं करूँगा। मैंने नौकरी तथा नौकर रखने वालों की जड़ खोदने का काम ले लिया है।"

हीरादेई कुछ भी न समझ सकी। वही लम्बी आह भरकर दुर्भाग्य को कोसती काम में लग गई। जगन्नाथ उस दिन बारह बजे दोपहर को गया और रात को नौ बजे के करीब घर लौटा। हीरादेई ने कुछ भी न कहा। इसी तरह दूसरे-तीसरे दिन भी हुआ। अब दोपहर को और कभी सबेरे उसे कुछ आदमी बुलाने आते और वह उनके साथ चला जाता। दूसरे दिन शेफाली रोगियों को देखकर जगन्नाथ के घर आई तो हीरादेई ने बताया कि नौकरी छूट गई है। न जाने अब क्या काम करते हैं। दस-ग्यारह बजे चले जाते हैं और रात गए लौटते हैं। कभी बैठे-बैठे किताबें पढ़ते रहते हैं। कहते कुछ भी नहीं। शेफाली चुपचाप खड़ी रही। बच्चे पढ़ने गये थे। गोद के बच्चे का हाल-चाल पूछकर शेफाली लौट आई। अब शेफाली नियमित रूप से बच्चों के पढ़ाने का खर्च देने

लगी थी। कभी-कभी ऊपर का खर्च भी दे देती। शेफाली के पास ही कभी-कभी सरोज रात को रह जाती। इस तरह जगन्नाथ के घर का खर्च चलने लगा।

एक दिन प्रातःकाल ही शेफाली ने अपने नौकर के द्वारा जगन्नाथ को बुलवाया, किन्तु वह उस समय घर पर नहीं मिला। शाम को भी वह नहीं मिला। रात में सरोज को शेफाली स्वयं पढ़ाती। उस रात को शेफाली आराम से बिस्तर पर लेटी हुई सरोज को पढ़ा रही थी कि हीरादेई आई और बोली—"वे घर आ गए हैं। मैंने उनसे बहुत कहा, परन्तु न जाने क्यों वे आपके सामने आते घबराते हैं। बहनजी, मैं तो इस जीवन से तंग आ गई हूँ। ऐसे मालिक से तो मैं राँड होती तो अच्छा था।" कहने को तो हीरादेई ने जोश में आकर यह बात कह डाली, किन्तु उसे लगा जैसे उसने बड़ा अपराध कर डाला है। उसकी आँखों में आँसू आ गए।

सरोज गरम चादर ओढ़े पढ़ रही थी। नलू पास ही बैठा एक तसवीर की किताब देख रहा था। सरोज की अवस्था दस वर्ष और नलू पाँच साल का था। शेफाली कुछ देर सोचकर हीरादेई के साथ चल पड़ी। जगन्नाथ शेफाली को देखकर घबरा गया।

शेफाली ने एक खाट के पाये पर बैठकर जगन्नाथ से कहना आरम्भ किया—"देखो, मैंने तुम्हारी गरीबी देखकर तुम्हें सहायता दी है। यदि तुम नौकरी नहीं करोगे तो मैं तुम्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं दे सकती। तुम जवान आदमी हो तुम्हें काम करना चाहिए। यह क्या बात है कि तुम नौकरी नहीं कर सकते?" जगन्नाथ चुप रहा। शेफाली जगन्नाथ के उत्तर की प्रतीक्षा में रही। उसने फिर कहा—"बोलो, तुम क्या कहते हो? ऐसे कैसे काम चलेगा? तुम्हारी इतनी गृहस्थी है उसका तुम्हें पालन-पोषण करना चाहिए।"

जगन्नाथ ने कहा, "कहाँ करूँ काम? जहाँ नौकरी करने जाता हूँ वहीं खटपट हो जाने पर नौकरी छोड़नी पड़ती है। फैक्टरी में वेतन

बढ़ाने का आन्दोलन चल रहा था, मैं भी उसमें शामिल हो गया। मालिक ने कुछ और कार्यकर्त्ताओं के साथ मुझे भी निकाल दिया। मेरा मन मालिकों की करतूत देखकर विद्रोह कर उठा है। मैं कम्यूनिस्ट हो गया हूँ। अब पार्टी का काम कर रहा हूँ। मजदूरों को मालिकों के विरुद्ध तैयार करना मेरा काम है।"

"परन्तु घर का काम कैसे चलेगा, गृहस्थी चलाना भी तो तुम्हारा काम है?"

"इस को भी तो कुछ काम करना चाहिए। हमारी गृहस्थी उस समय चल सकती है जब यह भी कुछ काम करे," जगन्नाथ ने कहा।

"फिर तुम क्या करोगे?"

"मैं बीस रुपये प्रतिमास इसे घर के लिए दे सकता हूँ, इससे अधिक नहीं।"

हीरादेई एकदम बोल उठी, "ठीक है, मैं काम करूँगी, तो ये भी घर का आधा काम करें। बच्चों को पालना, रोटी, चौका, झाड़ू-बुहारी कपड़े धोना, इतना काम है कि मुझे समय ही नहीं मिलता। दिन-रात जानवर की तरह पिली रहती हूँ, बहनजी!"

शेफाली ने जगन्नाथ से कहा—"इसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है?"

जगन्नाथ बोला—"डाक्टर साहब, मैं अपने जीवन में सदा ईमानदार रहा हूँ। कभी मैंने एक पैसा रिश्वत या अन्याय का नहीं लिया, बल्कि ऐसी अवस्था आने पर मैंने विरोध ही किया है। उसका नतीजा आप देख रही हैं कि मैं कहीं भी टिककर नौकरी नहीं कर सकता। अभी फैक्टरी में सबेरे से शाम तक काम करने वाले मजदूर जब अपने खाने पेट भरने के लिए पैसा माँगते हैं तो मालिक अधिक से अधिक लाभ उठाकर भी मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने को तैयार नहीं हैं। उन्होंने प्रार्थना करके अपनी माँगें पेश कीं; जब कुछ न बना तो हड़ताल की धमकी दी। परन्तु मालिकों ने हम लोगों को निकाल दिया। जब हम लोगों के भाग्य में भूखों मरना ही लिखा है तो क्यों न कुछ काम

करके ही भूखों मरें," जगन्नाथ यह कहकर चुप हो गया।

हीरादेई की समझ में कोई बात नहीं आई। शेफाली उसकी बातों से बहुत प्रभावित हुई, किन्तु हड़ताल द्वारा कार्य-सिद्धि की प्रणाली उसकी समझ में नहीं आई। फिर भी वह कुछ देर तक चुप रहकर सोचती रही। किन्तु जगन्नाथ के बच्चों का क्या हो? वह केवल दयालु होकर उनकी सहायता भर कर सकती है; उसके घर का सारा बोझ तो अपने ऊपर नहीं ले सकती। थोड़ी देर चुप रहने के बाद शेफाली बोली, "यह तो ठीक है, परन्तु इससे तुम्हारे परिवार की समस्या तो हल नहीं हो जाती। हड़ताल द्वारा न जाने कब सफलता मिले, पर बीवी-बच्चों को खाने को तो हर दिन चाहिए न! उसका तुमने क्या उपाय सोचा ?"

जगन्नाथ ने तत्क्षण उत्तर दिया, "इन्हें इनकी अवस्था पर आप छोड़ दीजिए। जहाँ इतने बच्चे भूख और बीमारी से मरते हैं वहाँ ये भी मर जायँगे। आपने जो इनकी सहायता की, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ।"

शेफाली उठकर चल दी। जगन्नाथ की बातों से उसे धक्का लगा।

रास्ते भर वह तरह-तरह की बातें सोचती रही। अपने कमरे में जाकर चुपचाप लेट गई। इसी समय गिरधर आ गया वह आ तो पहले ही गया था, किन्तु शेफाली को कमरे में न देखकर शुभदा के पास चला गया था। गिरधर चुपचाप नमस्कार करके बैठ गया। शेफाली ने कुछ भी न कहा। अन्त में शेफाली की मानसिक चिन्तनधारा को देखकर वह उठने लगा। सरोज पास के कमरे में जाकर सो गई थी। नलू शेफाली के पास ही एक खटोले पर पड़ा था। इसी समय शेफाली बोली, "गिरधर, तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

गिरधर ने तीली से जमीन पर रेखा खींचते हुए कहा, "ठीक है। कालेज का एक ग्रुप आउटिंग के लिए जा रहा है। इस मास के अन्त तक रवाना हो जायगा।"

"कहाँ-कहाँ जा रहा है ?"

"कई जगहों पर। फिर मद्रास भी जायगा। प्रोफेसर इन्चार्ज ने सरकार को कोलम्बो के लिए भी लिखा है, परन्तु आशा नहीं है।"

"फिर ?"

"कुछ नहीं, पूछ रहा था, क्या मैं भी चला जाऊँ ?"

"जाने में हरज क्या है ! 'देशाटनं पण्डितमित्रता च' तुमने सुना ही है। क्या लड़कियाँ भी जा रही हैं ?"

"हाँ, कुछ लड़कियाँ तैयार तो हो रही हैं।"

"क्या शुभदा भी ?"

"शुभदा से मैंने पूछा तो था परन्तु शायद वह न जायगी। उसे कोर्स पूरा करना है। मैंने भी उससे कहा है कि समय थोड़ा है, उसे घर ही रहना चाहिए।"

"हूँ," कहकर शेफाली चुप हो गई।

गिरधर बोला—"जगन्नाथ के घर की कैसी अवस्था है, आपका मूड कुछ खराब है।"

शेफाली ने कोई उत्तर नहीं दिया। "नहीं ऐसा तो नहीं है," कहकर बात को टाल गई।

इसी समय शुभदा कमरे में आई। उसने आते ही पूछा, "जीजी, क्या हाल है जगन्नाथ का, क्या उसने फिर काम छोड़ दिया ? सरोज कह रही थी अब फिर लड़ाई होने लगी है। इन बच्चों की बड़ी मुसीबत है।"

शेफाली ने कहा, "वह कम्युनिस्ट हो गया है। जाने क्या धुन सवार हो गई है। कहता है—'जब भूखों ही मरना है तब कुछ काम करके ही क्यों न मरा जाय।' मैं कहती हूँ—'क्या मनुष्य शक्ति रहते भूखों मरने आया है।' "

गिरधर ने उत्तर दिया, "निराश मनुष्य विद्रोही बन जाता है। स्वभाव के खरे व्यक्ति के लिए किसी भी जगह निर्वाह करना कठिन हो

जाता है, खास करके जहाँ बहुत से बेईमान आदमियों के नीचे काम करना पड़े।"

शुभदा बोल उठी, "यह एक पागलपन है। मनुष्य को अपनी अवस्था के अनुसार बनना चाहिए, जिसकी जितनी शक्ति हो उसके अनुसार अपने को ढालना चाहिए।"

गिरधर ने कहा, "यह तो दब्बू प्रकृति के लोगों के लिए संभव है। तेज स्वभाव का व्यक्ति तो जहाँ खराबी देखेगा, विद्रोह कर बैठेगा। मैं स्वयं कभी कम्यूनिज्म में विश्वास करता था, आज भी करता हूँ। भारतवर्ष का कम्यूनिस्ट जितना रूस के प्रति सच्चा है उतना देश के प्रति नहीं है। वह अन्न भारत का खाता है, रहता यहाँ है, पानी यहाँ का पीता है और गीत गाता है रूस के। प्रत्येक देश के लिए साम्यवाद का ढाँचा उस देश के वातावरण के अनुसार होना चाहिए।"

शेफाली को इन बातों में कोई रुचि नहीं हुई। वह चुपचाप पड़ी सुनती रही। शुभदा और गिरधर बोलते रहे।

अन्त में गिरधर बोला, "एक काम आप कर सकती हैं, जिससे जगन्नाथ के परिवार की सहायता हो सकती है। वह यह कि आप हीरादेई को रसोई बनाने के लिए रख लें। मैं बिना काम किये सहायता देने के पक्ष में नहीं हूँ। इस प्रकार की दानवृत्ति से दान लेनेवाले आलसी और निकम्मे हो जाते हैं।"

शुभदा ने तत्काल गिरधर की हाँ-में-हाँ मिलाकर कहा, "हाँ जीजी, ठीक तो है।"

शेफाली ने कुछ देर चुप रहकर कहा, "रसोई का काम मैं हीरादेई से किसी तरह नहीं ले सकती। उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं। क्या वह सफाई से स्वयं भी रह सकती है ? मैं ऐसी स्त्री के हाथ का खाना नहीं खा सकती, शुभदा !"

शुभदा ने कहा, "हाँ यह बात भी ठीक है, बच्चों की वजह से वह खाना भी तो ठीक तरह से नहीं बना सकती। बिना सफाई के उसके

हाथ का खाना ही कौन खायेगा ।"

"तो और कोई काम लीजिए पर मुफ्त में सहायता का कोई महत्त्व नहीं है," गिरधर ने दूसरी युक्ति दी । शुभदा ने भी गिरधर की बात का समर्थन किया ।

शेफाली ने कहा, "तो कल को तुम कहोगे कि इन बच्चों से भी मैं कोई काम लूँ । क्या यह उचित है ?"

गिरधर ने एक दार्शनिक की तरह उत्तर दिया, "बच्चों का बोझ उनके माँ-बाप पर है। यदि वे कोई काम करके बच्चों का पेट पालते हैं तब उन्हें आपसे सहायता लेने का पूर्ण अधिकार है । वे तो बच्चे हैं । यदि उनमें अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य होती तो वे भी इस तरह का धन लेने पर आक्षेप से मुक्त नहीं हो सकते थे ।"

शुभदा ने बात को पूरा करते हुए कहा, "यदि उनमें काम करने की क्षमता होती तो उन्हें कोई बच्चा ही क्यों कहता ।"

अन्त में शेफाली ने कहा, "मेरा कर्त्तव्य सहायता करना है, करूँगी । देखा जायगा । परन्तु गिरधर, तुम्हारी कविता का क्या हुआ ?"

शुभदा ने कहा, "गिरधर ने बड़े सुन्दर गीत लिखे हैं, जीजी !"

गिरधर कवि है और शुभदा संगीतप्रिया । दोनों कलाकार हैं । उस दिन कालेज में संगीत तथा कविता-प्रतियोगिता में दोनों के प्रथम आने पर उनका परिचय बढ़ा । दोनों एक-दूसरे को विशुद्ध भाव से प्रेम करने लगे । कभी-कभी शुभदा गिरधर के बनाए गीत गाती । गिरधर भी शुभदा के संगीत पर मुग्ध था । जब उसके स्वर में करुणा का स्रोत बह उठता है तब वह संगीत में मग्न हो जाती है । जब एक रात गिरधर का बनाया हुआ गीत शुभदा गा रही थी उस समय शेफाली उसी के पास बैठी चित्र पर कूँची फेर रही थी । शेफाली ने उसका संगीत सुनकर ब्रुश रख दिया और मुग्ध होकर गाना सुनने लगी । पूछने पर शुभदा ने बताया कि यह गीत उसके कालेज के एक कवि गिरधर का है । शेफाली ने दूसरे दिन चाय के लिए गिरधर को बुला लाने के लिए शुभदा से

कहा। यहीं से गिरधर की इस घर के प्रति परिचय की भावना में वृद्धि हुई थी।

गिरधर बहुत देर तक बैठा रहा; फिर उठकर उसने दोनों को हाथ जोड़े और चुपके से नीचे उतर गया। शुभदा अपने कमरे में चली गई। शेफाली कोई किताब उठाकर पढ़ने लगी। किताब में उसका जी न लगा तो उसने किताब उठाकर एक तरफ रख दी, चुपचाप बिजली के प्रकाश की ओर देखने लगी। वह एक ही गति से जल रहा था। एक ही प्रकार के प्रकाश से सारे कमरे को आलोकित कर रहा था। वे गरमी के दिन तो थे नहीं, किन्तु सरदी भी न थी। इसलिए कभी-कभी भुनगे आकर बल्ब के चारों ओर चक्कर लगाते और नीचे गिर पड़ते, किन्तु प्रकाश की धारा में कोई घटाव-बढ़ाव नहीं हो रहा था। पास के कमरे में बच्चे सो रहे थे। उनके करवट बदलने या तेज साँस लेने की आवाज सुनाई दे रही थी। कमरे की एक-एक चीज पर ध्यान देने के बाद वह उठी और बच्चों के कमरे में चली गई।

सरोज एक छोटी खाट पर पड़ी थी, नलू वहीं पैरों की तरफ पड़ा था। सरोज का एक पैर नलू की छाती पर था। दोनों नींद में बेसुध सो रहे थे। शेफाली बहुत देर तक उन दोनों बच्चों का सोना देखती रही। इसके बाद उसने नलू को अपने पास खाट पर सुला लिया। शेफाली का ध्यान नलू की ओर गया। वह अपने आसन पर लेटी-लेटी उस लड़के को देखती रही। नींद में मस्त वह लड़का कभी-कभी मुस्करा उठता, जैसे कोई स्वप्न देख रहा हो। शेफाली के हृदय में नलू को बराबर देखते रहने पर मातृत्व की भावना जागृत हो उठी। उसने पैर पसारकर नलू को अपनी छाती से चिपटा लिया तथा उसके मुख का एक चुम्बन लिया। जैसे ही वह उसे अपनी छाती से चिपटाती वैसे ही उसके शरीर में फुरफुरी तथा उद्दाम गति से वात्सल्य-प्रेम की भावना उठने लगती। उसने रह-रहकर उसका मुँह चूमना प्रारम्भ किया। बिजली उसने बुझा दी। थोड़ी देर बाद फिर बिजली जलाकर

नलू का मुँह देखने लगी। इस तरह करते-करते उसके शरीर में एक प्रकार का अनन्त वेग भरने लगा। नलू ने बार-बार मुँह चूमे जाने पर घबराकर करवट बदल ली। शेफाली थोड़ी देर तक उसके शरीर पर हाथ फेरती रही। वह सोचती जा रही थी, "सब-कुछ होते हुए भी जैसे मैं एक बड़े सुख से वंचित हूँ।" जैसे यह जीवन का बड़ा सुख है। उसे याद आया कि कैसे ब्याह के समय वह दुलहिन बनी थी। उस समय नासमझ बालिका होते हुए भी पति को देखने की उसके हृदय में कितनी उत्कट इच्छा थी। उन दिनों पति के रेख भी नहीं फूटी थी। साँवला चेहरा होते हुए भी उसमें एक अजीब आकर्षण था। बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बा और चमकदार मुख, घुँघराले, कढ़े हुए बाल, उसने कितनी बार छिप-छिपकर उसे देखा था! ब्याह की रात को वह उसके पीछे-पीछे चली गई थी। उसे उस समय और कुछ न मालूम होते हुए भी इतना मालूम था कि सदा से लड़की का ब्याह होता आया है, इसलिए उसका भी हो रहा है। जब प्रत्येक ब्याही हुई लड़की ठठोली में एक-दूसरे के पति की तारीफ करती तब शेफाली के हृदय में उस नवागन्तुक युवक के लिए स्थान बन रहा था। उसके पति ने कितना यत्न किया कि एक बार वह उसे देखे, किन्तु उसने प्रत्येक बार साड़ी में मुँह छिपाकर अपने को ढाँप लिया। और दूसरे दिन तो वह हो गया, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उसके पिता को पुलिसवाले पकड़ ले गये। इस अपमान से क्रुद्ध होकर पति के पिता बरात लौटा लाये। फिर आगे की बातें वह सोचने लगी। माँ ने कुछ दिन रोने-धोने के बाद अपनी बचपन की सखी लेडी डाक्टर से परामर्श करके उसे मेडीकल कालेज में दाखिल करा दिया। इससे पूर्व उसने इण्टर की परीक्षा तो पास कर ही ली थी। पढ़ते हुए उसके हृदय में मनुष्यों के प्रति घृणा के जो भाव उत्पन्न हुए उसी कारण वह क्लास के किसी लड़के के प्रति अनुरक्त न हो सकी, यद्यपि उसकी क्लास में प्रेम-प्रपंच चलते रहते थे। उसे याद आया किस प्रकार उसकी श्रेणी का

एक युवक उससे प्रेम करने लगा था, किन्तु उसने न तो उधर ध्यान ही दिया और न प्रतिज्ञा की भावना से पीछे हटी। एक बार एकान्त में इस प्रकार का प्रसंग आने पर उसने कह भी दिया था कि उसे पुरुष-मात्र से घृणा है, वह कभी किसी से प्रेम नहीं कर सकती। इस बात को सोचते-सोचते उसे फिर पूर्व-चेतना ने आकर दबा लिया और उसे नलू के चुम्बन तथा अपने ऊपर ग्लानि हुई। इसी उधेड़-बुन में वह पड़ी रही।

जगन्नाथ की गतिविधि दिन-प्रतिदन विचित्र होती जा रही थी। वह सुबह होते ही घर से निकल जाता और काफी रात गये घर लौटता। कभी-कभी रात भी बाहर बिता देता। एक दिन उसके एक साथी ने आकर घर में दाल, चावल तथा अन्य जरूरी सामान डलवा दिया। इसके साथ ही उसने पचास रुपये जगन्नाथ की स्त्री को देते हुए कहा, "ये कामरेड जगन्नाथ ने भेजे हैं। शायद वे दस-पन्द्रह दिनों तक घर न आ सकेंगे। आप चिन्ता न कीजिए।" इतना कहकर वह चला गया।

जगन्नाथ की पत्नी हीरादेई पहले तो चौंकी। वह उस समय बच्चों के कपड़ों में साबुन लगा रही थी। उसने इस व्यक्ति को देखा तब तक दो मजदूरों ने कोठरी के सामने सामान लाकर रख दिया। वह भौंचक्की-सी देखती रही। उस व्यक्ति के इतना सन्देश देने पर जब वह कुछ कहने को तैयार हुई तब तक वह आदमी सीढ़ियाँ पार कर चुका था। ऊपर से झाँककर देखने पर उसे मालूम हुआ जगन्नाथ और वह दोनों गली से बाजार की तरफ मुड़ रहे थे। वह बहुत देर तक साबुन लगे हाथों वैसी ही खड़ी रही। उसे पति की निष्ठुरता और उपेक्षा बहुत खटक रही थी। उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह फूटकर रोने लगी।

उसे रोता देखकर सरोज पास आ गई और माँ के कन्धे से कन्धा लगाकर खड़ी हो गई। चुपचाप माँ के आँसू पोंछती हुई वह भी रोने लगी।

माँ के आने और कुछ दिन रहकर चले जाने के बाद साधना के चरित्र में कई परिवर्तन हुए। उसे जहाँ एक तरफ माँ के प्रति किया गया राममोहन का व्यवहार, उसकी उपेक्षा जब-तब खलने लगती, वहाँ उसने यह भी पाया कि राममोहन प्रेम से भी ऊँचा पैसे को समझता है। यही नहीं, रुपये के लिए आवश्यकता पड़ने पर वह शायद उसे भी त्याग दे सकता है। बीमारी के दिनों में ही जब वह दर्द से बेचैन हो उठती था उन दिनों भी वह बाजार के भाव-ताव किया करता और बुलाने पर ही आता या आकर मुँह पोंछता जल्दी ही लौट जाता। डा० शेफाली के यहाँ खुद न जाकर उसने अपने मुनीम को ही भेजा, क्योंकि उस वक्त वह सट्टे के उतार-चढ़ाव में ऐसा लीन था कि उसे साधना की बीमारी की याद ही नहीं रही थी या जान-बूझकर उसने उपेक्षा कर दी थी।

इधर साधना, जो राममोहन के वैभव से प्रेम करके उसकी पत्नी बनी थी, धीरे-धीरे महसूस करने लगी कि राममोहन के पास पैसा तो है, पर वह हृदय नहीं है, जो रुपये के साथ वह पाना चाहती थी। उसने धीरे-धीरे देखा कि राममोहन साधना को कपड़ों, गहनों और सभी ऐश-आराम के सामान से लादकर भी वह चीज नहीं दे पा रहा है, जो साधना चाहती है।

एक दिन ही नहीं, अक्सर ऐसा होता कि राममोहन भूखे की तरह उससे मिलता और बाद में न तो वहाँ बैठता न बातचीत ही करता। रात के दो-दो बजे तक वह मुनीमों के पास बैठकर दुकान का काम-

काज देखता और वहीं सो जाता। साधना की उमंगों पर जैसे पाला मार जाता। वह अपने हृदय के प्रवाहित रस को निराशा की कुज्झटिका में मिला देती। साधना में प्रारम्भ से ही उमंगों का स्रोत बहता था। वह गरीब माँ-बाप की लड़की होने के कारण धन को ही सब-कुछ समझती थी। पढ़ने के दिनों में अमीर लड़कियों से मेल रखने में अपना गौरव मानती और खूबसूरत होने से उसे काम में सफलता भी आसानी से मिल जाती थी। स्वयं गरीब होती हुई भी वह अपने को अमीर दिखाती और एक बार तो कालेज के मालदार लफंगे लड़कों के चक्कर में वह गिरने ही वाली थी कि स्वभाव से भले और साहस में डरपोक इसी राममोहन ने उसे बचाया। उस कहानी का इतना ही भाग समझ लेना काफी है कि तीन-चार मालदार लड़के अपनी रिश्तेदार लड़कियों के द्वारा साधना को पिकनिक के लिए बाहर ले गए। किसी बहाने से लड़कियाँ तो चली आईं, परन्तु साधना रह गई। रात का समय, एकान्त ! एक तरफ तीन लड़के और अकेली साधना। उसी समय अचानक राममोहन अपने किसी सम्बन्धी को सैर कराने के लिए उधर आ निकला। साधना परेशान-सी कभी नाराज होती, कभी दया की भीख माँगती, कभी भागती ; परन्तु वह भाग भी कहाँ सकती थी ! वह समय दूर नहीं था कि साधना की दुर्दशा होती। राममोहन ने अपने अन्य दो साथियों के साथ आगे बढ़कर उसे पहचाना। साथ ही क्लास के जूनियर लड़कों को डाँट बताई और अपने साथ ही उसे लिवा लाया। साधना को उसके घर पहुँचा दिया। बस, उसी दिन से साधना और विचार-भीरु राममोहन में परिचय बढ़ा।

राममोहन के साथ ब्याह के बाद साधना ने जी भरकर बाहरी सुख लूटा। उसे लगा कि यही जीवन है, यही स्वर्ग है। रोम-रोम से प्यासी इन्द्रियों को सागर की तरह फैले हुए अमूल्य वैभव-विलास में डुबा देने के सिवा न तो जीवन का और कोई ध्येय है और न मानना ही चाहिए। गाने-बजाने, राग-रंग, क्लब, गोष्ठी—सभी में वह जाती। सभी तरह

के स्त्री-पुरुषों से वह मिलती। उच्च-वर्ग की 'इण्टेलिजेन्शिया' जिसमें राजनीति, धर्म, समाज की चर्चाएँ केवल जबान को पैना करने के लिए होती हैं, जहाँ नशे में डूबकर कुटिल राजनीतिज्ञों को निर्दोष साबित किया जाता है, धर्म में भरी हुई मूर्खताओं का विवेचन होता है, और उसे ढकोसला बताया जाता है, आराम से कुरसी पर बैठकर 'सिप' करते हुए जहाँ मजदूरों की हिफाजत की दुहाई की जाती है या सारी दुनिया के समझदारों को नासमझ करार दिया जाता है, वहाँ साधना भी डूब गई और उसने पाया कि इस दुनिया में सबसे ज्यादा सफल वह है जो बेईमानी को ईमान, झूठ को सच और रुपये को दुनिया का सबसे बड़ा अस्त्र मानता है ; जो लोगों को चकमा दे सकता है, बात को बदल सकता है; जो बिना भूगोल जाने अमरीका का नक्शा बना सकता है, बिना इतिहास का एक पन्ना पलटे वेदों से लेकर आज तक की घटनाओं पर बोल सकता है ; जो दूसरे की खूबसूरत औरत को हथियाने के लिए अपनी को दूसरे को सौंप दे सकता है।

ऐसे मनुष्यों की गोष्ठी में साधना को नई खुराक मिली, नया ज्ञान मिला, नया जोश मिला। वह भूल गई अपने को। राममोहन भी कभी-कभी वहाँ जाता, पर उसका मतलब था अफसरों से जान-पहचान करना और समाज में अपटूडेट बनना। हर तरह के लोगों से मिलते-जुलते रहने पर भी पुराने संस्कारों के कारण या न जाने क्यों साधना ने कोयले की उस खान में अपने को बचाने और राममोहन के प्रति वफादार रहने की काफी कोशिश की।

इस दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो खूबसूरत औरतों से ब्याह इसलिए करते हैं कि उनके द्वारा वे समाज में सफलता पा सकें और मुट्ठी में न समा सकने वाले आदमियों को काबू में कर सकें। यह नहीं कहा जा सकता कि राममोहन उन लोगों में से था या नहीं और वैसा मौका आता तो क्या करता। फिर भी उसने साधना को सबसे मिलने की खुली छूट दे रखी थी। वही उसे क्लब में भी ले गया था। साधना

रात को देर तक क्लब में बैठी ब्रिज खेला करती और राममोहन परमिटों के गुंताडे में लगा रहता। उसने क्लब से वह फायदा उठाया जिसकी आशा में वह गया था। यह सब उस समय तक चलता रहा, जब तक साधना गर्भ-भार से विवश न हो गई। इसी बीच में राममोहन ने कई लाख रुपये इधर-उधर कर दिए। इन्हीं दिनों प्राणनाथ बैरिस्टर होकर विलायत से लौटा था। प्राणनाथ में रूप, सौन्दर्य, वाचालता, वाक्पटुता आदि सभी गुण थे। जब वह बोलता तो लगता जैसे वाणी का झरना बह रहा है। उसकी लच्छेदार बातें, विलायत के नये अनुभव, कहने की शैली, सभी अद्भुत थे। साधना उधर झुकी। उसने क्लब में एकान्त में स्निग्ध शराब से रँगी हुई प्राणनाथ की आँखों में झाँकने की कोशिश की। प्राणनाथ ने भी छबि-मण्डित साधना की नशीली आँखों में उभरते नये स्वप्न देखे। एक बार उसके जी में आया कि साधना को आलिंगन-पाश में बद्ध कर ले, पर राममोहन की मित्रता का ख़याल करके वह उस पथ से हट गया। उसने कहा, "साधना, मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध देवर-भाभी का है।"

"यह कौनसा नया सम्बन्ध है प्राणनाथ बाबू," नशे में झूमती साधना ने पूछा।

"विलायत में न होने पर भी हमारे देश में इसका महत्त्व है भाभी! आज से तुम मेरी भाभी हो बस!"

साधना को जैसे धक्का लगा। वह सँभल गई और उस दिन के बाद दोनों एक-दूसरे से स्नेह करते हुए भी अलग हो गए। प्राणनाथ ने क्लब में जाना छोड़ दिया। साधना भी अन्तर्मुखी हो गई। उसमें एक नई प्रतिक्रिया जाग पड़ी। उसे लगा कि राममोहन के इस वैभव में वह नहीं है न राममोहन में ही वह है जिसकी अभिलाषा में वह अब तक डूबी रही है। वैराग्य उसे नहीं हुआ पर बढ़िया ईरानी कालीन, मखमली सोफा-सैट और बिजलियों से झिलमिल बड़ी शानदार कोठियों में, रोल्स रायस की नई माडेल में बैठकर सैर करने पर भी जैसे वह प्यासी

रहती। जैसे ये सब चीजें उसे टौंचतीं। उसके भीतर की प्यास जैसे अनबुझा रहती। उसे हर जगह अपने पास राममोहन का साँवला शरीर—जिसमें पैसे की दुनिया बहती रहती है—अतृप्तिकर, अरुचिकर महसूस होता। राममोहन धन को धर्म मानता था, जबकि वह उसे दास या इशारे पर नाचने वाला कुत्ता समझती। वह धन से सुख लूटना चाहती थी, पर वही उसे नहीं मिलता था। कभी-कभी वह मन में भुनभुनाती, 'इससे तो गरीबी ही अच्छी थी। प्राणनाथ गरीब है तो क्या, कितना सुन्दर है वह।' कभी-कभी काउच पर अधलेटी कुशन में मुँह ढककर उसकी कल्पनामूर्ति चित्रित करती। उसे सभी अमीर बदशक्ल लगने लगे और सभी गरीब अच्छे। कभी उसे अपनी माँ के यहाँ दूध दुहने आने वाला ग्वाले का नौजवान अधनंगा युवक याद आता। 'अब वह कैसा होगा ? क्या होगा ? कैसा हाथी के बच्चे-सा शरीर ! चेहरे पर कितनी लाली, जैसे खून से रंग दिया हो और इधर इन मालदार आदमियों की गुलगुली देह जिसमें चमक नाम को भी नहीं है। जिनका पराक्रम छल-छिद्र है और विनोद बनावटी हँसी। इस राममोहन की देह में सौन्दर्य जैसे भदभदा-सा उभर रहा हो। जो न यौवन का रस ही जानता है न सौन्दर्य से आप्लावित ही होता है।' उसके भीतर जो यौवन की भूख जाग रही थी वह जैसे भड़क-भड़क उठती। जितनी ही राममोहन से वितृष्णा होती उतनी ही वह अनंग की पीड़ा से आबद्ध अपने भीतर जीवन की कटुता, नीरसता, विवशता का अनुभव करती। वह चाहने लगी अब जैसा है उसी में मन को रमाना चाहिए। आखिर सबको सब-कुछ कहाँ मिलता है ! पर उसकी यौवन-अतृप्ति, हजारों में उभरती एक छवि-विद्रोह करने को उभरती। जब वह आदमकद शीशे के सामने खड़ी होकर बिखरे बाल, उभरी छाती, अनिन्द्य सुन्दर शरीर को निहारती तो उसे लगता यह सब व्यर्थ हुआ जा रहा है। कैसी विडम्बना है जीवन की !

एक बार जब वह अपने शृंगार-गृह में प्रसाधन लीन थी उसी समय

पीछे से आकर राममोहन ने उसकी आँखें बन्द कर लीं। वह फीकी हँसी हँसी, मुस्काई भी, परन्तु भीतर ही भीतर उसे लगा जैसे उसकी साफ देह पर मैला कपड़ा किसी ने रगड़ दिया हो। राममोहन दो-एक बातें करके चला गया। साधना वहीं बैठ गई। आँखें बन्द किये बैठी रही। दो बूँदें उसकी आँखों से ढुलक पड़ीं। साधना अपने को बहुत सुन्दर मानती थी। बचपन से ही उसे अपने रूप पर गर्व था। बड़ी होने पर भी अपनी दरिद्रता को दूर करने का साधन सौन्दर्य ही एकमात्र उपाय उसने माना।

हाँ, तो अब राममोहन रुपयों से खेल रहा था। एक दिन साधना ने सुना कि वह डा० शेफाली के लिए एक प्रसूति-गृह खोलने जा रहा है ; जमीन खरीद रहा है। यह सब समाचार उसने प्राणनाथ से सुने तो पूछ बैठी, "तुम आदमियों को प्रसूति-गृह की क्या जरूरत है। यह तो हम औरतों का काम है न।"

"नहीं भाभी, राममोहन को स्त्रियों की चिन्ता अधिक रहती है। वैसे भी शहर में एक प्रसूति-गृह की आवश्यकता का सभी अनुभव कर रहे हैं।" "और तुम ?"

प्राणनाथ ने दाँत निपोर दिये। बोला—"आखिर मुझे भी तो कभी-न कभी इसकी जरूरत पड़ सकती है ? मेरा मतलब..."

साधना सँभल गई। वह आगे नहीं बढ़ना चाहती थी, बोली—

"सरकारी हस्पताल से क्या काम नहीं चलता ?"

"वह काफी नहीं है शायद।"

"हो सकता है कोई और भी भेद हो। डाक्टर शेफाली भी तो बुरी नहीं हैं।"

"बुरा कौन कहता है, वह तो लाखों में एक हैं।"

"ब्याह क्यों नहीं कर लेते प्राणनाथ बाबू ? जोड़ी अच्छी रहेगी।"

"मेरा ऐसा भाग कहाँ भाभी ?"

"तो मैं कोशिश करूँ ?"

"क्या तुम उससे कह भी सकोगी ?"

साधना थोड़ी देर के लिए चुप हो गई। फिर बोली, "और तुम्हारे भाई साहब ?"

"क्यों, क्या तुम उन्हें भी आज्ञा दोगी ?"

साधना को एक धक्का-सा लगा। वह चुप हो गई। उसे अनुभव हुआ जैसे ये दोनों एक अबला को फँसाना चाहते हैं। राममोहन भी इस भावना से मुक्त नहीं है।

वह दिन-भर पड़ी सोचती रही—ऊबी-ऊबी सी जीवन से। सारा चित्र उसकी आँखों के सामने झूमता रहा। उसे लगा राममोहन डाक्टर शेफाली के प्रति अनुरक्त है। तो क्या ये दोनों उन दोनों को फँसाना चाहते हैं ? शाम को राममोहन आया तो साड़ी के किनारे बटती हुई नीची निगाह किये साधना ने तिक्त होकर पूछा, "क्या प्रसूति-गृह में रुपया बरबाद करने की बहुत जरूरत है ?"

राममोहन घबरा-सा गया। उसे कोई जवाब न सूझा। वह न जाने किस ध्यान में था। बोला—

"बरबाद ?"

"हाँ, और क्या ?"

वह स्वस्थ-सा हुआ। "नहीं साधना, इसकी जरूरत है। मैंने इतना रुपया कमाया है। सोचा, थोड़ा पुण्य क्यों न लूट लूँ। नाम भी होगा।"

"और डाक्टर शेफाली जैसी एक खूबसूरत औरत भी मिलेगी ?"

"नहीं नहीं, तुम्हें फिजूल का शक है।"

"बुराई ही क्या है। अमीर आदमी जैसे अपना पुराना मकान गिराकर नया बनवाता है, पुरानी मोटर बेचकर नई खरीदता है, यह भी सही ?"

राममोहन एकदम घबरा गया। वह पास आकर साधना का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, "क्या तुम सचमुच मजाक नहीं कर रही हो

साधना ? मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा ही रहूँगा।" इतना कहकर राममोहन ने साधना के गले में हाथ डाल दिया। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके चला गया। साधना वैसी ही बैठी रही। उसे न राममोहन की बातों पर विश्वास हो रहा था न अपने पर। शेफाली के प्रति फिर भी उसमें एक प्रकार की श्रद्धा थी। वह सोचने लगी वह यहाँ से कहीं भाग जाय, चली जाय, जहाँ उसे यह सब कुछ भी न सुनाई दे। वह उठी और शेफाली के घर चली गई।
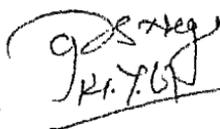
जगन्नाथ अपने साथियों के साथ कम्यून के दफ्तर में रहता और शाहदरे की मिल के मजदूरों में काम करता, उन्हें पार्टी के उद्देश्य समझाता और संगठन के काम में उन्हें एकदम हड़ताल के लिए तैयार रहने को कहता। मजदूरों में अधिकतर लोग बहुत गरीब थे। नित्य कमाना और नित्य खाना उनका काम था। उसके साथियों में कई आदमी थे, किन्तु शाहदरे की मिलों में जिनको काम का भार सौंपा गया था, वे थे रामसहाय, जगजीतसिंह और शमशेर—एकदम धुन के पक्के। रामसहाय इससे पूर्व एक बैंक में काम करता था। काम में पहली बार असावधानी करने के कारण मैनेजर ने उसे डाँटा, किन्तु कई बार वैसी असावधानी करने के कारण उसे निकाल दिया गया। बेकार घूमने पर धीरे-धीरे उसे कम्यूनिस्ट पार्टी के एक सदस्य ने कम्यूनिस्ट बना लिया। घर में उसकी एक माँ थी। वह स्कूल में तीसरी श्रेणी की लड़कियों को पढ़ाया करती थी उसी से घर का काम चलता था। बैंक में अनमने भाव से नौकरी करते हुए माँ ने उसका विवाह कर देने का एक-दो बार प्रयत्न किया, परन्तु फक्कड़ रामसहाय को यह बात पसन्द न आई। उसने माँ का घोर विरोध किया। जब काफी दिनों तक समझाने के बाद भी वह तैयार न हुआ तो अपना दुर्भाग्य समझकर माँ ने बेटे के

विवाह का विचार छोड़ दिया । वह पढ़ा-लिखा तो था किन्तु तबियत का फक्कड़ और रूखी-सूखी रोटी खाकर मस्त रहने वाला व्यक्ति था । मनोनुकूल पार्टी का काम वह जोरों से करता था । जो काम उसे सौंपा जाता उसमें तन-मन से लग जाता । चरित्र का भी वह शुद्ध था ।

जगजीतसिंह सिक्ख लड़का था । समझ में कम होते हुए भी वह दृढ़ विचार का व्यक्ति था । वह मानता था सिख धर्म और कम्यूनिज्म के अलावा संसार में सब ढकोसला है । सारे धर्म भूल से भरे हैं । गुरु गोविन्दसिंह ने जो पाठ पढ़ाया है, जो धर्म की शिक्षा दी है वही एक मात्र धर्म है तथा कम्यूनिस्ट संसार में राजनीति का सबसे सुन्दर मार्ग है । वह कम्यूनिस्ट इसलिए बना था कि उसका बड़ा भाई कम्यूनिस्ट था । पिछली गरमियों में टाईफाइड से उसका देहान्त हो गया था । वह अपने भाई को दिन-रात काम करते देखता और देखता कि सरजीतसिंह माँ-बाप के विरोध को सहकर भी बराबर काम कर रहा है ; कभी कष्ट की परवाह नहीं करता । सरजीतसिंह के इस चरित्र का प्रभाव नये पुट्ठों के बली उसके छोटे भाई पर पड़ा । उसने नवीं श्रेणी में तीन बार फेल होकर पढ़ना छोड़ दिया । बाप चाहता था कि जगजीत को फौज में या पुलिस में भर्ती करा दे । पर मरते हुए भाई के काम को पूरा करने की उसने प्रतिज्ञा कर ली और वह उसी काम में पूरी तरह लग गया । वह बराबर काम करता रहा । एक दिन तंग आकर बाप ने उसे घर से निकाल दिया ।

शमशेर स्कूल में आवारा लड़कों का सरदार था । रात को ग्यारह-बारह बजे तक आवारा घूमना और लोगों को तंग करना उसका काम था । वह रुपया न रहने पर रात में घूमता हुआ इक्के-दुक्के व्यक्ति पर हमला कर बैठता; जो कुछ मिल जाता वही साथियों के साथ ले भागता । इतने पर भी चोरी या डाके में वह कभी नहीं पकड़ा गया । स्त्रियों से उसे खास घृणा थी । जब वह किसी स्त्री को बनाव-शृंगार करके साइ-किल पर घूमते या पैदल चलते देखता, उसके हृदय में आग लग जाती ।

इच्छा होती कि उसके सब गहने लूट ले। वह कहा करता कि इन औरतों ने पुरुषों को बदचलन बनाया है। व्यभिचार बढ़ने का एकमात्र कारण इन स्त्रियों का बनाव-शृंगार करके बाहर निकलना है। ऐसी स्त्रियों का अपमान करना 'उसकी पार्टी' का ध्येय था। वह रात में अकेली या पति के साथ जाती हुई स्त्री पर हमला कर बैठता और उनके गहने-रुपये छीन लेता। फिर सब लोग किसी होटल या और जगह बैठकर खाते-पीते। वह अपने साथियों का ध्यान भी खूब रखता। स्वयं कष्ट सहकर भी उनकी सहायता करता। एक बार उसका एक साथी बीमार पड़ गया तो आठ दिन तक वह उसकी खाट के पास से नहीं हिला। जिस घटना ने उसे कम्यूनिस्ट बना दिया वह इस प्रकार थी—

एक बार शमशेर अपनी पार्टी के लोगों के साथ जमुना की तरफ घूम रहा था कि वहीं घूमते-घूमते रात हो गई। रात में घूमना तो उनका काम ही था। कोई साढ़े नौ बजे का समय था, सरदी के दिन थे। उस समय तीमारपुर की सड़कें सुनसान पड़ी थीं। दूर तक कोई आता-जाता दिखाई नहीं दे रहा था कि इसी समय एक लड़की साइकिल पर बड़ी तेजी से आती दिखाई दी। शमशेर ने प्रकाश में उसे आते हुए देखा। वह सबको वहीं छोड़कर जरा आगे वृक्ष की ओट में जा खड़ा हुआ। जैसे ही वह लड़की पास से निकली वैसे ही आगे बढ़कर शमशेर ने उसे रोक लिया और कहा, "क्या है तुम्हारे पास ?"

लड़की सहमकर साइकिल से गिर पड़ी। वह चुपचाप उठकर खड़ी हो गई और बोली, "तुम मुझसे क्या चाहते हो ?"

शमशेर मुँह बिचकाकर बोला, "रुपया।"

"मेरे पास रुपया है, पर मेरा नहीं है।"

"किसी का हो, हमें तो रुपये से मतलब है; निकालो।"

"पर यह मेरा नहीं है, मैं भूखे-नंगों के लिए रुपया इकट्ठा कर रही हूँ। क्या तुम नहीं देखते कि ऐसी रात में भी अकेली इसी काम के लिए घूम रही हूँ ?" उसने शमशेर को देखकर ये वाक्य इतने दर्द-भरे

स्वर में कहे कि शमशेर की स्त्रियों के प्रति स्वाभाविक घृणा में एक धक्का-सा लगा। वह थोड़ी देर के लिए सिहर-सा उठा। इसी समय उसके साथियों में से एक बोला, "निकाल जल्दी से, नहीं तो नंगी कर दूँगा।"

शमशेर ने अपने साथियों से कहा, "ठहरो!"

फिर वह युवती की तरफ मुड़कर बोला, "किस काम के लिए यह रुपया इकट्ठा किया है?"

युवती ने देखा कि इस व्यक्ति के ऊपर उसकी बात का प्रभाव पड़ रहा है। वह स्वस्थ होकर बोली, "हम लोग मजदूरों के लिए यह रुपया इकट्ठा कर रहे हैं। वे लोग दस दिनों से मिल में हड़ताल किये हुए हैं। उनके पास खाने को नहीं है। ये रुपया उन्हीं के काम आयेगा। यदि तुम चाहो तो तुम भी कुछ सहायता कर सकते हो।"

इस पर साथियों ने ठहाका मारकर कहा, "फरेबिन है, शमशेर, इसकी बातों में न आना।"

शमशेर थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला, "तुम क्या करती हो?"

"मैं मजदूरों, गरीबों की सेवा करती हूँ। संसार से धनियों को मिटाने का यत्न करती हूँ, जिससे सब गरीब सुखी रह सकें।"

"तुम जरा-सी औरत इतना बड़ा काम कैसे कर सकती हो?"

साथी बोल पड़े, "झूठ है।"

शमशेर चुप रहा। युवती ने शमशेर को ध्यान से देखकर कहा, "जाऊँ, या रुपया निकालूँ?"

शमशेर के मुँह से निकल गया, "जा सकती हो।"

साथियों ने गुर्राकर कहा, "शमशेर!"

शमशेर ने उसी तरह कहा, "जाने दो।"

युवती चली गई। शमशेर बहुत देर तक गुम-सुम रहा। साथियों ने उसका काफी मजाक उड़ाया, फिर भी वह कुछ न बोला।

दूसरे दिन दोपहर को अकेला उठकर उसी जगह के आस-पास

घूमता रहा। इसी तरह तीन-चार दिनों तक बराबर घूमते रहने पर एक दिन फिर उसी लड़की को साइकिल पर उसने देखा। वह दौड़कर उसके सामने जा खड़ा हुआ। यह देखकर वह युवती साइकिल से उतर पड़ी। उसने हँसकर कहा, "आज तो मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

शमशेर ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "मैं बहुत लज्जित हूँ।" युवती सड़क से एक तरफ हटकर खड़ी हो गई। वह बहुत देर तक शमशेर को देखती रही और शमशेर उसे।

तारा ने कहा, "क्या देखते हो, सब प्रकार की बुराई की जड़ गरीबी है। गरीबी को दूर करना ही हमारा काम है। हम गरीब-अमीर को एक कर देना चाहते हैं।" इसके साथ ही सड़क पर खड़ी तारा ने शमशेर को साम्यवाद की बातें समझाईं।

शमशेर ने प्रभावित होकर कहा, "मैं भी यह काम करना चाहता हूँ। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है।"

तारा ने नवागन्तुक को तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर उत्तर दिया, "हमारे पास रुपया नहीं है, काम है, सेवा है; यदि तुम काम करो तो पार्टी तुम्हें रोटी देगी।"

शमशेर तैयार हो गया। उस दिन के अवशेष भाग में तारा उसे पार्टी के दफ्तर ले गई। अब शमशेर कट्टर साम्यवादी हो गया।

जगन्नाथ उसी पार्टी में था। सब लोग उसी के कहने पर चलते, क्योंकि कुछ दिनों तक उसने इस फैक्टरी में काम किया था। वह सबको जानता था। रात को मजदूरों की सभा में सबने लोगों को समझाया, किन्तु एक प्रश्न का उत्तर वे न दे सके कि हड़ताल के दिनों में मजदूर खाएँगे कहाँ से। यदि हड़ताल लम्बी हो गई तब तो सबके प्राण ही निकल जायँगे। मजदूरी सब बढ़वाना चाहते थे, परन्तु मजदूरी बढ़वाने में जिन कष्टों का सामना करना पड़ेगा वह कौन झेलेगा? जगन्नाथ, शमशेर, रामसहाय इसका एक ही उपाय जानते थे कि चन्दा करके कुछ रुपया इकट्ठा किया जाय, जिससे मजदूरों को उस

समय कुछ सहारा मिले। परन्तु रुपया कहाँ से आवे ? सोचते-सोचते जगन्नाथ को शेफाली का ध्यान आया।

दूसरे दिन दोपहर को चारों शेफाली के पास गये और उसके सामने अपनी परिस्थिति रखी। शेफाली ने पहले तो कुछ उत्तर न दिया, फिर बोली, "जगन्नाथ, तुम जानते हो मैं बहुत मालदार नहीं हूँ। मैं स्वयं सेवा-कार्य में लगी हुई हूँ। यदि मैंने कुछ सहायता की तो क्या इतने से तुम्हारा काम चल जायगा ?" इतना कहकर उसने सौ रुपये का नोट जगन्नाथ को दिया।

जगन्नाथ और उसके साथी रुपये पाकर लौट आये। दूसरे दिन हड़ताल प्रारम्भ हुई। दूसरे जानेवालों को भी रोक लिया गया। इस तरह तीन दिन हड़ताल रही। चौथे दिन लोग जगन्नाथ के पास आकर अपनी भूख की कहानी सुनाने लगे। जगन्नाथ ने वे सौ रुपये लोगों में बाँट दिए। इधर रामसहाय अपने बैंक के कर्मचारियों से बीस-पच्चीस रुपये माँग लाया था। वे भी उन्हीं में बाँट दिये। कुछ मजदूर, जिनको पैसा दिया गया था, सीधे शराबखाने पहुँचे और शराब पी आये, कुछ ने घर का काम चलाया। इधर चार दिनों तक मिल-मालिकों ने कोई ध्यान न दिया। पाँचवें दिन उन्होंने लोगों को फुसलाना प्रारम्भ किया। कुछ को रिश्वत दी, कुछ को डरा-धमकाकर काबू में किया। बड़े-बड़े चौधरियों में दो को थाने भिजवा दिया। वहाँ उन पर मार भी पड़ी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने माफी माँग ली। इस तरह सातवें दिन हड़ताल खुल गई—असफलता के विषाद का काला वाता-वरण लेकर। चारों नेताओं ने जब यह देखा तो वे सीधे पार्टी के दफ्तर में पहुँचे। वहाँ तारा को अपना हाल सुनाया। वही उस समय वहाँ काम पर थी। उसने उन्हें आश्वासन दिया तथा बराबर उनमें काम करते रहने की प्रेरणा देती रही।

रामसहाय फिर निराश हो गया। उसने समझा कि रुपये का काम तो रुपये से ही हो सकता है। जब रुपया ही नहीं है तब यह काम भी

कैसे हो सकता है ! किन्तु जगन्नाथ, शमशेर और जगजीत तीनों काम करते रहे। रामसहाय को उसके बाद किसी ने पार्टी के दफ्तर में नहीं देखा। इधर जगन्नाथ जब-तब घर जाता, परन्तु उसने सहायता के नाम से एक पैसा भी नहीं दिया। हीरादेई शेफाली के घर झाड़ू-बुहारी और देख-रेख का काम करती। नौकर न रहने पर कभी-कभी रसोई में भी हाथ लगाने लगी। शेफाली ने नीचे एक कमरा दे दिया था, उसी में वह रहने लगी। इस समय वह अपेक्षाकृत प्रसन्न थी। बच्चे यथानियम पढ़ने जाने लगे। प्रारम्भ में हीरादेई शुभदा को आदर की दृष्टि से देखती थी। उसे लेडी डाक्टर की बहन समझकर ही वह उसका आदर करती। परन्तु एक दिन जब शुभदा ने स्वयं ही करुणार्द्र होकर उसे अपनी कहानी सुनाई, तब उस समय तो नहीं, उसके दूसरे दिन से ही आदर-भाव का दृष्टिकोण बदल गया। हीरादेई उसके प्रति विरक्त एवं उदासीन हो गई। अब यथानियम कालेज से लौटने पर न तो उसके सामने आकर खड़ी होती और न जल-पान के लिए ही उससे पूछती।

एक दिन कालेज से हड़बड़ाती आई शुभदा ने किताबें मेज पर पटककर हीरादेई से कहलवाया कि वह जल्दी ही कालेज लौट जायगी, उसे कालेज के पारितोषिक-वितरणोत्सव में भाग लेना है। हीरादेई उस समय अपने कमरे में अकेली बैठी थी, शायद घर का काम समाप्त करके लेटी थी, फिर भी वह ऊपर न आई, न उसने उत्तर ही दिया। पाँच-सात मिनट प्रतीक्षा करने के बाद शुभदा ने फिर आवाज लगाई तो हीरादेई ने अपनी कोठरी से ही उत्तर दिया, "उसे फुरसत नहीं है" और चुप हो रही। शुभदा चाहती थी कि कुछ जल-पान कर ले। अन्त में वह स्वयं हीरादेई की कोठरी के द्वार पर खड़ी होकर पुकारने लगी। उसने देखा कि हीरादेई पड़ी है।

शुभदा बोली—"कब से तुमको पुकार रही हूँ हीरादेई, मुझे कुछ जल-पान करा दो, अभी फिर कालेज जाना है, उठो !"

हीरादेई ने लेटे ही लेटे कहा, "मैंने घर-भर के लोगों की सेवा का ठेका नहीं लिया है। तुम जाओ, मेरी तबियत ठीक नहीं है।" इतना कहकर वह करवट बदलकर सो गई।

शुभदा इस उत्तर के लिए तैयार न थी। वह एकदम सन्नाटे में आ गई। उसे यह विश्वास भी न था कि कल तक मनोयोग से सेवा करने वाली हीरादेई एकदम इतनी बदल भी सकती है। वह चुपचाप कमरे में लौट आई और खाट पर पड़ रही। न उसने खाना खाया, न वह कालेज ही गई। उसे सोचते-सोचते ज्ञात हुआ कि हीरादेई मेरी वास्तविक स्थिति को जान गई है, इसी से उसके व्यवहार में यह फर्क आ गया है। उसे अपनी अवस्था पर ग्लानि भी हुई। उसने अनुभव किया कि शेफाली के अन्न पर आखिर वह कब तक पलती रहेगी। हीरादेई ने उसके स्वामित्व पर आघात किया है। उसे क्रोध आया वह उसे पीस डालेगी; शेफाली से कहकर उसे निकलवा देगी, किन्तु यह भावना देर तक न रही। उसने माना कि क्या वह भी बिलकुल हीरादेई की तरह नहीं है। आखिर उसमें और हीरादेई में भेद ही क्या है? केवल इतना ही अन्तर है कि वह पढ़ती है और ठीक ढंग से रहती है। तकिए में मुँह छिपाकर वह सुबुक-सुबुककर रोने लगी। रोती रही। इसी समय उसे पैरों की आहट सुनाई दी। फिर भी उसने मुँह न हटाया, सोचा शायद हीरादेई पश्चात्ताप करने आई होगी। अब वह उसी समय उत्तर देगी जब हीरादेई पश्चात्ताप करके उसे मनाएगी। किन्तु कुछ भी आगे न हुआ। उसने मुँह हटाकर देखा तो गिरधर को पाया। गिरधर शुभदा के इस व्यवहार से आश्चर्य में भर रहा था।

शुभदा के सिर हटाते ही उसने पूछा, "क्या बात है शुभदा, सिर में दर्द है क्या?"

"हाँ, कुछ ऐसा ही है।"

"तो कोई दवा खानी चाहिए थी, लाओ कोई बाम लगा दूँ।"

"नहीं, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, ठीक हो जायगा। आप

आराम से बैठिए।" इतना कहकर वह उठकर बैठ गई। आँसू पोंछ डाले।

गिरधर कहने लगा, "तुम्हें कोई और दर्द है क्या शुभदा ? क्या ही अच्छा हो कि मैं तुम्हारी सहायता कर सकूँ !" इतना कहकर वह शुभदा के और पास सरक गया।

शुभदा उठकर सामने पड़ी कुरसी पर बैठते हुई बोली, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। आपको भ्रम हुआ है, गिरधर बाबू !"

गिरधर अप्रतिभ हो गया। वह ढीठ की तरह मुँह निपोरकर फिर बोलने लगा, "दर्द की दवा करके बीमारी को दूर करना ही एक उपाय है। फिर भी इतना मानना पड़ेगा कि तुम्हें दर्द से ही पीड़ा हो रही है; और वैसे भी हर प्रकार का कष्ट एक दर्द है। वही तुम्हें हो रहा होगा।" इतना कहकर वह हँसने लगा। फिर चुप होकर बोला, "शेफालीजी क्या अभी नहीं आई ?"

वे अभी बीमारों को देखकर ही नहीं लौटी हैं। तीन बज रहे हैं। न खाने का अवकाश है, न आराम की जरूरत।"

"आराम उन्हें चाहिए जिन्हें अपनी चिन्ता हो। शेफालीजी प्राण, मन, कर्म से रोगियों की हो चुकी हैं। वह तुम्हारे यहाँ की कम्यूनिस्ट कहाँ है ?"

"नीचे कमरे में आराम कर रही हैं," शुभदा ने व्यंग्य से कहा।

गिरधर ठहाका मारकर हँसा और बोला, "ठीक है, इधर तुम्हें आराम चाहिए, उधर उसे ; जिसे आराम नहीं चाहिए वह काम कर रही है। क्या मैं जान सकता हूँ शुभदा, तुम्हारा कितना कोर्स बाकी है ?"

शुभदा ने हाथ की दोनों मुट्ठियों को मलते हुए कहा, "आपका मतलब ?"

गिरधर ने तत्काल उत्तर दिया, "तुमने सुना नहीं, मैं उन आदमियों में से हूँ जो इस बात की खबर रखते हैं कि कहाँ और कब भोज है।"

शुभदा ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं नहीं समझी।"

गिरधर बोला, "पढ़ने के बाद लड़कियाँ क्या चाहती हैं, क्या यह

भी तुम्हें बताने की आवश्यकता है शुभदा ? किसी भाग्यवान् के हर्ष को चौगुना बढ़ाना, अपनी एक सरस दृष्टि से नरक को स्वर्ग बना देना, बस ।"

इसी समय हीरादेई आ गई । शुभदा ने उसे देखते ही मुँह फेर लिया । वह गिरधर से बातें करती रही । एक बार उसने डाक्टर के सम्बन्ध में पूछा भी, पर शुभदा कुछ भी न बोली ।

गिरधर ने उसे देखते ही पूछा, "डाक्टर कब तक आ रही हैं ?"

"आज तो देर हो गई, न जाने अभी तक क्यों नहीं आई ?" इतना कहकर वह चली गई ।

शुभदा ने कहा, "गिरधर, तुम्हें कोई काम नहीं है ?" गिरधर चुप हो गया । शुभदा को लगा जैसे उसने गिरधर का अपमान कर दिया है । उसने पूछा—"शरबत पीजिएगा ?"

"नहीं, रहने दो । मैं जाता हूँ ।"

"ठहरो, चाय पीकर जाना ।" शुभदा चली गई । गिरधर कमरे की तस्वीरें देखता रहा । थोड़ी देर में जैसे ही शुभदा चाय लेकर आई वैसे ही शेफाली ने कमरे में प्रवेश किया ।

शुभदा को चाय लाते देखकर शेफाली एक बार तो चौंकी, पर उसने कहा कुछ भी नहीं । बोली, "हाँ शुभदा, एक प्याला मेरे लिए भी । बहुत थक गई हूँ । आज एक बीमार ने तो मेरे कपड़े ही खराब कर दिये । मैं जरा असावधान होती तो···खैर, जाने दो, बड़ा घृणित प्रसंग है ।"

इसी समय प्राणनाथ ने प्रवेश किया । बोला, "फिर भी चाहे जो कुछ कहिए, डाक्टर का काम है बड़े संयम-धैर्य का ।"

"निश्चय ही, जरा-सी असावधानी से रोगी के प्राण जा सकते हैं । आज जिस केस को मैंने देखा उस पर चार-चार डाक्टर थे । सचमुच हमारे नगर के लिए प्रसूति-गृह की आवश्यकता है ।"

शुभदा ने चाय तैयार की और चारों बैठकर पीने लगे । चाय पीते-

पीते शेफाली ने पूछा, "हीरादेई क्या हुई ?"

"उनकी तबियत ठीक नहीं है, शायद वह सो रही हैं," प्राणनाथ ने कहा, "प्रसूति-गृह की आवश्यकता सभी अनुभव कर रहे हैं। किन्तु जो लोग रुपया दे सकते हैं वे मन्दिर बनवाकर धर्म लूट रहे हैं।"

शुभदा ने व्यंग्य करते हुए कह दिया, "प्राणनाथ बाबू, प्रसूति-गृह की आवश्यकता का अनुभव आप किस रूप में कर रहे हैं ?"

प्राणनाथ ने तत्काल उत्तर दिया, "केवल परोपकार की दृष्टि से; अपने लिए नहीं।"

"क्या वकील भी परोपकारी दृष्टि रखता है ?" शुभदा ने फिर एक व्यंग्य किया।

"वकील भी तो मनुष्य है, समाज में रहता है। क्या आप उसे एकदम अमानुषिक समझती हैं, शुभदा देवी ?"

"देवी का प्रयोग व्यर्थ है। केवल नाम लेने से काम चल सकता है।"

"लेकिन जब मुझे लोग प्राणनाथ बाबू कहकर पुकारते हैं तो मेरा हृदय भले ही गद्‌गद् न हो उठता हो, किन्तु आदर की अपेक्षा तो करता ही है। इसके अतिरिक्त मैं समझता हूँ और कुछ न सही तो वकील को कुछ न कुछ समाज-सेवा में भाग लेते रहना चाहिए।"

"ताकि उसे लोग अधिक से अधिक संख्या में जान जायँ और उस की प्रेक्टिस चलती रहे।"

"निश्चय ही, यदि ऐसा दूरदर्शी किसी वकील का साथी हो तो उसकी वकालत चलने में कठिनाई नहीं हो सकती," प्राणनाथ बोल उठा। शुभदा चुप हो गई। शेफाली ने चाय का प्याला समाप्त ही किया था कि नौकर ने आकर खबर दी, "एक स्त्री आपसे मिलने आई है।"

"अभी तक आपने भोजन नहीं किया है।" शुभदा बोली।

प्राणनाथ उठते-उठते कहने लगा, "शेफालीजी का जीवन रोगियों की सेवा से प्राण पाता है। उनका अपना कुछ भी नहीं है।"

इसी समय साधना ने कमरे में प्रवेश किया। साधना एकदम नये

रेशमी कपड़ों और शृंगार से लक-दक होकर आई थी। शुभदा और शेफाली ने उसका सत्कार किया। प्राणनाथ और गिरधर नमस्कार करके चले गए। यद्यपि प्राणनाथ साधना से भी दो-दो बातें करना चाहता था, फिर भी जाते-जाते उसने 'भाभी नमस्कार' कहकर जो वक्रगति से हाथ जोड़े, उसे देखकर साधना जैसे एकदम भौंचक्की-सी रह गई और हँसकर उसने प्रति-नमस्कार कर दिया। साधना कुछ ताने के तौर पर कहना चाहती हुई भी कुछ न कह सकी। वह उसे देखकर सकपका गई थी। इसी समय शेफाली ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया। शुभदा भी उसके साथ ही बैठ गई।

शुभदा को देखते ही उसने कहा, "क्या आप कालेज के पारितोषिक वितरण-उत्सव में भाग नहीं ले रही हैं, शुभदा बहन ?"

शुभदा ने उत्तर दिया, "कुछ तबियत ठीक नहीं है।"

"मैं तो यही सोचकर आई थी कि तुम्हारे साथ चलूँगी और भला जीजी को तो फुरसत ही क्या होगी ?"

"हाँ, मैं अभी रोगियों को देखकर लौट रही हूँ।"

"अभी तो इन्होंने दोपहर का खाना भी नहीं खाया है। मैं यही कहती रहती हूँ कि आपको अपने खाने, स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। पर बीमारों से फुरसत मिले तब न ?" इसी समय हीरादेई सामने आकर खड़ी हो गई। शुभदा ने शेफाली से खाना खाने का आग्रह किया। "तुम शुभदा के पास बैठो, मैं अभी निश्चिन्त होकर आई," कह कर शेफाली कमरे से बाहर निकल गई।

साधना ने सरलता से कहा, "हाँ, हाँ, आप जाइए। मैं बैठी हूँ। मैं शुभदा बहन से बातें करूँगी।"

साधना शेफाली के घर दूसरी बार आई था, परन्तु दोनों बार वह शेफाली के घर की सादगी देखकर हैरान-सी हो रही थी। जबकि साधना का घर सुन्दरता और वैभव का भण्डार था, शेफाली के घर में आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त न तो कोई सजावट थी, न विलास का सामान।

वह सोचने लगी—यह नगर की इतनी प्रतिष्ठित लेडी डाक्टर होती हुई भी इतनी सरलता-सादगी से कैसे रहती है ! इस बैठक में जहाँ यह सब लोगों से मिलती है न तो किसी प्रकार की दिखावट और न कोई सजावट। शेफाली के अपने सोने के कमरे में भी एक महापुरुष के चित्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो चित्र उसने स्वयं बनाये थे वे भी कागजों में लिपटे एक तरफ कोने में रखे थे। गिरधर के बार-बार आग्रह करने पर भी उसने कमरे में नहीं लगाये। जिस महापुरुष का चित्र दीवार पर लटक रहा है वह बुद्ध का है। वही शेफाली को विशेष प्रिय है। केवल उस चित्र के अलावा और कोई सजावट वहाँ नहीं है। हाँ, शुभदा के कमरे में अवश्य शेफाली के बनाये चित्र, सितार, तानपूरा, एक तबले की जोड़ी यह सब एक तरफ कोने में रखे हुए थे। शुभदा के कमरे को देखकर मालूम होता था इस कमरे का मालिक अवश्य रसिक प्रकृति का व्यक्ति होगा। शुभदा साधना को अपने कमरे में ले गई। वहीं चटाई पर नीचे बैठकर साधना से बातें करने लगी।

"अरे, तो क्या तुम खाट पर भी नहीं सोतीं ?"

"नहीं, जीजी सदा जमीन पर सोती हैं, मैंने भी उनकी देखा-देखी जमीन पर ही सोना शुरू कर दिया है। बहन रात को या तो डाक्टरी की किताबें पढ़ती हैं, जो शायद बहुत कम। प्रायः वे गीता, उपनिषद् या ऐसी ही कोई पुस्तक पढ़कर सोती हैं। सबेरे भी वे हम सबसे पहले नहा-धोकर दवाखाने में जा बैठती हैं। मेरे उठते-उठते तो वे रोगियों को देखने बाहर निकल जाती हैं।

"बिना खाये-पिये ?"

"नहीं, अपने कमरे में ही स्टोव पर पहले दूध गरम कर लेती थीं, अब हीरादेई उन्हें दूध दे देती है।"

"तब तो कहना चाहिए वे तपस्विनी हैं।"

"चाहें तो ऐसा भी कह सकते हैं। सरदा हो या गरमी, उनके नियमित प्रोग्राम में कभी रुकावट नहीं पड़ता।"

"मुझे तो तुम लोगों का घर देखकर हैरानी होती है, जैसे किसी साधु का घर हो।"

"जीजी कहती हैं, जिसके जीवन का उद्देश्य सेवा करना है उसे बाहरी सुख नहीं चाहिएँ। यद्यपि मेरी प्रकृति इस मामले में उनसे भिन्न है फिर भी उनका आदर्श मुझे बुरा नहीं लगता। जहाँ तक बनता है, मैं मानती हूँ। वैसे मैं अपनी प्रकृति के अनुसार रहने को स्वतन्त्र हूँ। सच-मुच जीजी का जीवन तो तपस्या का जीवन है।"

शेफाली के सम्बन्ध में शुभदा ने और भी बहुत-कुछ कहा। उसने बताया—"ऐसे पचास प्रतिशत रोगी आते हैं जिनसे वे फीस नहीं लेतीं और उनके घर मुफ्त देखने जाती हैं। कभी-कभी अपने पास से दवा के दाम भी दे आती हैं। इसी हीरादेई के सारे परिवार का पालन वे स्वयं करती हैं और भी कई ऐसे लोग हैं जो उनसे नियमित सहायता पाते हैं।" इसके साथ ही शेफाली का वर्णन करते-करते शुभदा की आँखें डबडबा आईं।

साधना शेफाली के चरित्र से बड़ी प्रभावित हुई। वह अब तक शेफाली को शुद्ध रूप में डाक्टर ही समझती थी। रोगियों की लगन के साथ सेवा को ही उसका परम रूप मानती थी। इन बातों ने उसे चौंका दिया और वह शेफाली को बहुत ऊँचा उठा हुआ व्यक्ति मानने लगी। जैसे वह स्त्री कोई असाधारण हो, जो एक परम पुनीत कर्तव्य-कर्म लेकर संसार में अवतीर्ण हुई हो। साधना का जीवन पहले गरीबी का था, किन्तु उसमें त्याग नहीं अभाव था। जैसे ही उसने वैभव से खेलने का अवसर पाया तो उसमें रम गई। वह नहीं जानती थी कि जीवन का यह भी रूप है ; उसका यह भी चमकता पहलू है। उसे अपने सारे वैभव का, शृंगार का, यह रूप फीका लगने लगा। वह जैसे उसके घर आकर अपने रूप और सौन्दर्य का हल्कापन अनुभव करने लगी हो; अब उसे शेफाली के सामने अपने इस रूप में शरम आती हो और यही वास्तविक ढंग से मनुष्य का शुद्ध रूप हो। यही सब वह बैठी-बैठी सोचने लगी।

इसी समय शेफाली आकर उसके पास जमीन पर बैठ गई और बोली, "तुमको बैठने में कष्ट हो रहा होगा। मैं शुभदा से कई बार कह चुकी हूँ, अपने कमरे को सजाकर रखा करो। आवश्यक सामान ले आओ।"

शुभदा चुप रही। साधना बोली, "आप महान् हैं जीजी। हम लोग आपके सामने तुच्छातितुच्छ हैं, केवल शरीर विलासी।" इतना कहकर साधना ने शेफाली के पैर पकड़ने को हाथ बढ़ाए।

शेफाली ने उन्हें बीच ही में रोककर कहा, "इस पगली शुभदा ने न जाने तुमसे क्या-क्या कह दिया होगा। तुम इसकी बातों में न आना। हाँ, कहो क्या बात है?" इसके साथ ही उसने हाथ की घड़ी देखकर कहा, "मुझे अभी दस मिनट में फिर बाहर चले जाना होगा।"

साधना क्या कहती, वह तो केवल शेफाली से मिलने आई थी। शुभदा के सम्बन्ध में उसने बहुत कुछ सुन रखा था। उसकी संगीत-विशेषज्ञता तथा लोकप्रियता ने उसे उससे मिलने तथा परिचय बढ़ाने के लिए प्रेरित किया था। शुभदा के सरल और मोहक स्वभाव ने उसके हृदय पर अच्छा प्रभाव डाला। दोनों ने जी खोलकर बातें कीं। पढ़ने-लिखने से लेकर कालेज, संगीत, पढ़ाई का उद्देश्य और अन्त में शेफाली के स्वभाव, उसकी निस्पृहता आदि सब विषयों पर खुलकर बातें हुईं। शुभदा के स्वभाव में उसे लगा कि यह लड़की बातूनी होते हुए भी भद्र एवं शिष्ट है। सभ्यता उसकी बात-बात में टपक रही थी। किसी के प्रति उसके हृदय का दुर्भाव प्रकट नहीं हो रहा था, जब कि साधना ने स्वयं अपनी बात में रुचि-अरुचि का प्रश्न खड़ा करके किसी की निन्दा और किसी की स्तुति की थी। वस्तुतः शुभदा ने शेफाली के पास रहकर एक ही बात सीखी कि अप्रिय लगने पर भी निन्दा किसी की भी न की जाय। उस अप्रिय व्यक्ति के सम्बन्ध में चुप रहने पर वक्ता के चरित्र की विशेषता प्रकट होती है। स्वयं शेफाली इसका आदर्श थी। शुभदा को यह ढंग बहुत ही पसन्द आया और उसने चरित्र की ऊँचाई के लिए या कुलीनता की दृष्टि से इसे स्वीकार भी किया। शुभदा चाहे अब

जिस अवस्था में हो, वह यह बात कभी नहीं भूलती कि वह मधुसूदन वसाक की लड़की है—एक धनी परिवार की कन्या, जिसके महत्त्व को उजड़ने से पहले सभी लोग स्वीकार करते रहे हैं। मधुसूदन वसाक ने खूब रुपया कमाया। इसके पूर्व भी उनके पास बाप-दादों के पास सम्पत्ति थी। उस सम्पत्ति में वढ़ती करते हुए वह एक बात कभी नहीं भूले कि उनका वंश नीच वर्ग के कायस्थों में भी सम्पन्न है। शादी ब्याह के मामले में ही धन की ऊँचाई प्रकट होती है। शुभदा ने भी इस संस्कार को अपने वंश से पाया था। सम्पत्ति के अभिमान के कारण उसने हीरादेई को तुच्छ समझा। शेफाली से आग्रह किया कि उसे कोई छोटा-मोटा काम देकर ही उसका पालन-पोषण किया जाय। यद्यपि अपने सम्बन्ध में उसने यह पद्धति लागू नहीं की। यही कारण है कि उसे कभी-कभी अपनी वर्तमान अवस्था के प्रति विरक्ति होती, किन्तु शेफाली के निश्छल प्रेम ने उसे अभिभूत कर लिया था।

शेफाली ने उससे कभी किसी प्रकार का दुराव नहीं किया था। अधिकतर रुपया-पैसा शुभदा के पास ही रहता था। शेफाली जो भी फीस लाती, वह प्रायः शुभदा को ही देती थी। वही उसको बैंक में जमा करने भेजती थी। यही नहीं, शेफाली के कपड़े आदि का ध्यान भी शुभदा ही रखती थी। एक तरह शेफाली शुभदा जैसी बहन पाकर घर की चिन्ता से मुक्त थी। एक बार शेफाली ने हीरादेई को घर में रखते हुए उसे ही खर्च चलाने का भार देने की सोची थी, किन्तु न जाने क्या सोचकर वह रह गई। फिर भी रसोईघर का सारा भार शुभदा के कहने से ही उसे दिया गया था। वस्तुतः शेफाली शुद्ध और निष्कपट हृदय की स्त्री थी। यही कारण है जो कोई भी उसके परिचय में आया उसे शेफाली के द्वारा कोई कष्ट नहीं हुआ। शुभदा का भी यही हाल था। उसे शेफाली से निःसीम प्रेम ही नहीं पूर्ण अधिकार भी मिला था। कभी कोई बात शेफाली ने शुभदा के मन के प्रतिकूल नहीं की। इसी तरह शुभदा भी बहन की निष्ठा, उसके विचारों का आदर करना

अपना कर्तव्य समझती थी। एक तरह से शुभदा और शेफाली को एक ही समझा जा सकता था। इसीलिए साधना के सामने शेफाली ने शुभदा की बात पर ध्यान न देकर उसके द्वारा की गई प्रशंसा को अतिरेक बताया। फिर भी शेफाली की निष्कपट भाव-भंगी, कर्तव्यनिष्ठा के प्रति साधना पहले से ही प्रभावित थी।

शुभदा ने हँसते हुए साधना से कहा, "तुमने जीजी के सोने का कमरा नहीं देखा है। मालूम होता है किसी संन्यासी का कमरा है। घोर सरदी के दिनों में भी यह रजाई नहीं ओढ़तीं; केवल कम्बल से काम चलाती हैं। सबेरे छः बजे नहा-धोकर रोगियों को देखने के लिए तैयार हो जाती हैं।"

"क्या करूँ, सरदी ही नहीं लगती, तो क्या जबरदस्ती कपड़े लादूँ? फिर शुभदा तो अभी बच्ची है।"

"हाँ, आप बूढ़ी हो गई हैं जीजी," शुभदा ने उत्तर दिया।

"तो क्या तू मेरा मुकाबला करेगी री! मैं कहती हूँ आज ही नये फर्नीचर के लिए आर्डर दे आ। एक अच्छा-सा ड्रेसिंग टेबल कुछ सोफा सेट आदि इस कमरे में होने जरूरी हैं।"

"जिस दिन आप संन्यास छोड़ देंगी उसी दिन देखेंगी मैं कैसे घर सजाती हूँ।"

"हाँ-हाँ, मेरे ऊपर ही शुभदा को रोष है साधना, क्या करूँ? मैं सोचती हूँ क्या इसी तरह नहीं रहा जा सकता?"

"तो आप इतना बड़ा तप किस लिए कर रही हैं जीजी? मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मैं भी आज से नीचे सोया करूँ और अपने कमरे का सारा सामान निकालकर बाहर फेंक दूँ," साधना ने गम्भीर होकर कहा।

"ऐसा कहीं सोचते हैं? राममोहन बाबू क्या कहेंगे? मैं किसी रोज जाकर उनसे कह दूँगी कि कृपा करके साधना का मेरे घर आना रोक दीजिए। अच्छा, तुम लोग बैठो। शुभदा! साधना बहन को

जल-पान कराओ न ; मैं चली। न जाने मेरी उस रोगिणी का क्या हाल होगा ?"

"कौन रोगिणी है वह ?" साधना ने पूछा।

"एक चमार के लड़के की बहू ! उसके पेट में रह-रहकर दर्द उठता है। बड़ा गरीब है बिचारा, जाऊँगी कल।"

इसी समय नौकर ने आकर खबर दी कि रामकुमार सेठ की मोटर आ गई है।

शेफाली चल दी। उसने जाते-जाते हीरादेई को बुलाकर शुभदा की सहायता करने को कहा और बैग उठाकर चली गई।

अनमने भाव से हीरादेई चाय बनाकर ले आई और दोनों बैठकर चाय पीने लगीं।

जगन्नाथ का पिछले कई दिनों से कोई पता नहीं था। वह अपने कम्यूनिस्ट साथियों के साथ कहाँ चला गया, इसका हीरादेई को कोई ज्ञान न था। और स्पष्ट तो यह है हीरादेई ने ऐसा सुअवसर पाकर उसकी परवाह करना भी छोड़ दिया था। थोड़े दिनों तक तो वह बड़ी प्रसन्न रही। शेफाली और शुभदा की समान भाव से सेवा करती रही, किन्तु इधर पिछले कुछ दिनों से उसका रूप बदल गया था। शुभदा के प्रति हीरादेई की भावना का ज्ञान शेफाली को नहीं था। शुभदा ने भी उस सम्बन्ध में उससे कुछ नहीं कहा था। उसके बच्चे अब पहले से अच्छे रहते थे। यथासमय पढ़ने जाते। इधर एक घटना ने हीरादेई में एक नवीन परिवर्तन कर डाला।

गिरधर प्रायः शुभदा के पास आता और घण्टों उसके पास बैठा रहता। हीरादेई पहले तो उत्सुकतावश दोनों को छिप-छिपकर देखती

रही, फिर उसे गिरधर के प्रति आकर्षण हुआ। वह खूबसूरत जवान और कोमल प्रकृति का युवक था, जब कि उसका पति जगन्नाथ एकदम उजड्ड और उच्छृंखल था। वह जगन्नाथ के अभाव में गिरधर के सम्बन्ध में सोचती रहती, किन्तु गिरधर ने कभी उसकी तरफ देखा भी नहीं। हीरादेई ने कई बार उसके आने पर मुस्कराकर उसका सत्कार किया, उसके स्वागत के लिए स्वयं शुभदा के बिना कहे चाय-मिठाई ले आई, उससे बात करने उसके पास बैठने की चेष्टा की, किन्तु प्रसंग किसी तरह भी आगे नहीं बढ़ा। गिरधर निर्लिप्त भाव से यथानियम आता और सीधा शुभदा के कमरे में चला जाता। वहीं हास-परिहास, संगीत-कविता का प्रवाह चलता रहता। कभी-कभी हीरादेई भी उनके पास आकर बैठ जाती और बड़े मनोयोग से उनकी बातचीत चुपचाप सुनती रहती। गिरधर कविता सुनाता, गीत गाता और शुभदा कभी-कभी तानपूरा लेकर उसी के गीत स्वर से गाती। हीरादेई इन सभी गुणों से वंचित थी। न तो वह पढ़ी-लिखी थी, न उसे गाना ही आता था। इसी से प्रेरित होकर उसने सरोज की सहायता से पढ़ना भी शुरू कर दिया था, किन्तु वह काम किसी तरह ठीक-ठीक नहीं चल सका। एक दिन शेफाली ने अचानक उसे पढ़ते देखा तो प्रेम से कहा—"हाँ, हीरादेई, खाली समय में अवश्य पढ़ा करो। यह अच्छा है।" परन्तु हीरादेई ने अपने-आप थोड़े दिनों बाद किताबें उठाकर रख दीं।

अब वह गिरधर को प्रसन्न करने के लिए शृंगार करके उसकी प्रतीक्षा में बाहर खड़ी हो जाती। शुभदा का कमरा ऊपर था, जहाँ शेफाली रहती थी। हीरादेई नीचे की एक कोठरी में रहती। फिर भी गिरधर का उधर ध्यान न गया। जितनी ही गिरधर की ओर से निरपेक्षता बढ़ती जाती उतनी ही तेजी से वह उसकी ओर आकृष्ट हो रही थी। उसे निश्चय हो गया था कि शुभदा का गिरधर के साथ अनुचित सम्बन्ध है तभी तो वह उसके पास आता है। ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इसी तरह लड़कों को फाँसती हैं। कभी-कभी हीरादेई को लगता, शुभदा

अवश्य गिरधर के साथ शादी कर लेगी। जब पिछले दिनों से प्राणनाथ ने उस घर में प्रवेश किया तब उसे लगा, वह लड़की अब प्राणनाथ के प्रति आकृष्ट हो रही है। उससे हँसकर बातें करती है। तो क्या यह प्राणनाथ बैरिस्टर से शादी करना चाहती है? फिर तो गिरधर उसका ही होगा। यह देखकर वह भीतर ही भीतर एक बार प्रसन्न हो उठी।

हीरादेई की अवस्था लगभग अट्ठाईस साल की थी—रंग गोरा, छरहरा बदन, विलासिता से पूर्ण मादक और सुन्दर आँखें, देखने में आकर्षक। इसी बीच में एक दिन उसने ऊपर शुभदा के कमरे में जाते हुए गिरधर से कह ही तो दिया—

"गिरधर बाबू, लक्षण अच्छे नहीं हैं, प्राणनाथ इधर बहुत आने लगे हैं।" इसके साथ ही उसने गिरधर के ऊपर अपनी रसीली आँखों से एक कटाक्ष किया।

गिरधर कुछ देर के लिए सिहरा, लेकिन उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। वह बोला—

"मैं समझा नहीं।"

"इसमें ऐसी समझ में न आने वाली बात ही क्या है?" हीरादेई ने तत्काल सामने आकर कहा।

गिरधर की समझ में फिर भी कुछ नहीं आ रहा था। वह अपनी एक कविता के ध्यान में चला आ रहा था कि अचानक हीरादेई ने यह वाक्य कह डाला। इसके साथ ही बिना कुछ उत्तर दिये वह ऊपर चला गया। उसी समय उसने देखा प्राणनाथ बैठक में बैठा शुभदा से बातें कर रहा है। वह भी चुपचाप जा बैठा। प्राणनाथ उस समय मनुष्य के चरित्र पर अनथक व्याख्यान झाड़ रहा था। बीच-बीच में अपने विलायत के अनुभव भी सुना रहा था। शुभदा कुछ दूर पर बैठी मनोयोग से उसकी बातें सुन रही थी। इसी समय गिरधर को हीरादेई की बात की सचाई का कुछ आभास हुआ और उसे लगा कि हीरादेई क्या

कहना चाहती थी गिरधर चुप बैठा रहा। शुभदा ने पहले की तरह न तो उसका स्वागत किया और न बोली ही। वह प्राणनाथ की बातें सुनती रही। प्राणनाथ थोड़ी देर बाद जब उठकर चलने लगा तो शुभदा उसे जीने तक पहुँचाने गई। फिर न जाने क्या सोचकर वह डिस्पैन्सरी की तरफ चली गई। जब लौटकर आई तो देखा गिरधर नहीं है; वह चला गया है।

उधर गिरधर को जीना उतरते हुए हीरादेई ने देखा था। वह फिर उसके सामने आकर खड़ी हो गई। उसने कहा, "गिरधर बाबू, क्या इधर नहीं आओगे ?"

गिरधर पहले तो हिचकिचाया, फिर उसके कमरे में चला गया। जाकर खाट के कोने पर बैठ गया।

"कहिए, जगन्नाथजी आजकल कहाँ हैं ?"

"न जाने किस चक्कर में पड़े हैं। पिछले दिनों आध घण्टे के लिए आए थे, फिर चले गए। अब उनका कुछ भी पता नहीं है।"

"वैसे आप ठीक तो हैं ?"

"हाँ, आपकी दया है..."

"अच्छा चलूँ, मुझे कई जरूरी काम हैं," इतना कहकर बिना ही रादेई की तरफ देखे गिरधर गुम-सुम निकल गया।

जब दूसरे दिन कॉलेज में शुभदा ने गिरधर को देखा तो उसने पूछा, "कल क्या कुछ जल्दी थी जो बिना सूचना दिये ही चले गए। मुझे पीछे ध्यान आया, उस समय प्राणनाथ की बातों में मैं ऐसी मोह गई कि तुम्हारे आने का ध्यान ही न रहा। सचमुच वह आदमी बड़ा विद्वान् है। तुम चुप क्यों हो ? क्या कल का कुछ बुरा लग गया ?" वह बात पूरी कर भी न पाई थी कि घण्टा बज गया और वह अपनी क्लास में चली गई।

शुभदा को गिरधर के रुख में कुछ अजीब-सा लगा जैसे वह उससे रूठ गया हो, या कोई और बात हो गई हो। उस घण्टे में उसका पढ़ने

में मन लगा ही नहीं और वह बाहर आकर फिर गिरधर की तलाश करने लगी किन्तु वह मिला नहीं। शुभदा चुपचाप कॉलेज से लौटकर घर आ गई और अपने बिस्तर में लेट रही।

जिस दिन हीरादेई ने शुभदा को जवाब दिया था उसी दिन से शुभदा ने हीरादेई से किसी भी काम के लिए कहना छोड़ दिया था। वह नौकर को बुलाकर सीधे उसी से बात करती। अचानक एक दिन शेफाली ने शुभदा के कमरे में घुसते ही देखा कि शुभदा स्टोव जलाकर चाय बना रही है।

वह शुभदा के बिस्तर पर लेटकर बोली, "मैं बहुत थक गई हूँ आज तो।"

"तो मैं एक प्याला तुम्हारे लिए भी रखे देती हूँ, जीजी !"

"हाँ, बना दो भाई," इतना कहकर शेफाली शुभदा की खुली किताब पर अचेतन नजर डालती हुई बोली, "हीरादेई को बुला लिया होता, वह चाय बनाकर पिला देती। तुम्हें तो आजकल खूब मन लगा कर पढ़ना चाहिए, शुभदा !"

"मैंने कहा, बात ही कितनी-सी है। फिर हर समय हीरादेई को बुलाकर चाय बनाने के लिए कहना क्या ठीक है ? इधर पढ़ते-पढ़ते थकावट मालूम हुई थी।"

"ऐसी अवस्था में उसे और भी तुम्हारा ध्यान रखना चाहिए।" इतना कहते-कहते शेफाली झपकी लेने लगी। शेफाली को रोगियों की देखभाल से लौटा जानकर हीरादेई शुभदा के कमरे में आई, किन्तु शेफाली को सोया जान और शुभदा को स्टोव जलाते देखकर ठिठकी खड़ी रह गई। इसी समय शुभदा ने चाय का प्याला बढ़ाते हुए शेफाली को उठाया।

उसने चाय पीते हुए हीरादेई से कहा, "हीरादेई, शुभदा के खाने-पीने का विशेष ध्यान रखा करो। आजकल वह पढ़ रही है। तुम आजकल क्या करती रहती हो ?"

हीरादेई ने समझा अवश्य शुभदा ने मेरी शिकायत की है, यही कारण है, तभी तो शेफाली ने यह कहा है; यह बड़ी दुष्ट है, मुझे डाक्टर की नजरों में गिराना चाहती है। मैं इतनी गिरी तो हूँ नहीं। मैं भला इससे किस बात में कम हूँ ? यह अनाथ लड़की! पढ़ती है तो मेरे ऊपर कोई अहसान है ? मैं इसके नाज-नखरे क्यों बरदाश्त करूँ ? इन्हीं विचारों में भुनभुनाती हीरादेई चुपचाप खड़ी रही।

हीरादेई को चुप देखकर शेफाली कुछ चौंकी, फिर बोली, "क्या बात है यहाँ बैठ जाओ न ?"

हीरादेई फिर भी खड़ी रही। थोड़ी देर बाद शेफाली ने देखा कि हीरादेई की आँखों में आँसू उभर रहे हैं। वह एकदम घबरा गई और उसके पास जाकर उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "क्या बात है, कोई दुःख है क्या ?"

हीरादेई की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। शुभदा जो अब तक किताब लेकर पढ़ने जा रही थी रुक गई और हीरादेई की तरफ देखने लगी। वह जानती थी, हीरादेई मेरा काम नहीं करती, बल्कि काम के लिए पुकारने पर दरगुजर कर जाती है। फिर भी उसने कभी कुछ नहीं कहा। शेफाली से कोई शिकायत नहीं की।

हीरादेई शेफाली की किसी बात का जवाब न देकर रोती हुई कमरे से बाहर चली गई। दोनों ही हैरान थीं। शेफाली ने रसोइये को बुला-कर पूछा। उसने भी अपना अज्ञान ही प्रकट किया।

"तुमने तो कभी इसे कुछ नहीं कहा, शुभदा ?"

"नहीं, मुझसे तो यह बोलती भी नहीं है।"

"क्यों ?"

"न जाने। मैं यदि किसी काम को कहती हूँ तो टाल देती है, इसी से मैंने किसी काम के लिए कहना ही छोड़ दिया है।"

"क्या बात हुई ?"

"मैं नहीं जानती।"

शेफाली उठकर हीरादेई के कमरे में गई। वहाँ उससे जो बातें हुईं, उसका सारांश यह है कि हीरादेई शेफाली का अनुग्रह मान सकती है शुभदा को वह स्वामिनी नहीं मान सकती। वह तो और भी उससे गई-बीती अनाथ लड़की है, आदि-आदि।

शेफाली दुखी होकर अपने कमरे में लौट आई। उसके घर में यह प्रकरण बिलकुल नया था। उसे लगा कि हीरादेई ही दोषी है। शुभदा ने आज तक उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। हीरादेई को शुभदा से ईर्ष्या है कि क्यों उसके साथ वैसा व्यवहार होता है ? यही इस जलन का कारण है। किन्तु यह तो हीरादेई का शेफाली के ऊपर भी अनुचित दबाव है। उसे क्या अधिकार है कि वह जबर्दस्ती शेफाली से शुभदा के समान स्नेह का दावा करे। मैंने तो उसे दया करके ही यहाँ रहने और सहायता देने का काम किया है। वह शुभदा के समान कैसे हो सकती है ? यह नहीं हो सकता। मैं आज उससे साफ कह दूँगी। फिर शेफाली सोचने लगी। क्या हीरादेई का ऐसा सोचना स्वाभाविक नहीं है ? उसकी दृष्टि में तो शुभदा और हीरादेई दोनों ही समान स्नेह की अधिकारिणी हैं। वह भी तो सहज स्वभाव से मुझे अपना मानती है। यही बातें वह पड़ी-पड़ी तब तक सोचती रही जब तक हीरादेई ने स्वयं आकर उसे खाना तैयार होने की सूचना नहीं दी। शुभदा अपने कमरे में पढ़ रही थी। उसने शुभदा को भी खाना खाने के लिए तैयार होने को कहा और आप उठकर स्नानागार में चली गई।

वस्तुतः हीरादेई ऊपर का काम करती थी, रसोई तो नौकर बनाता था। हीरादेई ऊपर के साधारण काम के अलावा सिर्फ अपने बच्चों की देखभाल करती या आवश्यकता पड़ने पर रसोई का काम देखती, किन्तु खाना कभी नहीं बनाती थी। रसोइया दोनों समय का भोजन बनाकर रात को चला जाता था। यह सब शेफाली ने हीरादेई के आने पर किया था। इससे पहले रसोइया उसी कोठरी में रहता था, जिसमें अब हीरादेई रहती थी। हीरादेई की जीवन से एक-दो बार खटपट भी हो

चुकी थी, किन्तु शुभदा से सम्बन्ध बिगड़ जाने पर उसने जीवन से मेल कर लिया था। इसीलिए वह कभी-कभी रात गये भी हीरादेई के कमरे में बैठा रहता। अब वह ऊपर की देखभाल तथा डिस्पैन्सरी में कम्पा-उण्डर की सहायता करता था, जो घर के बाहर बाजार की तरफ थी। बूढ़ा मोहन रात को डिस्पैन्सरी में ही सोता था। जीवन अधेड़ उम्र का व्यक्ति था। हीरादेई जीवन से कभी-कभी जगन्नाथ की बातें कहकर अपने भाग्य को कोसती या गिरधर, प्राणनाथ और शुभदा की बातें करतीं।

शुभदा को भला-बुरा कहने में वह कभी न चूकती। उसी ने शुभदा की पूर्वकथा की बात भी फैला दी थी, किन्तु जीवन परिवार वाला आदमी था; उसे नौकरी करनी थी। वह क्यों शुभदा को बुरा-भला कहकर अपनी नौकरी खोता! वह जानता था कि शेफाली और शुभदा दो नहीं हैं। उसी के हाथ में सारी बागडोर है। वह चाहने पर उसे निकाल भी सकती है। यही बात उसने एकाध बार हीरादेई से भी कही थी, किन्तु उसकी समझ में यह बात किसी तरह नहीं आई। खाना खाते समय शेफाली ने हीरादेई से कहा कि वह खाना खाकर ऊपर कमरे में मिले।

रात को सबके सो जाने पर हीरादेई शेफाली के पास आई। वह उस समय लेटी-लेटी कोई किताब पढ़ रही थी। वह हीरादेई को देखते ही उठकर बैठ गई और उसे अपने पास ही बिस्तर पर बिठाकर कहने लगी—

"देखो हीरादेई, हम लोग यहाँ एक परिवार की तरह रहते हैं। सब समान हैं, न कोई छोटा है, न बड़ा। और मैंने जो तुमको यहाँ बुलाया है तो नौकर समझकर नहीं, घर के एक आदमी की तरह। इसलिए आपस में वैर-भाव रखना अनुचित है, फिर यदि शुभदा ने कभी कुछ अनुचित कहा हो तो तुम मुझसे कह सकती हो। हीरादेई, तुम उम्र में शुभदा से बड़ी हो, बच्चा समझकर उसे माफ भी कर सकती हो।

इस प्रकार का ईर्ष्या-द्वेष तुम्हें अच्छा नहीं लगता। यदि आज वह अनाथ है तो कल वह एक धनी घर की लड़की भी तो थी।" इतना कहकर शेफाली हीरादेई की तरफ देखने लगी। उसने फिर कहना आरम्भ किया, "तुम्हें मालूम है कि मैं तुम्हें कितने चाव से यहाँ लाई हूँ। फिर मैं जानती हूँ कि तुम पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। इच्छा होने पर तुम मुझे छोड़कर जा सकती हो। तुम्हारे बच्चे मुझे भूल जा सकते हैं। जगन्नाथ भी यदि चाहें तो तुम्हें किसी समय ले जा सकते हैं। किन्तु शुभदा···"

शुभदा का नाम आते ही शेफाली चुप हो गई। हीरादेई ने नीची निगाह किये यह सब सुना और बोली, "मैं आपका अहसान मानती हूँ, बहन जी! आपने हमें बचा लिया, नहीं तो न जाने हमारी क्या दशा होती।" इतना कहकर हीरादेई शेफाली के पैरों पर गिर पड़ी।

"ऐसा न कहो; वैसे तो कोई भी सम्बन्ध स्थायी नहीं है, मानने का ही सम्बन्ध है। मैं तुम पर विश्वास करती हूँ, तुम मुझे अपना मानती हो, बस यही मुझे सन्तोष देने के लिए काफी है।"

इसके बाद उसने हीरादेई को बिदा किया, जैसे उसके हृदय का एक बोझ हल्का हो गया हो! वह प्रसन्नता का अनुभव करने लगी। उसे लगा मनुष्य के स्वभाव में जो द्वेष छल-कपट के रूप में पाये जाते हैं, वे भी एक प्रकार से मानसिक रोग हैं। उसे अनुभव हुआ जैसे उसने एक रोगी को अच्छा कर दिया। किताब उसने बन्द कर दी और शुभदा के कमरे की ओर गई। शुभदा उस समय पढ़ते-पढ़ते किताब पर सिर रखे सो रही थी। बिजली की बत्ती उसी तेजी से जल रही थी। लगातार एक ही रूप में शुभदा के मुख पर शैशव और यौवन की सन्धि शान्त भाव से खेल रही थी। एक का उतार था और दूसरे का चढ़ाव, किन्तु उतरते-उतरते भी शैशव जैसे अपने भोलेपन का प्रभाव छोड़े जा रहा था। किशोरावस्था भी एक सौन्दर्य है, जो मनुष्य की निश्छल प्रकृति पर नाचता रहता है। उसमें न किसी प्रकार का कपट होता

है, न द्वेष; बल्कि अपने जीवन का प्रकृत रूप। उसके सिर के बाल लहरिया बनकर जो इधर-उधर हवा में उड़ रहे थे, उनमें शुभदा के मुख का निश्छल सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा था। बहुत देर तक वह उसे देखती रही, जैसे भोलेपन का रस-पान कर रही हो। उसने उसके बालों को हटाया, जो एकान्त पाकर चुपचाप मुख-छवि का रस-पान कर रहे थे और धीरे-धीरे पास बैठकर उसके मुख पर हाथ फेरने लगी। उसने उसके खुले अंगों पर चादर डाल दी और सोचने लगी कि आज शुभदा उसी की है, जैसे काल की लहर में बहते हुए दो तिनकों की तरह दो प्राणी एक जगह आकर इकट्ठे हो गए हों। फिर भी जैसे शरीर और प्राण से उसने शेफाली के लिए समर्पण कर दिया हो और सोते-सोते शेफाली को आत्मदान करके वह अपने प्रति निश्चिन्त हो गई हो। वह निश्चिन्तता ही मानो उसकी वह सुख-निद्रा है। जैसे वह एक प्रकार की निश्चिन्तता में डूब गई है। कितनी तल्लीनता है यह इसकी! नींद का भी अपना एक सौन्दर्य है। वही मनुष्य के निश्छल रूप की सत्य प्रकृति है जिसमें न चिन्ता है, न किसी प्रकार का सोच। आगत-अनागत दोनों की निर्द्वन्द्वता का यह भाव ही उसे शुभदा की नींद में दिखाई देने लगा। उसने धीरे से किताबों पर से उसका सिर उठाकर तकिये के सहारे कर दिया, किताबें उठाकर एक ओर रख दीं। उसे सुलाने के बाद जैसे ही वह चली कि शुभदा जाग पड़ी। शेफाली को देखते ही मुस्कराकर बोली, "पढ़ते-पढ़ते नींद आ गई थी जीजी।"

"तो सो जा न। मैं तो यही देखने आई थी।"

"नहीं, अभी तो मैं पढ़ूँगी। समय भी तो कुछ नहीं हुआ है।"

इतना कहकर वह फिर किताब उठाकर पढ़ने लगी। यह शुभदा के बी० ए० का फाइनल इयर है। इसीलिए वह दिन-रात किताबों में जुटी रहती है। शेफाली के बार-बार कहने पर भी शुभदा सोई नहीं, किताब खोलकर पढ़ने लगी। शेफाली चुपचाप उठकर चली गई और अपने बिस्तर पर लेट रही। उसका यह नियम था कि वह रात को गीता या

उपनिषद् पढ़ने के बाद नलू को, जो उसके पास के कमरे में सोता था, एक बार देखती फिर सो जाती थी। इधर कुछ दिनों से रात को नलू जाग पड़ता और हीरादेई के लिए चिल्लाता, तब से हीरादेई उसे अपने पास सुलाने लगी थी।

शेफाली का जीवन इसी प्रकार चल रहा था। कभी-कभी वह सोचती—क्या वह इसी तरह रहेगी, इसी तरह रोगियों की सेवा करते उसका जीवन बीत जायेगा, क्या यौवन का यही उपयोग है या कुछ और भी? कभी उसे एक प्रकार की उद्विग्नता होती, जैसे वह अपना कोई नया मार्ग भी निश्चित कर लेना चाहती हो। निश्चय ही आज यदि राममोहन को यह ज्ञात हो जाय कि वह उसकी पहली पत्नी है तो वह उसे सहर्ष स्वीकार कर लेगा। पर क्या यह सब करने के लिए ही उसने पढ़ा है, रोगियों की सेवा का प्रण किया है? नहीं, वह ऐसा कदापि न करेगी। वह उसका मरण-दिवस होगा, उसकी प्रतिज्ञा का तिरस्कार, उसके अभिमान का पतन! और फिर साधना, जिसे उसने प्राणदान दिया···तो क्या शादी ऐसी ही है, यह आग के सामने भाँवरें डाल लेना ही क्या शादी है? इसका ज्ञान न राममोहन को है न पूरा-पूरा उसे। वह चाहे तो और शादी कर सकती है। कोई भी व्यक्ति··· यह प्राणनाथ बुरा तो नहीं है—विद्वान्, एकदम व्यावहारिक। यही सब वह सोचती रही। उसने सोचा, ऐसे कई लोग हैं जो उसके संकेत पर विवाह करने को तैयार हो सकते हैं; जो उसके सौन्दर्य पर, उसकी सेवा-वृत्ति से अत्यन्त प्रभावित हैं।

शेफाली की वैसे उम्र ही क्या थी! वह बीस और तीस के उद्दाम झूले पर झूल रही थी। यौवन का प्रखर वेग उसके अंग-अंग से टपक रहा था, किन्तु शिक्षा और संस्कार, शील और विवेक की लगाम में कसे हुए यौवन के घोड़े इधर-उधर नहीं हो पाते थे। वैसे जब वह किसी रोगिणी के पति या भाई से बात करती और उसकी निस्पृह बड़ी-बड़ी आँखें उनके सामने होतीं तो कदाचित ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो

उन मादक और शरीर के जोड़-जोड़ को हिला देने वाली आँखों से प्रभावित न होता हो ! फिर भी उनमें इतना तेज था कि साधारण क्या असाधारण व्यक्ति भी उसे देखकर सिहर उठता था। बस यही चीज थी जो शेफाली की रक्षा करती थी। लोगों को उसका सौन्दर्य जहाँ बहका देता था, हृदय को विकसित कर देता था, वहाँ उसकी प्रकृति की निस्पहता, बेलौसपन, पुरुषों को आगे बढ़ने से रोक देते थे। फिर भी परोक्ष रूप से वह नगर के युवकों की चर्चा का विषय थी। स्वयं प्राणनाथ बैरिस्टर शेफाली के प्रति आसक्त होते हुए भी उससे भीतर ही भीतर एक प्रकार से डरता भी था। उसके शरीर और हृदय का सारा सौन्दर्य रोगियों की निस्पृह सेवा की ओर मुड़ जाने के कारण जहाँ आकर्षणमय था, वहाँ उसके प्रति लोगों के हृदय में एक श्रद्धा का बीज भी बो चुका था। इसीलिए उसके सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होते हुए भी कोई अधिक निकट आने का साहस नहीं कर सकता था। नगर की जनता अधिकतर एक देवी के रूप में उसे पूजती थी और स्त्रियाँ तो बीमार होने के बाद किसी और से इलाज कराना ही पसन्द नहीं करती थीं। उसकी मीठी वाणी, सान्त्वना और सद्भावना से उनकी आधी बीमारी दूर हो जाती थी। राममोहन और उसकी पत्नी साधना ने तो शेफाली को इतना प्रसिद्ध कर दिया कि व्यापारी-वर्ग उसके अतिरिक्त और किसी को बुलाता ही न था। जैसे वह अमीरों के यहाँ जाती वैसे ही गरीबों के यहाँ भी जाती थी। जो फीस के रूप में अमीरों से मिलता, उसका अधिक भाग गरीबों को वह दे देती। फिर कई बार उसे पैदल चलते देखकर लोग अपनी मोटर-ताँगा खड़ा कर लेते और उससे बैठने का आग्रह करते, किन्तु न तो वह किसी की मोटर में बैठती, न ताँगे में; मुस्कराकर धन्यवाद देती और अपने रास्ते चली जाती। इसीलिए ऊँचे से ऊँचे शिक्षित-वर्ग से लेकर गरीबों तक की जबान पर वह एक देवी की तरह आदर का पात्र बन गई थी।

यही सब जानकर एक दिन प्राणनाथ ने आकर हँसते-हँसते कहा,

"यदि कुछ दिन और ऐसा ही रहा तो लोग आपकी मूर्ति बनाकर पूजने लगेंगे, सुनती हैं आप ?"

शेफाली उस समय एक भयंकर रोगी को देखकर लौट रही थी। रोगी की परिचर्या में उसके कपड़े भी खराब हो गए थे और स्नान करने जा रही थी ताकि कपड़े बदलकर ठीक हो जाय।

शेफाली उसी मन्द मुस्कराहट से बोली, "तो क्या करूँ प्राणनाथ बाबू ? यह असम्भव है कि कोई बीमार मुझे बुलावे और मैं न जाऊँ। मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे वह रोगी मुझे सेवा करने का अवसर देने के लिए ही बीमार पड़ गया हो। वह एक जलोदर की रोगिणी थी, जिसके पेट में बेहद पानी भरा हुआ था। उसी की देखभाल में कपड़े खराब हो गए। रात का समय था, ताँगा भी नहीं था और उसकी गरीबी देखकर दया आती थी। बच्चे भूख से रो रहे थे। मैंने दस रुपये का नोट देकर उन्हें शान्त किया और रोगी की सेवा में लग गई। वहीं से आ रही हूँ।"

शुभदा उसी समय अपने कमरे में आई और बोली, "जीजी की आधी से अधिक आमदनी रोगियों की दवा-दारू में खर्च हो जाती है। उसमें से आधा वह गरीबों में बाँट देती है और बाकी में हम लोग गुजर करते हैं।"

हीरादेई जो पास ही खड़ी शेफाली के कपड़े लिये जा रही थी बोल पड़ी, "वह शेष भी हम लोगों के लिए है, बहनजी का तो उसमें भी कुछ भाग नहीं है।"

प्राणनाथ जो कभी अपनी महत्ता को धक्का लगते देखकर बौखला उठता था और अब भी जिसने हँसी में ऊपर के वाक्य कहे थे, भीतर ही भीतर चौंक-सा उठा, जैसे उसे लज्जा का अनुभव हुआ हो। थोड़ी देर के लिए वह चुप हो गया। वह शेफाली के सामने अपने को बिलकुल हल्का और तुच्छ समझने लगा। उसे प्रतीत हुआ एक यह नारी है, जिसका अपना कुछ भी नहीं है और एक मैं हूँ जिसे अपने स्वार्थ के

अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। कितनी महान् है यह। सरदी के दिन थे। रात का समय और शेफाली भीगती हुई बाहर से आई और स्नानागार में चली गई। प्राणनाथ, जो केवल मनोरंजन के लिए वहाँ आया था, शेफाली का यह रूप देखकर अपने हृदय में भीतर ही भीतर उसके प्रति श्रद्धा से भर उठा।

हीरादेई ने शेफाली को स्नान में सहायता दी। शुभदा ने दौड़कर उसके लिए गरम चाय का प्याला तैयार किया। प्राणनाथ यह सब देखता रहा, देखता ही रहा। इसी समय शेफाली ने सरदी से काँपते हुए चादर ओढ़े प्रवेश किया। हीरादेई ने दौड़कर अँगीठी तैयार की और शेफाली के सामने लाकर रख दी। प्राणनाथ ने लक्ष्य किया कि वही उज्ज्वल भव्याकृति, जिसमें किसी प्रकार की बनावट नहीं, चुपचाप आकर बैठ गई है। उसी समय नौकर ने आकर खबर दी कि एक व्यक्ति बाहर खड़ा मिलना चाहता है।

शुभदा ने तुनककर कहा, "जाओ कह दो, डाक्टर साहब इस समय नहीं मिल सकतीं। जाओ!"

किन्तु शेफाली न मानी और नौकर के साथ चली गई। थोड़ी देर बाद आकर बोली, "अभी नहीं जाना होगा शुभदा, सवेरे देखूँगी जाकर।"

शुभदा ने व्यंग से कहा, "वही नहीं ले गया होगा, वरना आप तो पीछे हटने वाली हैं नहीं। प्राणनाथ बाबू, जीजी को आप देखते हैं, दिन-रात काम करके इन्होंने अपने को कितना कमजोर कर लिया है। चाहे जितना कहो, मानती ही नहीं।" इसके साथ ही शुभदा रोने लगी।

"अरी पगली, तो अब मैं कहाँ जाती हूँ? कभी-कभी कोई पुकारता है तो..."

"हाँ, शायद ही कोई अभागी रात होगी जब आपकी दो-तीन विजिट न होती हों। ठीक वक्त पर खाना नहीं खायँगी, सोएँगी नहीं। देखने को आँखें तरसती रहती हैं, बात करना मुश्किल है, लेकिन मजाल है जो जरा भी हम लोग रोक सकें।" इतना कहकर फिर शुभदा

सुबकने लगी।

शेफाली ने शुभदा की आँखें पोंछते हुए प्यार का हाथ फेरा और चुप कराया। परन्तु शुभदा तो रोती ही जा रही थी। आखिर शेफाली ने कहा, "मैं अपनी रात की विज़िट कम कर दूँगी। चलो हीरादेई, खाने में क्या देर-दार है ? आज तो प्राणनाथ बाबू भी यहीं खाना खाएँगे।"

हीरादेई ने शुभदा का यह रूप देखा और माना कि सचमुच मुझ में और शुभदा में कितना अन्तर है। उसे लगा जैसे उसने शुभदा का मुका-बला करके शेफाली की नजरों में अपने को कितना हल्का कर लिया। उसने खुद आगे बढ़कर शुभदा को चुप कराते हुए कहा, "शुभदा बहन, चलो उठो, अब बहनजी बाहर जाने वाली नहीं हैं।"

प्राणनाथ, जो दोनों बहनों के निष्कपट प्रेम में डूबा मग्न था चौंक-सा पड़ा और बोला, "खाना तो मैं खाकर ही चला आ रहा हूँ। आप क्या समझती हैं यह ग्यारह बजे रात में खाने का समय है ? यह तो सचमुच आप अपने पर अत्याचार कर रही हैं।"

शेफाली ने आँख के इशारे से प्राणनाथ को इस तरह की बातें करने से रोक दिया, फिर भी शुभदा ने ताड़ ही तो लिया और बोली, "जीजी आपको रोक रही हैं, प्राणनाथ बाबू, ऐसा मत कहिए।" इतना कहकर वह हँस पड़ी।

शेफाली ने प्रेम-विभोर होकर कहा, "देखा तुमने, कितनी चालाक है यह मेरी शुभदा। भला मैंने क्या इशारा किया था ?"

सबने साथ-साथ खाना खाया। शुभदा अपने कमरे की ओर चली गई। प्राणनाथ बैठा रहा। शेफाली एक गरम चादर लेकर प्राणनाथ के पास आकर बैठ गई। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। इसी बीच में शेफाली ने कहा, "आखिर मनुष्य के जीवन की क्या उपयोगिता है, यही मैं कभी-कभी सोचा करती हूँ। कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता है, यह सब व्यर्थ है। क्या इससे अच्छा जीवन का और उपयोग नहीं हो

सकता ?"

प्राणनाथ ने उत्तर दिया, "मैं आपकी बात नहीं समझा कि इससे आगे आप क्या चाहती हैं ? जहाँ तक जीवन की उपयोगिता का प्रश्न है मैं नहीं समझ पा रहा हूँ आपके इस जीवन से अधिक और उसकी क्या उपयोगिता हो सकती है ?"

शेफाली चुप हो रही, कुछ बोली नहीं। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "मुझे लगता है जैसे मैं व्यर्थ हूँ। यह सब व्यर्थ है। लोग अच्छे होते हैं मेरे द्वारा और अच्छे होकर वे जीवन की चक्की में फिर पिसने लगते हैं। लोग गृहस्थी बनते हैं तो कुछ सुख पाने की आशा में जीवन को बढ़ाते हैं, उसमें रस लेते हैं। किन्तु क्या यह सब व्यर्थ नहीं है ? मन को शान्ति देने का एक ढकोसला है। कभी-कभी मैं मनुष्य-मात्र से, प्रकृति के रूप से, दिन-रात के इस चक्कर से ऊब जाती हूँ, किन्तु मुझे इसके आगे कुछ दिखाई नहीं देता, जैसे इसके आगे और कोई चारा ही नहीं है। हीरादेई का पति जगन्नाथ आर्थिक प्रश्न को लेकर समाज से युद्ध करने निकल पड़ा है। उसने अपने परिवार को भी छोड़ दिया है। उसके काम की मैं प्रशंसा करती हूँ। मैं चाहती हूँ वह अपने कार्य में सफल हो। उसमें जोश देखकर ही मैं हीरादेई और उसके बच्चों को यहाँ ले आई हूँ। और उनकी सहायता करती हूँ, केवल इसलिए कि लोग मिलकर क्रान्ति के द्वारा समाज के ढाँचे को बदल सकें। संसार में बहुत अधिक दुःख है। हमारे जीवन का चरमोत्कर्ष जीवन को निरन्तर बनाए रखने में, उसे पोषित करने-भर में रह गया है। जिसे देखो वही आज इस संघर्ष में पड़ा पिस रहा है। इसलिए गरीब तो दुखी है ही, अमीर भी दुखी है। इधर धन ने मनुष्य की मानसिक वृत्तियों को दूषित कर दिया है, उसे मनुष्य नहीं रहने दिया। और आश्चर्य तो यह है कि उस वृत्ति को बनाए रखने के लिए वह और भी प्रयत्नशील है, जैसे दलदल में फंसा व्यक्ति जब निकलने की चेष्टा करता है तो उसमें और भी फँसता जाता है; पतन से बचने के लिए पतन को ही अपनाता

चलता है। यह सब क्या है, क्या यह जीवन है ?" वह इसी तरह बहुत देर तक बोलती रही।

प्राणनाथ चुपचाप सुनता रहा। प्राणनाथ को कुछ विशेष रस तो उसमें नहीं मिल रहा था किन्तु वह शेफाली की चिन्ताधारा को भीतर से परखना चाहता था। वह जानना चाहता था कि आखिर इस रमणी के भीतर है क्या ? कौनसी प्रवृत्ति काम कर रही है ? उसने देखा जैसे सैक्स तो उसके भीतर रह ही नहीं गया है। इतनी सुन्दर रमणी के हृदय में यौन वेगों की उत्क्रान्ति मानवता के धरातल से दब गई है। वह जानना चाहता था क्या कोई भी स्फुलिंग ऐसा नहीं निकलता, जिसे पकड़कर वह उसके सामने अपना हृदय खोल सके। वस्तुतः प्राणनाथ शुभदा की अपेक्षा शेफाली के प्रति अधिक अनुरक्त था। शेफाली के प्रति स्वतः हार्दिक आकर्षण के अलावा व्यावहारिक रूप से उसका एक स्वार्थ भी था। वह चाहता था कि यदि शेफाली उसे अपना सके तो उसका अर्थ-संकट भी सरल हो सकता था। असल में प्रेक्टिस उसकी कुछ चल नहीं पा रही थी। जितना वह इस ओर प्रयत्न करता उतनी सफलता उसे नहीं मिलती थी। जो दो-एक केस मिल जाते थे, इनसे उसका गुजारा नहीं होता था। इसके अलावा स्वतन्त्र प्रकृति ने माता-पिता से उसको एक तरह से अलग कर दिया था। पिता ने साफ कह दिया था कि जितना वह उसे दे सकता था उतना उसने बैरिस्टर बनाने में खर्च कर दिया, अब उसके पास एक पैसा भी नहीं है।

प्राणनाथ बोला, "जहाँ तक मैं समझता हूँ मनुष्य के जीवन को समरस और जागरूक बनाने के लिए संसार में एक ही वस्तु है प्रेम। इसी के आधार पर संसार में रहकर भी वह संसार और अपने जीवन से नहीं ऊबता। क्या कारण है कि एक घोर बीमार आदमी भी जीना चाहता है, क्यों नहीं मरना पसन्द करता ? स्पष्ट है कि उसका ध्येय जीकर उस सुख को उठाना है जो वह प्राप्त करता रहा है या वह जो उसे अप्राप्य रहा है, जिससे उसकी तृप्ति नहीं हुई। जीवन एक

चिपचिपा लेसदार रस है, जो बराबर मनुष्य को अपने उस रस की ओर खींचता रहता है। जिसमें उस रस की जितनी कमी होती है उतना ही उसे मानसिक दुःख होता है और उतना ही वह जिन्दगी से ऊबता है। मुझे क्षमा करें शेफाली देवी !" इतना कहकर वह रुक गया।

शेफाली ने कहा, "हाँ, कहिए रुक क्यों गए ? आपकी बातें मेरी समझ में आ रही हैं।"

प्राणनाथ शेफाली से उत्साह पाकर फिर कहने लगा, "बात यह है कि आपके जीवन में सन्तुलन नहीं रहा है। आपके पेशे और स्वच्छन्द प्रकृति ने एक अन्तःप्रसरित रस की धारा को दबा दिया है। वह कभी फूट उठती हैं, इसी से आपको कभी-कभी व्यग्रता का अनुभव होता है।"

प्राणनाथ कहने को तो कह गया, परन्तु उसे भय हुआ कि उसने शेफाली के निर्मल हृदय को ठेस तो नहीं पहुँचाई। वह चुप हो गया और शेफाली के मुख की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर देखने लगा। बाहर से कुछ व्यग्रता भी थी। इन दोनों भावों ने उसकी मुखाकृति को अजीब-सा बना दिया था। फिर भी शेफाली को ऐसा लगा कि जैसे वह उसके हृदय को पढ़ रहा हो।

वह कुछ देर के लिए अन्तःस्थ हो गई। उसके बाद उसने कहना शुरू किया, "हो सकता है आपकी बात ही ठीक हो, यद्यपि मैं मानती हूँ कि मुझे अपने पेशे में काफी सुख मिलता है और मैं उसे रुपया कमाने का या यश पाने का साधन नहीं मानती। फिर वह आधार केवल सेक्स ही तो नहीं है, व्यावहारिक रूप में वह किसी भी बात से हो सकता है, किसी भी रूप में फूट पड़ सकता है।"

उत्साह पाकर प्राणनाथ ने अपनी बात और आगे बढ़ाई और कहने लगा, "यह तो मानता हूँ कि आपको अपने पेशे में काफी सुख मिलता है और आप रोगियों की सेवा दत्तचित एवं सुख पाने के लिए ही करती हैं, किन्तु क्या आप यह नहीं मानती हैं कि मनुष्य के हृदय का एक स्वाभाविक वेग भी है ? उसके भीतर का सेक्स उसे कभी-कभी

उद्वेलित भी करता रहता है। इसके अतिरिक्त स्वभावजन्य उसकी चेतना ग्रन्थियों में जो रस प्रवाहित होता रहता है वह अत्यन्त दब जाने पर भी कभी-कभी भड़क उठता है वह मरता नहीं है। कोई भी वैसा प्रसंग आने पर स्रोत की तरह फूट उठता है। आखिर आप प्रतिदिन ही तो गर्भिणी स्त्रियों को देखती हैं और यह देखती हैं कि एक नारी प्रसव-काल के समय का कष्ट केवल सन्तानोत्पत्ति के सुख की प्रतीक्षा में भूल जाती है। हो सकता है, उसका ही अज्ञात प्रभाव आपके ज्ञान-तन्तुओं पर पड़ता हो और आप कभी यह सोचने लगती हों क्या मेरे जीवन में यह अभाव नहीं है।" प्राणनाथ ने मनोविज्ञान-शास्त्रों की तरह यह बात कही।

यह बात सुनकर शेफाली के हृदय में एक प्रकाश-सा हुआ। उसे अनुभव हुआ सचमुच यह बैरिस्टर बहुत अनुभवी है। न जाने इसने कितने स्त्री-चरित्रों का गम्भीर अध्ययन किया है। शेफाली ने जैसे उसे पूर्ण मनोयोग से सुना। उसे समझ पड़ा, सचमुच यही कारण है कि उसके मन में कभी-कभी ऐसी बात उठती रहती है।

किन्तु इतनी जल्दी वह आत्मसमर्पण की स्वीकृति नहीं देना चाहती थी। उसने तत्काल उत्तर दिया, "प्राणनाथ बाबू, मैं उस समय लेडी डाक्टर होती हूँ, और कुछ नहीं। डाक्टर के शास्त्र में प्रेम और सेक्स जैसी कोई चीज नहीं होती।"

प्राणनाथ झट बोल उठा, "डाक्टर के शास्त्र में भले ही प्रेम जैसी वस्तु न हो, वह उसमें विश्वास भले ही न करे, किन्तु सन्तान-सुख से प्रमुदित नारी को देखकर एक डाक्टर भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। तो क्या आप मानती हैं कि डाक्टर होते हुए आप प्रेमहीन या यौन-भावना से हीन हैं? जब आप यह समझती हैं कि आप स्त्री हैं तब यह अभावना कैसे सम्भव हैं।"

शेफाली बोली, "आपकी बात स्वाभाविक होते हुए भी डाक्टर के लिए यथार्थ नहीं है। एक बार की बात है और पुरानी भी। मेरे

प्रिन्सिपल ने जो पुरुष थे एक नारी के स्तनों का ऑपरेशन किया। वह नवयुवती थी। उसके स्तनों के उभार के सम्बन्ध में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु डाक्टर ने चीरकर पस निकालते हुए एक स्तन को खूब दबाया, फिर भी जब पस रह गया तो उसका ऑपरेशन किया गया, किन्तु मैंने देखा कि वह वैसे ही शान्त भाव से चीर-फाड़ करते रहे। न उनमें कोई विकार ही उत्पन्न हुआ, न हाथों में कँपकँपी ही। यद्यपि वह भी प्रौढ़ और अविवाहित थे। इसके बाद उन्होंने वह केस मेरे सुपुर्द कर दिया। यदि उनमें कुछ भी सेक्स-भाव होता तो वह चेष्टा करते कि उस केस को आगे भी अपने हाथ में रखें। खैर, जाने दीजिए फिर भी आपकी बात में साधारण लोगों के लिए सार है। हम डाक्टर लोग शरीर को उस रूप में नहीं देखते, जिस रूप में साधारण लोग देखते हैं। हमारे लिए तो रोग-दृष्टि प्रधान है।"

"तब तो डाक्टरों को शादी भी नहीं करनी चाहिए। उनके सन्तान ही उत्पन्न नहीं होनी चाहिए।"

शेफाली ने तत्काल कहा, "सन्तान की चाह होते हुए भी दार्शनिक यौन-भावना से मुक्त होते हैं। हमारा आदर्श भी यही रहा है। और आदर्श न भी हो तो भी यह एक सही और यथार्थ दृष्टि है।

"वह एक जड़वाद है या उसे आदर्शवाद कहें तो भी वह पंगु है।"

बात बढ़ती जा रही थी। शेफाली चुप हो गई, जैसे वह ऊब-सी गई हो। प्राणनाथ कुर्सी से उठ बैठा और नमस्कार करके चला गया। शेफाली अपने कमरे में जाकर लेट रही और उन बातों को सोचने लगी। उसने मन में कहा—'प्राणनाथ ने ठीक ही कहा है, नहीं तो क्यों मैं नलू को अपने कमरे में सुलाना चाहती हूँ, क्यों उसे सोते देखकर भी तृप्त नहीं होती। क्या कभी-कभी प्राणनाथ से बात करके सुख का अनुभव नहीं करती हूँ, क्या यह सेक्स नहीं है, जो मुझे उत्साहित करता है? फिर क्या मेरे हृदय में ऐसी भावना नहीं उठती, क्या उसे छिपाकर एक प्रकार का आडम्बर मैं नहीं करती; फिर यही मैं कब भूलती हूँ

कि मैं स्त्री हूँ ? क्या मुझ में इस प्रकार का साहस है कि किसी के सामने मैं अपना गुप्त अंग दिखा सकूँ, क्या मैं इच्छा होने पर एक बच्चे की तरह किसी पुरुष का चुम्बन ले सकती हूँ ? मालूम होता है कि हमारे सारे समाज के व्यवहार सेक्स को ध्यान में रखकर ही बने हैं। सेक्स-वृत्ति स्त्रीत्व और पुरुषत्व के रहते जा ही नहीं सकती। जिन महापुरुषों, साधु-सन्तों को हम इस भाव से ऊपर पाते हैं वे निःस्पृह वीतराग होते हैं। वे समाज में नहीं रहते, किन्तु कौन कह सकता है कि उन्हें सेक्स कभी सताता ही नहीं है।' यही सब शेफाली पड़ी-पड़ी सोचती रही। वह कब सो गई, उसे याद नहीं।

दूसरे दिन से शेफाली की प्रकृति में एक परिवर्तन दिखाई दिया। वह पहले की अपेक्षा शरीर का अधिक ध्यान रखने लगी। स्नान तथा शरीर प्रसाधन में उसकी रुचि होने लगी। केवल खादी की साड़ी की जगह उसने दो एक रेशमी साड़ी खरीदने का शुभदा को आर्डर दिया। शुभदा यह जानकर बहुत प्रसन्न हुई कि जीजी रेशमी साड़ी के लिए कह रही हैं; नहीं तो उसने इससे पूर्व कई बार शेफाली से मँहगे कपड़े पहनने और सुव्यवस्थित ढंग से रहने का आग्रह किया था।

शुभदा खादी-भण्डार में गई और अच्छी से अच्छी साड़ियाँ खरीद लाई। इसके साथ ही फेस-पाउडर, सुगन्धित तेल तथा क्रीम भी खरीद लाई। उसने स्वयं शेफाली से उनके प्रयोग का आग्रह किया। उस दिन वह सवेरे ही रोगियों को देखने न जा सकी। जरा देर हो गई। इसी बीच रोगियों की ओर से बुलाहट भी हुई और उसके घर से निकलते-निकलते काफी संख्या में लोग आ जुटे। यह देखकर फिर एक प्रतिक्रिया हुई और उसे एक प्रकार से अपने ऊपर खेद हुआ। रास्ते-भर वह इस सम्बन्ध में सोचती रही। रोगियों के अभिभावकों में से कुछ को आश्चर्य भी हुआ किन्तु कहने का साहस किसी को न हुआ। मार्ग में ताँगे पर जाते हुए राममोहन ने देखा तो हाथ जोड़कर नमस्कार किया। शेफाली ने ताँगा रोककर साधना की कुशल पूछी और चल दी। राममोहन,

जो शेफाली से काफी प्रभावित था, उसे इस रूप में देखकर आश्चर्य करने लगा। उसने कहा तो कुछ भी नहीं, फिर भी वह एकटक शेफाली की गतिविधि को देर तक देखता रहा। शेफाली ने उसकी भाव-भंगी को लक्ष्य किया किन्तु बाहर से लापरवाही-सी दिखाती हुई वह चली गई। उसे लगा जैसे यह वेश उसके काम के बिलकुल उपयुक्त नहीं है। यह बात नहीं है कि उसका वेश अनुचित था, ऐसी बहुत सी नगर में लेडी डाक्टर थीं जो बनी-ठनी रहती थीं; उनके सम्बन्ध में कोई भी कुछ नहीं कहता था। वह उनका स्वभाव तथा उनकी वेश-भूषा दैनिक-चर्या बन गई थी। उसने इन्हीं सब बातों के द्वारा मन को बहलाया और यथासाध्य अपने वेश को तर्कसिद्ध करने की चेष्टा की।

घर आकर वह सीधी शुभदा के कमरे में बड़े शीशे के सामने जा खड़ी हुई। सचमुच उसे अपने रूप पर गर्व भी हुआ। उसने अनुभव किया कि वह रूप में बहुतों से अच्छी है। उसमें अभी तक स्त्री के नाम से यौवन का चरम उत्कर्ष वर्तमान है। अभी तक उसके अंग-प्रत्यंग में रूप का निखार, यौवन का उभार है। बहुत देर तक वह अपने को शीशे के सामने खड़ी देखती रही।

इसी समय हीरादेई ने आकर कहा, "खाना तैयार है।"

"आती हूँ चलो!" इसके साथ ही वह हीरादेई के आश्चर्य पर पर्दा डालने के लिए बोली, "देख रही थी, यह नई साड़ी बुरी तो नहीं लगती।"

"ऐसा कौनसा कपड़ा है जो आप पर नहीं फबता। आप तो लाखों में एक हैं।"

हीरादेई ने कहने को कह डाला किन्तु उसे पीछे भय हुआ कि शेफाली कहीं इसका दूसरा अर्थ न लगा ले, इसीलिए उसने बात को बदलते हुए कहा, "और आपको तो बीमारों को देखने, उन्हें सुख देने के सिवा और कोई सुख ही नहीं है।"

फिर भी लाखों में एक वाला वाक्य शेफाली के कानों में गूँजने लगा। अपने को बचाते हुए उसने हीरादेई को आँखों की भृकुटि से डाँटते हुए कहा, "हीरादेई ! अरे, मैं क्या हूँ। क्या सचमुच यह साड़ी मुझे अच्छी लगती है ?"

"हीरादेई ने सम्हलकर उत्तर दिया, "आप तो राजकुमारी लगती हैं।"

"चल हट तुझे भी हीरादेई न जाने क्या-क्या सूझता है ?" इतना कहकर शेफाली हीरादेई की पीठ थपथपाकर बाहर चली गई और जाकर भोजन करने लगी।

उस दिन हीरादेई ने देखा कि जैसे-तैसे भोजन से सन्तुष्ट रहने वाली शेफाली भोजन और रुचि पर भी बराबर बोले जा रही है। और रुचि को सर्वोपरि मानकर रसोइये को भी हल्की डाँट लगा रही है।

हीरादेई ने यह सब देखा और सुना तो समझ न सकी कि एकदम अन्तःस्थ रहने वाली इस नारी में आज यह क्या हो गया है। इससे पूर्व वह न तो कभी खाने में नुक्ताचीनी करती थी न कुछ कहती थी। शेफाली भोजन के बाद डिस्पैन्सरी की ओर चली गई और वहाँ जाकर कम्पाउण्डर का हिसाब तथा बिक्री के सम्बन्ध में बातें करने लगी।

उस सारे दिन शेफाली अपने सम्बन्ध में सोचती रही। उसे लगा कि जैसे वह एक नये जीवन में प्रवेश कर रही है। रोगियों के घर जाकर वह उनके घर की स्त्रियों की वेश-भूषा पर छिपी-छिपी दृष्टि डालती। बाहर चलते हुए वह नारियों के वेश-शृंगार को ध्यान से देखती और अन्य स्त्रियों से अपने रूप का मिलान करती; गृहस्थ के बच्चों तथा सुख से अपनी तुलना करती। रात के समय रोगियों को देखकर लौटते हुए उसके मन में काफी उथल-पुथल होने लगी। वह सोचने लगी जैसे अब तक का उसका जीवन एकदम क्रियाशून्य रहा है, वह जीवन के प्रति अब तक जो लापरवाह रही है, उससे उसने बहुत-कुछ खो दिया है; बहुत-कुछ उसकी शक्ति के बाहर चला गया है, जो लौट नहीं सकता; उसने दूसरों की सेवा करके अपने यौवन, अपने

रूप, अपनी अवस्था के प्रति अन्याय किया है। अपने अतीत पर पश्चात्ताप करते हुए भी भविष्य जैसे उसके सामने अनिश्चित था।

रात को राममोहन आया। बैठा रहा। वह शेफाली के रूप पर मुग्ध था। उसकी कीर्ति ने राममोहन को उसका एकान्त-सेवी बना दिया था। साधना से प्रेम करते हुए भी वह जैसे शेफाली को एकमात्र सुन्दरी मानता था। उसके भीतर स्नेह-तन्तु साधना के रूप-यौवन और नारीत्व के छोर को पकड़कर भी ढीले हो गए हैं और एक डोर विना दूसरे किनारे तक गये हुए भी शेफाली की ओर लटक रही है। उसे मालूम है कि शेफाली उसकी पकड़ के बाहर है। वह उसके पास तक भी नहीं पहुँच सकता। जैसे एक बौना ऊपर बेल में लटकते हुए अंगूरों के गुच्छे पकड़ना चाहता हो जहाँ वह किसी तरह भी नहीं पहुँच सकता। वह मन में शेफाली की कल्पना मूर्ति बनाए डोलता। उसे हृदय के नेत्रों में छिपाकर साधना से मिलता, उससे बातें करता और एकान्त में बैठकर अपनी प्रियतमा के चित्र का निर्माण करके उससे खेलता, बातें करता और उसका आलिंगन तथा चुम्बन करता। उसी पुलक में वह सो जाता। इतना होते हुए भी वह शेफाली के पास आने का साहस नहीं कर पाता था; फिर आज जो वह साहस करके आया उसका कारण उसे देखकर शेफाली का आते हुए अपना ताँगा रोक लेना था; उसकी ओर मुस्कराकर देखना था, मानो उसी मुस्कराहट को पाकर वह कृतार्थ हो गया हो। जिस समय राममोहन आया, शेफाली सामने खड़े रोगियों के अभिभावकों को नुस्खा लिखकर समझा रही थी। शेफाली ने मुस्कराहट से उसका स्वागत किया और कुरसी की ओर संकेत किया।

लगभग पन्द्रह-बीस मिनट बाद फुरसत मिलने पर शेफाली बोली, "चलिए न, भीतर चलकर बैठा जाय।"

राममोहन शेफाली के पीछे बैठक में चला आया। इसी समय शुभदा आ गई। शुभदा को राममोहन के पास बैठने का आदेश देकर शेफाली स्नान करने चली गई। इन दिनों पढ़ने में व्यस्त रहने के कारण

शुभदा बहुत कम शेफाली के पास आती थी। आज राममोहन को आया जान थकावट उतारने को आ बैठी। आते ही बोली, "कहिए राममोहन बाबू, साधना बहन कैसी हैं ?"

"हम लोगों के जीवन में अर्थ के सिवा और है ही क्या शुभदा ! जैसे हमारा ध्येय धन कमाने के अलावा और कुछ नहीं है। हम मनुष्य को उसके अर्थ की दृष्टि से नापते हैं। संसार में जो उथल-पुथल होती है, समाज में जो ऊँच-नीच है उसे हम आर्थिक दृष्टिकोण से अपने हानि-लाभ के रूप में देखते हैं। हमारी दृष्टि में मनुष्य के ऊपर-नीचे भीतर-बाहर उसका एक ही रूप है रुपया। मैं वही देखता हूँ।"

शुभदा राममोहन की ओर अपनी सरल आँखें फाड़कर देखती रही। बात उसकी समझ में कुछ भी नहीं आई। उसे लगा जैसे यह आदमी आदमी न होकर रुपये का एक ढेर हो गया है।

"तो क्या आप रुपये के अलावा अपने को और कुछ नहीं मान पाते ?"

"हाँ, व्यापारी तो और कुछ सोच नहीं सकता। इधर मैं एक मामले में फँस गया। मैंने चोर-बाजारी में रुपया कमाया। मुझ पर मुकदमा चला। आज उसका फैसला हुआ है; मैं जीत गया हूँ।"

शुभदा ने आँख फाड़कर उसके भीतर को पढ़ने की चेष्टा करते हुए पूछा, "तो इसकी भी आपको कम खुशी नहीं हो रही होगी।"

"हाँ, मनुष्य को चालाकी, धूर्तता और झूठ को सत्य सिद्ध करने का जो परम्परा-प्राप्त अवसर मिला है मैंने उसमें काफी वृद्धि की है, यह मैं आज जानने लगा हूँ। और मुझे मालूम हुआ है कोई भी पाप पाप नहीं रह सकता, यदि मनुष्य उसको पुण्य सिद्ध करना चाहे। चोर भी शाह बन सकता है, इसी से मुझे लगता है तर्क धूर्तता ही आज के युग के ईश्वर हैं। मैं समझता था मुझे सजा होगी; मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी। शायद इसी बीच में मेरा घरबार, धन-दौलत भी समाप्त हो जाय, लेकिन मैंने नौ लाख रुपया चोर-बाजार से कमाकर

सरकार को जो धोखा दिया है, उन रुपयों ने मेरी रक्षा की और आज कानून ने मुझे बेदाग सिद्ध कर दिया। अब मैं और कमाऊँगा, चोरी करूँगा, बेईमानी करूँगा और समाज में प्रतिष्ठित बनूँगा। यदि मैं इस धन से सरकार की सहायता करूँगा तो वह मुझे लोकसभा में ऊँचे स्थान के लिए चुन लेगी। मैं लीडर भी हो जाऊँगा, मेरी बेईमानी जितनी गहरी होती जायेगी मैं उतना ही सरकार और जनता की निगाह में ऊँचा उठता जाऊँगा।"

शुभदा ने लक्ष्य किया, जैसे राममोहन पागल हो गया है। वह चुप रही। बोली कुछ भी नहीं। इसी समय शेफाली आ गई।

राममोहन कहने लगा, "आज मैं मुकदमा जीत गया हूँ। जो नौ लाख रुपया मैंने चोर-बाजार से कमाया था, वह कमाई सरकार की नजरों में सत्य सिद्ध हो गई, डाक्टर साहब ! अब मैं और अधिक बेईमानी करने जा रहा हूँ। मैं एक प्रसूति-गृह भी खोलूँगा।"

"प्रसूति-गृह !"

"हाँ, प्रसूति-गृह ! मैं दो लाख रुपया उसमें लगाऊँगा और आपको उसका चीफ डाक्टर बनाऊँगा।"

"बेईमानी और प्रसूति-गृह, मैं समझी नहीं !"

"क्यों इसमें क्या दोष है ? मैं आपसे ही पूछता हूँ, आपने ईमानदारी से सेवा करते हुए कितना कमा लिया ? यदि मैं ठीक कहता हूँ तो आपके पास इतना पैसा भी नहीं है कि आप सिर ढकने के लिए अपना मकान ही बना सकें। आपका मेडिकल-हॉल बहुत छोटा है। मैं जानता हूँ कि चाहने पर भी आप और कोई बड़ा मकान या कोठी नहीं ले सकतीं। आप ताँगे में या पैदल चलती हैं, किन्तु मोटर नहीं ले सकतीं।"

राममोहन के बोलने की प्रखरता ने सबको चौंका दिया। शेफाली भी चुप थी। वह जानती थी कि राममोहन बहुत बोलने वाला आदमी नहीं है, फिर आज का उसका रूप देखकर शुभदा और शेफाली दोनों ही

हैरान रह गईं। उसकी विवेचना-शक्ति तीव्र हो गई। उसकी वाणी में चापल्य आ गया। बात करते हुए ऐसा लग रहा था, जैसे यह व्यक्ति बहुत बड़ा ज्ञान-विशारद हो। जिस आदमी के मुँह से कभी बोल नहीं निकलता था उसकी वाणी पर जैसे रिकार्ड लग गया हो। दोनों चुप बैठी राममोहन के उत्फुल्ल मुख की ओर देखती रहीं।

राममोहन फिर अपनी बात पूरी करने के स्वर में बोला, "तो मैं कह रहा हूँ कि कोई भी आदमी बिना ऊँच-नीच किये रुपया नहीं कमा सकता। जितने दानी आज आपको दिखाई देते हैं, जिन्होंने मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर बनवाये हैं, जिन्होंने धर्मशालाएँ, कूप, तालाब, बावड़ियाँ बनवाए, हस्पताल खोले हैं, वे सब बेशुमार रुपया इकट्ठा करने के लिए इन्हीं रास्तों में होकर चले हैं। इसी तरह उन्होंने रुपया कमाया है।" राममोहन क्षणिक आवेग में बात करते-करते रुक गया और शेफाली की ओर गर्व की दृष्टि से देखने लगा। शेफाली फिर भी न बोली। उसने देखा राममोहन आज आपे में नहीं है। वह मुकदमा जीतने की खुशी में हर्षोन्मत्त हो उठा है। "मैं सोचता हूँ यदि आप स्वीकार करें तो कल ही नगर के बाहर २०-२५ बीघे जमीन का सौदा करके खरीद लूँ। हस्पताल का डिज़ाइन किसी इञ्जीनियर से बनवा लूँगा, बाकी सब सामान आप अपने ढंग से खरीद लीजिएगा। बस, आपकी आज्ञा की देर है।"

शेफाली ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया, "मैं इतना भार उठाने में असमर्थ हूँ, राममोहन बाबू ! फिर जब आपको प्रसूति-गृह बनवाना ही है तो और भी बहुत सी डाक्टर सेवा को तैयार हो जायँगी।"

शुभदा ने बात को दबाने की इच्छा रखते हुए भी बहन का सहारा पाकर कह ही तो डाला, "बहन तो, राममोहन बाबू, आपके इस हस्पताल से फायदा उठाने से रहीं। उन्हें तो इस गरीबी में ही सुख है।"

"तो क्या आप समझती हैं, मेरा धन अस्पृश्य है ? आखिर मैं तो उसे नेक काम में ही लगा रहा हूँ। बुरी चीज भी तो अच्छे काम में

लगकर अच्छी हो जाती है !"

शुभदा बोली, "किन्तु आपकी बात से यह सिद्ध नहीं होता कि आपकी कमाई का यह रुपया गरीबों का खून चूसकर नहीं इकट्ठा किया गया है और मन्दिर, मस्जिद, धर्मशालाओं के मालिक उन्हें बनवाकर पाप के भागी नहीं रहे। फिर जो काम सरकार का है वह आप क्यों करें।"

राममोहन हतवाक् हो गया। उसे आशा नहीं थी कि शेफाली इस तरह उसके परम पुण्य प्रस्ताव को ठुकरा देगी। पिछले दिनों जो दो-एक बार प्रसूति-गृह की चर्चा हुई, उस समय शेफाली ने उसका कोई विरोध नहीं किया, बल्कि मौन रहकर उसने अपनी स्वीकृति ही दी थी। उसे लगा, अपनी नासमझी से चोर-बाजार के द्वारा इतना रुपया कमाने की बात कहकर उसने अपने को हीन बना लिया। उसे शेफाली के सामने यह सब नहीं कहना चाहिए था। वह अपने में मूक हो गया। फिर उसके गर्व ने एक और रूप ग्रहण किया। उसे लगा जैसे इस साधारण स्त्री डाक्टर ने उसका अपमान किया; उसके धनी होने के पौरुष की उपेक्षा की। वह आज क्या नहीं कर सकता। वह चाहे तो सरकार में प्रतिष्ठा पा सकता है, अपने यश के लिए बड़े-बड़े लेखकों को खरीदकर उनसे अपने ऊपर लिखा सकता है। अखबार वाले सम्पादकों की कलम की नोक को अपनी ओर घुमा सकता है और अपने खर्चे से प्रसूति-गृह बनवाकर एक से एक अच्छी लेडी डाक्टर रख सकता है। ये सब बातें इसी समय उसके दिमाग में चक्कर काटने लगीं। उसने कुछ रुककर कहा, "तो आप शायद अब किसी धनी के घर बीमार देखने भी नहीं जाना चाहेंगी क्योंकि जो रुपया वह आपको फीस में देगा वह भी वैसा ही है।"

शुभदा ने कहा, "वह तो हमारी कमाई का पैसा है, हमको उसे लेने में आपत्ति क्यों होनी चाहिए ?"

"प्रसूति-गृह में भी तो आप अपनी कमाई का पैसा ही लेंगी।"

शेफाली ने बात को टालते हुए कहा, "राममोहन बाबू, आप इसकी

बातों पर न जाइए। मैं तो आपसे कुछ नहीं कह रही।"

"तो आप स्वीकार करती हैं, बस यही मैं चाहता हूँ।"

"मैं सोचकर उत्तर दूँगी। आप मुकदमा जीत गए, इसकी बधाई।"

इसी समय हीरादेई ने आकर भोजन की सूचना दी। राममोहन उठकर खड़ा हो गया। शेफाली ने राममोहन से भी भोजन का आग्रह किया, किन्तु वह क्षमा माँगकर चला गया।

उठते हुए शेफाली ने शुभदा से कहा, "किसी वाद-विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है; देखा जायेगा।"

"तो आप इस बेईमानी की कमाई के रुपये से खुलनेवाले हस्पताल को अच्छा समझती हैं, जीजी?"

"बेईमानी कहाँ नहीं है? मैं जो बीमार को देखकर पाँच रुपया फीस गरीब की जेब से ऐंठ लेती हूँ, यह बेईमानी नहीं है? आठ आने की दवा के दो रुपये वसूल करती हूँ, यह बेईमानी नहीं है?"

"तो आप इतना क्यों लेती हैं, कम लीजिए?"

"फिर मेरी मार्केट वैल्यू गिर जायेगी। मेरे पास एक भी अच्छा मरीज नहीं आयगा। तू जानती है कनाटप्लेस में सौदा खरीदने वाले लोगों और पुरानी दिल्ली से सौदा खरीदने वाले लोगों में क्या अन्तर होता है?"

"किन्तु यह तो झूठी मर्यादा है।"

"वह मर्यादा किसकी है, समाज की ही तो।"

"हमें समाज को सुधारना होगा। हमें झूठी मर्यादा को दूर फेंक देना होगा। आपने देखा है, गांधीजी को?"

उसी गम्भीरता से शेफाली ने उत्तर दिया, "ऐसे लोग एबनार्मल होते हैं, जो समाज से ऊपर उठकर समाज का सुधार करते हैं। समाज में रहने वाले यदि एबनार्मल हों, तो लोग उन्हें पागल समझते हैं। यदि मैं किसी से कुछ न लेकर मुफ्त में या बहुत थोड़ा लेकर बहुत सादा

रहकर काम करूँ तो मुझे कोई कौड़ी को भी नहीं पूछेगा। फिर यदि सभी गांधीजी बन जायँ तो गांधीजी की आवश्यकता ही क्या रही ?"

"परन्तु मैं तो मानती हूँ अपनी दिशा में आपकी सेवाएँ भी कम नहीं हैं।"

"ठीक है, परन्तु इतना उग्र बनने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग उस श्रेणी के हैं, जो समाज में रहकर उसका सुधार करते हैं। गांधीजी की श्रेणी दूसरी है।"

इसके बाद दोनों चुपचाप भोजन करने चली गईं।

उत्तर न होते हुए भी तर्क से न तो शुभदा ही सन्तुष्ट हुई और न शेफाली को ही अपनी बात में कोई वजन दिखाई दिया। फिर भी दोनों ने समझा—हाँ, हम लोग बहुत दूर तक नहीं जा सकते। समाज से विद्रोह करके समाज में नहीं रह सकते।

शेफाली भोजन करके यथानियम गीता पढ़ने लगी, किन्तु उसका मन नहीं लगा। उसने किताब उठाकर रख दी। रात काफी हो गई थी। शुभदा भी बत्ती बुझाकर सो गई थी। शेफाली राममोहन के सम्बन्ध में सोचती रही।

पुरुष और स्त्री की भावनाओं में वैसे तो साम्य और वैषम्य दोनों ही प्रकृति ने दिये हैं, किन्तु यौन-समस्या के अलावा स्त्री में मातृत्व की भूख प्रधान रूप से काम करती है। शायद सृजन उसमें दैवी प्रेरणा है या एक इन्स्टिक्ट है, जो नारी में रह-रहकर उठा करता है। यौन-वृत्ति में निहित मातृत्व की भावना इसलिए उसके जीवन का अंग बन गई है। आदिकाल से पुरुष अपनी वासना-तृप्ति को अपना चरम लक्ष्य मानता रहा है, जबकि नारी इससे भी आगे बढ़कर सृजन की आकांक्षा करती है। वह चाहती है कि उसकी गोद में पुरुष और उसका अपना दोनों की वासना का प्रतिबिम्ब भी खेले जो केवल उसके द्वारा पोषित हो; उसके प्रकृतिदत्त स्तन्य से फले-फूले।

शेफाली के मन में भी उस दिन की प्राणनाथ की बातों से भीतर

ही भीतर इसी प्रकार का एक अंकुर प्रस्फुटित हुआ। वह निरन्तर यही सोचने लगी। उसने अपने भीतर जीवन की सार्थकता का यह बीज भी अंकुरित होता पाया। उसे लगा कि रोगी-सेवा उसका वास्तविक सुख नहीं है। वह आरोपित संतोष है, जो उसने अपने ऊपर घटने वाली यथार्थता की प्रतिक्रिया के रूप में हृदय के भीतर पाला है। इसके द्वारा उसने एक अवास्तविक सुख की खोज में बहुत-सा जीवन का भाग बिता दिया है। न वह सत्य है और न तथ्य—जैसे कोई भूखा अन्न के बजाय पानी पीकर पेट भर जाने की कल्पना करता हो, या गरमी में ठण्डे मकान में बैठकर दोपहरी बिताने के बजाय किसी पेड़ की छाया में बैठ जाता हो, जहाँ लू के थपेड़े बार-बार उसके मुँह पर लग रहे हों।

वह यही सोचने लगी जो नित्य है वह नैमित्तिक नहीं हो सकता। जीवन का लक्ष्य है यथार्थता। कल्पना अवास्तविक है। उसने सोचते-सोचते वासना और प्रेम का विश्लेषण करते हुए जाना कि वासना सत्य है। कला वासना को अपने सौन्दर्य में रँगकर उसे उज्ज्वल भव्य बना देती है। दो स्त्री-पुरुषों में पहले-पहल वासना होती है। सभ्य समाज उसे वासना न कहकर 'प्रेम' कहता है। वासना की तृप्ति के बाद शुद्ध प्रेम की बारी आती है, पहले नहीं। वह एक से नहीं बहुतों से होता है। विरोधी सेक्स में तो वासना ही होती है। यह प्राणनाथ क्या मुझसे प्रेम करता है? नहीं, यदि इसे अवसर मिले और मैं चाहूँ तो क्या हम दोनों बिना सेक्स की तृप्ति के रह सकते हैं? फिर क्या यह 'प्रेम' कहा जायेगा?...उसे अनुभव हुआ कि जीवन में सेक्स के अलावा और कुछ नहीं है। एक बार तो उसे लगा जैसे अब तक का उसका सारा जीवन व्यर्थ था। वह कभी राममोहन और कभी प्राणनाथ के सम्बन्ध में सोचती। राममोहन की अपेक्षा प्राणनाथ उसे रुचता। उसके शरीर की बनावट, उसका व्यवहार, उसकी विद्वत्ता, प्रगल्भता उसके देश-विदेश के अनुभव—सबने मिलकर उसे राममोहन से श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया था। यदि किसी वजह से राममोहन की मूर्ति उसके हृदय में उभरती तो

प्राणनाथ के सामने वह गायब हो जाती। पिछले दिनों कई वार प्राण-नाथ से बातचीत में जीवन और सेक्स की गहराई तक पहुँचते-पहुँचते उन दोनों की हृदय-तरंगें एक ही जगह जा मिली थीं। कई बार उन दोनों को मालूम हुआ कि जैसे वे पति-पत्नी की तरह अपनी समस्याओं का हल करने जा रहे हों।

जो हाल शेफाली का था वैसा ही उधर प्राणनाथ भी अनुभव करता रहता। कचहरी के बाद वह बिलकुल स्वतन्त्र था। सो कभी राममोहन के यहाँ और कभी शेफाली के घर आ जाता; वह भी रात को, जब शेफाली बीमारों से छुट्टी पाकर आराम करती; तभी प्रायः शेफाली से हर प्रकार की चर्चा होती। एक बार तो कुछ लोगों को ऐसा लगा कि शेफाली प्राणनाथ के साथ वहुत जल्दी ही एक होने जा रही है, परन्तु बात बीच की बीच में ही रह गई है। शेफाली ने न तो अपनी तरफ से कोई उत्साह दिखाया, न आगे बढ़ी।

उन्हीं दिनों जब वह इस तरह की बातों में उलझी थी, एक बात हो गई। शेफाली उन दिनों एक धनी रामकुमार की पत्नी का इलाज कर रही थी। रह-रहकर उसके पेट में दर्द का दौरा उठता था। इसका इलाज कई डाक्टरों ने किया, परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ। शेफाली के इलाज से फायदा तो बहुत नहीं था, परन्तु दर्द के दौरे कम जरूर थे। बार-बार आने की वजह से रामकुमार की नजर उस पर पड़ी। पहली नजर में ही रामकुमार जैसे सुध-बुध भूल बैठा। जो आदमी पहले अपनी स्त्री अंजना को कभी-कभी देखने जाता था वह अब शेफाली के आने से पहले अंजना के कमरे में मिलता, अंजना के बारे में शेफाली से बात करता, बाहर निकलने पर उसकी बीमारी के बारे में पूछता रहता प्रयत्न करता कि वह उसे अपनी मोटर में घर छोड़ आए। परन्तु शेफाली सदा टाल जाती और मतलब की बातचीत के बाद एकदम चली जाती। रामकुमार जैसे लुटे आदमी की तरह हाथ फैलाए आँख फाड़े उसे देखता रहता। फिर मुट्ठी भींचकर कुसमुसाता रह जाता।

एक दिन मौका पाकर वह बोला, "डाक्टर शेफाली, यह संसार कितना क्रूर है। आप दिन-भर रोगियों की सेवा करती हैं, धूप, वर्षा सर्दी में बाहर जाती हैं। यदि आप चाहें तो मैं अपनी मोटर आपको अर्पित कर दूँ।"

शेफाली स्वाभाविक ढंग से उत्तर देकर आगे बढ़ने का उपक्रम करती हुई बोली, "मुझे तो यह जरा भी बुरा नहीं मालूम देता। मोटर की मुझे जरा भी जरूरत नहीं लगती। फिर आपकी मोटर क्यों?"

सेठ ने जरा आगे बढ़कर साथ-साथ चलते हुए कहा, "आपने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है, कर भी रही हैं।"

"तो ठीक है, मैं फीस भी तो लेती हूँ।" इतना कहकर शेफाली धड़धड़ाती नीचे उतर गई और रामकुमार के देखते-देखते ताँगे में बैठ गई और मुँह फेर लिया।

अचानक एक रात अंजना की तबियत बहुत खराब हो गई। दर्द इतना बढ़ गया जैसे उसके प्राण निकले जा रहे हों। रामकुमार अपनी मोटर लेकर स्वयं शेफाली के घर पहुँचा। उस समय शेफाली सोने जा रही थी। सेठ को आया जानकर बाहर आ गई।

"अंजना दर्द के मारे छटपटा रही है, डाक्टर! कृपा करके उसे देख लीजिए।"

शेफाली ने कमरे में जाकर कपड़े बदले और आवश्यक सामान लेकर चल दी। सचमुच अंजना का बुरा हाल था। रात के सुनसान में दूर-दूर तक उसके चिल्लाने-डकराने की आवाज फूटी पड़ रही थी। मकान के आस-पास के वातावरण में उसके क्रन्दन की ध्वनि एक भयंकरता पैदा कर रही थी। शेफाली चुपचाप मोटर से उतरी और अंजना के कमरे में चली गई। रामकुमार भी पीछे-पीछे हो लिया। उसने जाते ही अंजना के दो इंजेक्शन लगाए और पास ही उसकी खाट पर बैठ गई। थोड़ी देर में अंजना को झपकी आ गई, उसका दर्द कम हो गया।

जब शेफाली चलने लगी तो सेठ निहोरे के स्वर में बोला, "यदि

अधिक कष्ट न हो तो आप थोड़ी देर और ठहरने की कृपा करें डाक्टर शेफाली ! कहीं फिर दौरा उठा तो बड़ा कष्ट होगा। बस, जरा पूरी तरह नींद आ जाने दीजिए।" इतना कहकर वह चला गया।

इसके साथ ही नींद से भरी रामकुमार की माँ ने हाँ में हाँ मिलाई और बोली, "मैं यहीं दूसरे कमरे में खाट बिछवाए देती हूँ, डाक्टर सा'ब।" और इसके साथ ही उसने नौकर को आर्डर भी दे दिया।

शेफाली ने अनिच्छा प्रकट की और जल्दी जाना चाहा, पर ड्राइवर के न होने और रामकुमार के मोटर लेकर बाहर चले जाने के कारण उसे रुकना पड़ा। वह दूसरे कमरे में एक आराम कुर्सी पर जा बैठी। अंजना सो रही थी, सोती रही। धीरे-धीरे और स्त्रियाँ इधर-उधर हो गईं।

जिस समय रामकुमार आया उस समय शेफाली आरामकुर्सी पर नींद ले रही थी। रामकुमार चुपचाप खड़ा होकर आदमकद शीशे के सामने प्रतिच्छायित शेफाली की ओर देखता रहा। उसके मुख पर एक विराट् शोभा लहरा रही थी। बड़ी-बड़ी आँखों को ढके पलकें ऐसी लग रही थीं, जैसे अनन्त मद की स्रोतस्विनी बड़ी-बड़ी घास के भीतर बह रही हो या कमलिनी की पंखुड़ियों ने बीच के कुन्द को ढक लिया हो। नींद जहाँ चंचलता-वाचालता को हटाकर मनुष्य के वास्तविक रूप को फैला देती है, वहाँ वह छवि को दुगुना भी कर देती है। सफेद रेशमी साड़ी से ढके और बाहर निकले अंगों की शोभा जैसे फूटी पड़ रही हो। जैसे स्निग्धता, कोमलता, सुचिक्कणता-सौन्दर्य आकर्षण से लिपटकर रामकुमार के हृदय को मथ डालने के लिए सदल बाहर निकल आये हों। वह देर तक उसे देखता रहा, देखता ही रहा, जैसे एक सौन्दर्य की प्रतिमा किसी चित्रकार की साँसें पीकर उसके हृदय का सारा आसव लेकर जाग जाने को हो। पहले उसे संकोच हुआ, डर भी लगा पर वह किसी तरह भी वहाँ से हट नहीं सका। अंजना अभी तक सो रही थी। उसकी इच्छा हुई कि बिजली बुझाकर इस कल्पना-मूर्ति के चरणों पर

गिरकर हृदय के स्रोत से प्रतिक्षण प्रस्रवित प्रेम की भीख माँगे और उसके सामने अपने सम्पूर्ण वैभव को उसके चरणों में अर्पित कर दे। उसके शरीर में रोमांच हो आया, उसकी आँखों में मद छा गया। उसके अंगों में शिथिलता भरने लगी। वह अपने को विवश, निढाल-सा अनुभव करने लगा। उसे लगा, वह दौड़कर शेफाली को अपने अंगों में भर ले; पर वह ऐसा कर न सका। फिर उसके शरीर में एक वेग उठा, जैसे कोई दौरा रह-रहकर उठ रहा हो। वह तनिक आगे बढ़ा और ठीक शेफाली के सामने आ गया। जैसे ही वह बिलकुल सामने हुआ उसने देखा कि शेफाली ने उसी समय आँखें खोली हैं। रामकुमार पीछे हटा और इसके साथ शेफाली भी उठ खड़ी हुई। रामकुमार के ऊपर घड़ों पानी पड़ गया हो, इस प्रकार उसे अनुभव हुआ। उसे लगा कि शेफाली ने उसे देख लिया। पर शेफाली की आँखें तो उसी समय खुली थीं।

"हाँ, तो चलिए मुझे पहुँचा दीजिए, मि० रामकुमार!"

रामकुमार शान्त हुआ। फिर भी उद्वेग उसमें भर रहा था। उसके मुँह से निकला, "जी, आपको बड़ा कष्ट हुआ, चलिए।"

दोनों निकलकर पोर्टिको में आये तो शेफाली मोटर में पीछे की सीट पर बैठ गई। रामकुमार ने चाहा कि वह शेफाली से साथ की सीट पर बैठने को कहे, पर वह तो बैठ गई थी। रामकुमार ने मोटर स्टार्ट की। अब शेफाली को ध्यान आया, न जाने कब से यह सेठ उस कमरे में था और क्या कर रहा था। वह तो सो रही थी। क्या इसे इस तरह कमरे में बिना आवाज दिये आना चाहिए था? फिर भी उसे मालूम हो रहा था कि सेठ की निगाह में कुछ विचित्र-सा हो रहा है। कहीं ऐसा न हो······यही वह सोचती जा रही थी कि उसे फिर झपकी लग गई। जब आँख खुली तो उसने जमुना के तट पर अपने को पाया। उस भरी-पूरी चाँदनी रात में बालू-रेत पर मोटर खड़ी है। सेठ जैसे उसके जागने की प्रतीक्षा में वहीं बैठा उसके मुँह की ओर देख रहा है।

शेफाली भय-विचिकित्सा से भर उठी। उसके अंग काँप उठे। उसे परिस्थिति को समझते देर न लगी।

वह कुछ कहने जा रही थी कि सेठ बोल उठा, "कितनी सुन्दर चाँदनी रात है, डाक्टर शेफाली! मुझसे रहा न गया······।" इतना कहकर वह दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ और उसने दरवाजा खोल दिया।

शेफाली सेठ से पहले ही शंकित थी और उसके इस काम ने तो शेफाली के सरल-शान्त मानस में उथल-पुथल मचा दी। उसे कभी भी इतना उत्तेजित होने का अवसर नहीं मिला था, फिर भी जैसे उसके शरीर में आग लग गई। वह एक-दम क्रोध से काँपने लगी। उसे लगा कि इंजेक्शन के बाक्स में से छुरी निकालकर इस सेठ के पेट में भोंक दे।

उसने यह सब न करके गम्भीरता से कहा, "मि० रामकुमार, क्या यही तुम्हारा एक भद्र महिला के साथ व्यवहार का ढंग है, जो इस तरह तुम उसे बहकाकर यहाँ ले आये?"

उसने देखा रामकुमार पागलों की तरह बेशर्मी से उसके सामने हँस रहा है, और उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध उठ रही है।

रामकुमार ने कहा, "डाक्टर, यह लो दस हजार का चेक है। सब-कुछ तुम्हारे लिए है, सब-कुछ, आओ!"

इतना कहकर उसने शेफाली को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया। शेफाली दूसरे दरवाजे की तरफ खिसक गई। जब तक वह दूसरे दरवाजे की तरफ आया तब तक वह मोटर से निकलकर बाहर आ गई।

रामकुमार नशे में बेसुध अनाप-शनाप बक रहा था। कभी वह खुशामन्द करता, कभी डाँटता। दस-बारह मिनट तक वह शेफाली को पाने की चेष्टा करता रहा। शेफाली मोटर का चक्कर लगाने लगी। एक बार पकड़ाई में आने पर उसने पूरे बल से रामकुमार को पीछे धकेल दिया और इसके साथ ही अपना बॉक्स उठाकर उसके मुँह पर दे मारा। रामकुमार इसके बाद उठ ही रहा था कि उसने उसके मुँह पर

पस भरकर बालू-रेत उलीचना शुरू कर दिया। रामकुमार के लिए आँखों में धूल भर जाने पर पीछा करना कठिन हो गया। वह शेफाली को बुरा-भला कहने लगा। इसी बीच में मौका पाकर शेफाली वहाँ से खिसक गई और माल रोड के पास खड़े एक ताँगे में बैठकर ढाई बजे रात को घर लौटी। शुभदा, हीरादेई और मोहन उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मोहन रामकुमार की कोठी पर साइकिल से हो भी आया था, परन्तु वहाँ कुछ भी पता न लगा। जिस समय शेफाली लौटी तब तीनों डिस्पैन्सरी के दरवाजे पर खड़े थे। शुभदा रोई-रोई-सी हो रही थी। हीरादेई गुमसुम खड़ी थी।

शेफाली का ताँगा मकान के सामने रुकते ही शुभदा दौड़कर शेफाली से लिपट गई और बोली, "कहाँ गई थीं जीजी आप ?"

शेफाली गुमसुम ताँगे से उतरकर ऊपर चली गई। शुभदा से उसने इशारे से कहा कि ताँगे वाले को किराया दे दे। जब हीरादेई उसके पीछे-पीछे चली तो शेफाली ने कहा, "मैं एक बीमार को देखने चली गई, इसी से देर हो गई। तुम लोग जाओ, सोओ !"

यही उसने शुभदा से भी कहा। शुभदा पहले तो बहुत बोलती रही, फिर चली गई।

शेफाली ने कपड़े बदलकर लेटते हुए सारी परिस्थिति पर विचार करना आरम्भ किया। यह पहला ही अवसर था कि उसके साथ एक व्यक्ति ने इस प्रकार का व्यवहार किया। उसका हृदय अब भी उस समय का विचार करके कभी-कभी धड़क उठता था। सबसे पहला प्रश्न उसके सामने यह था कि किसके सामने वह इस दुर्घटना का जिक्र करे। जो भी सुनेगा वह उसकी ठीक बात का विश्वास न करके उल्टे उसे ही पतित और गिरी हुई समझेगा। इससे उसकी प्रतिष्ठा में ही बट्टा नहीं लगेगा उसका व्यवसाय भी गिर जायगा; लोग उस पर हँसेंगे सो अलग। फिर भी उसका हृदय भर-भर आ रहा था। उसे लगा, इस दिशा में वह बिलकुल अनाथ है। और यह रामकुमार देखने में इतना नम्र,

विनीत, सभ्य ! क्या यही इसकी सभ्यता है ? क्या यही सभ्य मनुष्य का रूप है ? उसे अपने ऊपर बहुत ग्लानि हुई। उसने अपना सिर पीट डाला और सुबक-सुबककर रोने लगी। बहुत देर रोने के बाद मन का बोझ हल्का हो जाने पर वह सो गई। सवेरे वह देर से उठी। मरीज आकर लौट रहे थे। मोहन ने कह दिया, "डाक्टर साहब बीमार हैं, दोपहर या शाम को आना।"

वह अभी बिस्तार पर ही थी कि प्राणनाथ आ गया। शुभदा ने बताया, "जीजी रात को रामकुमार की पत्नी तथा एक मरीज को देखकर ढाई बजे रात लौटीं। तबियत भी खराब है।" इसके साथ ही उसने अपनी रात को बीमारों को देखने की पुरानी शिकायत फिर दुहराई।

प्राणनाथ बोला, "रामकुमार के यहाँ जाना जरूरी था, शुभदा ! उसकी स्त्री का चिल्लाना सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बहुत बीमार है बिचारी। जिस समय उसे दौरा उठता है तो आस-पास दूर-दूर तक उसके चिल्लाने की आवाज सुनाई देती है।"

शुभदा की सहानुभूति अंजना के प्रति हो गई। वह फिर कुछ न बोली। इसी समय शेफाली ने कमरे में प्रवेश किया। प्राणनाथ ने उठ कर स्वागत किया और कहने लगा, "तो आपका क्या विश्वास है, अंजना बच जायेगी ? मुझे तो शक है। उसे इन्टेस्टाइन की टी० बी० है, वह बच नहीं सकती। जितने दिन कट जायँ उतना ही।···"

"मिस्टर प्राणनाथ, क्या आप जरा उसका हाल-चाल पूछकर मुझे अभी बता नहीं सकते।"

"क्यों नहीं, ऐसी क्या बात है। मैं अभी आया।"

"हाँ, ताँगे पर चले जाइए, लौटकर चाय यहीं पीजिएगा।" प्राणनाथ जिस समय लौटकर आया उस समय तक शेफाली तैयार होकर उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी।

प्राणनाथ ने आकर कहा, "अंजना की हालत अब-तब हो रही है।"

"क्या कहा ?"

"हाँ, वह शाम तक भी जी जाय तो गनीमत है। एक बात और, रामकुमार की आँखों में धूल झोंककर किसी ने उनकी घड़ी और गले की जंजीर लूट ली। उनकी आँखों का इलाज हो रहा है।"

शेफाली ने भीतर ही भीतर समाचारजन्य उत्सुकता को दबाकर रामकुमार की बात सुनी और दिखावटी तौर पर बोली, "आँखों में धूल झोंककर, क्या मतलब तुम्हारा ?"

प्राणनाथ ने उत्तर दिया, "रात को कहीं से लौट रहे थे कि दो आदमियों ने इशारे से उन्हें गाड़ी खड़ी करने को कहा। उनके गाड़ी रोकने पर उन्होंने उतार लिया और पहचाने जाने के डर से उनकी आँखों में धूल झोंक दी और सब लूट लिया।"

"पर वहाँ बालू-रेत कहाँ से आई ?"

"न जाने ! समझ में तो मेरी भी नहीं आया। बालू-रेत न होकर धूल भी हो सकती है। मैंने सेठ से मिलना भी चाहा, पर मिले नहीं। उनका एक केस भी है इसी से, खैर बात कुछ अजीब-सी है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। फिर ये हजरत रात को कहाँ से आ रहे थे ? मुमकिन है...कहीं और जगह।..."

"छोड़िए चाय तैयार है। आइए।"

सबने मिलकर चाय पी। इसके बाद शुभदा और प्राणनाथ चले गए। शेफाली डिस्पेन्सरी में चली गई। उसका किसी काम में मन नहीं लगा। थोड़ी देर बाद उसने सुना कि सेठ रामकुमार की स्त्री का देहान्त हो गया।

बताने वाले ने कहा, "सेठ की आँखों में धूल झोंकने की शहर में बड़ी चर्चा है। कोई कह रहा है कि सेठ किसी स्त्री के साथ बलात्कार करना चाहता था वही उसकी आँखों में धूल झोंककर भाग गई। किसी ने उड़ाया है कि दो आदमियों ने उसे मोटर से उतारकर लूट लिया और पहचाने जाने के डर से उन्होंने लूटने से पहले उसकी आँखों में धूल

झोंक दी।"

शेफाली यह सब सुनती और चुप हो जाती। उसे कभी-कभी भय लगता कि किसी तरह से उसका नाम इसके साथ न जुड़ जाय। वह उस अवस्था में क्या करेगी, क्या उत्तर देगी, किस तरह अपने को बचाएगी? बहुत कुछ तो सेठ पर निर्भर था। वही यदि कह दे तो क्या होगा? यह बहुत बुरा हुआ। वह इसके यहाँ इलाज करने गई ही क्यों? हवन करते हाथ जलना इसी को कहते हैं। इसमें भला उसका क्या दोष है? क्या उसने सेठ को कोई भी प्रोत्साहन दिया या कोई ऐसी बात की, जिससे उसे इतना आगे बढ़ने का मौका मिलता? उसे खयाल आया, यदि उसकी आँखें बहुत खराब हो गई तब मुमकिन है कि वह झुँझलाकर यह सब कह डाले। अपने ऊपर आई विपत्ति से बचने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता? उसे सूझ कुछ भी नहीं रहा था, यद्यपि अभी भय कोई नहीं था। उसने किसी के भी मुँह से अपना नाम इस घटना के साथ नहीं सुना, फिर भी उसका शंकाकुल हृदय रह-रह कर काँप उठता। तो क्या वह कहीं बाहर चली जाय, आखिर वह क्या करे, कहाँ जाय, किससे कहे? कभी वह सोचती यदि इस समय कोई भी उसे सहायता दे सकता है तो वह प्राणनाथ है, बैरिस्टर प्राणनाथ। राममोहन छिछोरा है। कदाचित वह साधना से कह दे या अपने किसी अन्तरंग मित्र से ही कह डाले, तो बात फैल जायेगी। इसी उधेड़बुन में वह रह-रहकर उद्विग्न हो उठती। रोगियों को देखते-देखते, नुस्खा लिखते-लिखते वह जैसे भूल जाती। बीमारों की बात सुनते-सुनते वह भूल जाती कि वे क्या कह रहे हैं। रोगी अनुभव करते कि आज डाक्टर शेफाली को क्या हो गया है। ऐसी भुलक्कड़ तो वह कभी नहीं थी। जरूर कोई ऐसी बात है। फिर शेफाली के मन का पूर्वापर न जानने के कारण चुप हो जाते और फिर अपनी बात दुहराते। कम्पाउण्डर को जो आदेश देती उसमें भी स्पष्टता नहीं थी। वह भी हैरान था। हारकर वह बिना ही मरीजों को देखे, जैसे ही भीतर जाने लगी वैसे ही

एक आदमी आकर बोला, "सुना है सेठ रामकुमार अन्धे हो गए हैं।"

शेफाली ने सुना तो चौंक उठी। बोली वह कुछ भी नहीं, बल्कि सुन्न-सी होकर चुपचाप अपने कमरे में चली गई। उसी समय उसने एक आदमी प्राणनाथ को बुलाने भेजा।

घर में हीरादेई थी। शुभदा कालेज से लौटी नहीं थी। वह चाहती थी कि कोई भी उसके पास न आये, कोई भी उससे न मिले। उसके कमरे में घुसते ही हीरादेई आई तो उसने कह दिया, "रात को देर से सोने के कारण तबियत भारी है।"

हीरादेई ने चाहा कि वह उसके पास बैठे, किन्तु उसने इशारे से हीरादेई को हटा दिया। वह चला गई। हीरादेई के जाने पर वह चुप-चाप तकिए में सिर छिपाकर पड़ गई। एक-पर-एक विचार उसके दिमाग में आ रहे थे, जैसे भय, सन्देह, प्रतिष्ठा, अपमान अपना-अपना मूर्त्त रूप धारण कर उसके सामने बार-बार आकर खड़े हो जाते हों। कभी भय का दृश्य उसके सामने आता और उसे दिखाई देता कि कोर्ट में उस पर सेठ की आँखों में धूल झोंकने का अपराध लगाया गया है। सारा शहर वहाँ जमा है। लोग उत्सुक होकर, घृणा से भरकर, चैमेगोइयाँ कर रहे हैं। सारे शहर में उसकी बदनामी हो रही है। कोई कह रहा है कि पहले से ही रामकुमार के साथ इसकी दोस्ती थी। शेफाली पहले से ही खराब थी, बदमाश थी, फायशा थी। अब कोई भी भला आदमी इसको अपने घर बीमार औरतों को देखने के लिए बुलाने से रहा। सारा शहर उसकी निन्दा कर रहा है। वह जिधर भी जाती है उधर लोग उसकी ओर देखकर मुँह फेर लेते हैं। कुछ लोग उसके ऊपर हँस रहे हैं। कुछ उसका मजाक उड़ा रहे हैं। अखबारों में कालम-के-कालम उसके विरुद्ध रँगे जा रहे हैं। कुछ डाक्टरों ने मिलकर उसका बहिष्कार कर दिया है। ये सब बातें उसके कल्पना चित्र में बनतीं और बिगड़तीं। जब उससे लेटे न रहा गया तो वह उठ बैठी, बैठे न रहा गया तो टहलने लगी। जैसे वह पागल हो गई हो। उसे

लगता, इस अप्रतिष्ठा के कारण वह कहीं की न रही। शुभदा ने भी उससे मुँह मोड़ लिया है। हीरादेई भीतर-ही-भीतर हँस रही है। नौकर-चाकर नौकरी छोड़ने पर आमादा हैं। जैसे सब उसे छोड़े जा रहे हैं। गिरधर कह रहा है, "क्या शेफाली का यह रूप है? रोगियों की सेवा में सुख पाने वाली शेफाली!"

इसी उधेड़बुन में वह बेचैन थी कि आदमी ने आकर सन्देश दिया, "प्राणनाथ साहब शाम को आएँगे।" इतना कहकर चला गया।

सौभाग्य से उस समय तक शुभदा कालेज से नहीं आई थी, वरना उससे तो शेफाली को बात करनी ही पड़ती। वह अपनी बेचैनी किसी तरह भी दबा नहीं पा रही थी। फिर एक बार उसके जी में आया, क्या प्राणनाथ इतना विश्वासपात्र है कि वह उससे अपने मन की बात कह सके? इन वकील-बैरिस्टरों का क्या भरोसा! शहर-भर की बातें सुनते हैं, टीका-टिप्पणी करते हैं। यदि प्राणनाथ भी कहीं वाहर खबर फैला दे, और हाँ वह तो उसी का वकील है। क्या ठिकाना उससे मिल जाय और मुझे जलील करे। वह किससे कहे? इसी बीच में शुभदा आ गई।

जैसे ही उसने शेफाली को देखा तो बोली, "कैसी तबियत है, चेहरा उतरा हुआ लगता है, जैसे महीनों की बीमार हो, जीजी! क्या बात है?" वह शेफाली की गोद में आ लेटी।

शेफाली कुछ देर तक चुप रहकर बोली, "कुछ भी तो नहीं।"

"कुछ कैसे नहीं? तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि कोई गहरी मनो-वेदना तुम्हें सता रही है।"

शेफाली ने फीकी हँसी हँसकर कहा, "क्या कहने, डाक्टर तो तू है। मैं ठीक हूँ। जा चाय पी। मैं भी एक प्याला पीऊँगी।"

इसके साथ ही उसने हीरादेई को बुला भेजा और इधर-उधर की बातें करने लगी। पर मन में जो भर-भर रहा था वह उसे भीतर ही भीतर जैसे खरोंच रहा था।

शाम को प्राणनाथ आया। यह आज पहला ही मौका था कि शेफाली ने उसे बुलाया। उसके पैर सीधे नहीं पड़ते थे। वह कोर्ट से लौटकर जल्दी ही निश्चित होकर चला आया। आते ही कहने लगा, "क्षमा कीजिए, जिस समय मोहन गया था मैं एक मुकदमे में जिरह कर रहा था। हाँ, कहिए।"

शेफाली क्या कहती। पर शुभदा बोली, "जीजी की आज तबियत खराब है, प्राणनाथ बाबू!"

"मुझे लगता है कि इन्हें इससे भी ज्यादा बीमार होना चाहिए। भला कोई बात है? दिन-दिन भर रोगियों को देखती हैं, रात को भी आराम से नहीं सोतीं। ऐसा आदमी जिन्दा कैसे रहता है, यही आश्चर्य है!" प्राणनाथ बोला। "परन्तु हाँ, सेठ रामकुमार ने कहा है जब वह आपको छोड़कर लौट रहा था कि यह दुर्घटना हो गई।"

"छोड़कर? जीजी तो ताँगे में आई हैं," शुभदा ने तत्क्षण बात काट दी।

शेफाली उसी समय बोली, "ठीक तो है मुझे दूसरे मरीज के घर छोड़कर वे लौट गए, तभी की घटना हो सकती है।"

"तो आपके साथ और कोई नहीं था? जिसके घर जाना था, वह आदमी तो होगा ही?" शुभदा ने तर्क किया।

"अरी पगली, वह आदमी सेठ के घर आकर ही मुझे आने को कह गया था। बस, वहाँ से निबटकर मैं उसके घर चली गई।"

दोनों चुप हो गए। शेफाली की जान-में-जान आई। उसे अपनी बुद्धि पर भरोसा हुआ, परन्तु झूठ-पर-झूठ बोलने के लिए उसे ग्लानि भी कम न हुई।

"आप रात का जाना बिलकुल बन्द कर दीजिए। न जाने कब क्या दुर्घटना हो जाय। फिर तो अपनी प्रतिष्ठा सँभालना भी मुश्किल हो जायेगा, डाक्टर शेफाली!" प्राणनाथ ने सिर हिलाते हुए एक हितैषी भविष्यवक्ता का तरह कहा।

शुभदा ने शेफाली के बिस्तर के पास ही चटाई पर चाय का सामान लगाया और वह किसी काम से बाहर चली गई। इसी समय शेफाली ने प्राणनाथ से कहा, "आप ठीक कह रहे हैं। मैं भी उसी समय से ऐसा ही सोच रही हूँ। फिर भी मैं चाहती हूँ कि इस दुर्घटना में मेरा नाम किसी तरह न लिया जाय।"

"तो मैं भरपूर कोशिश करूँगा। और यह है भी ठीक। न जाने आपका नाम आने पर लोग क्या-क्या अटकलें लगायेंगे।"

"आप सेठ रामकुमार से मिले थे क्या आज ?"

"नहीं, उनका मुनीम कोर्ट में आया था। वही कह रहा था।"

सबने मिलकर चाय पी। इसके बाद शुभदा उठकर पढ़ने चली गई। शेफाली सोच रही थी क्या इस दुर्घटना का पूरा ब्यौरा वह प्राणनाथ से कहे ? उसने प्रारम्भ से आज तक प्राणनाथ को विश्वास के योग्य समझा है। उसकी किसी बात में उसे ओछापन दिखाई नहीं दिया। वह अनुभवी होने के साथ-साथ अच्छा मित्र भी है। यही बातें शेफाली ने प्राणनाथ के भीतर पाईं।

इसी समय प्राणनाथ ने पूछा, "आपने बुलाया था, क्या कोई खास बात है ?"

शेफाली चुप रही। प्राणनाथ अधीर हुआ। उसकी बैरिस्टरी बुद्धि ने शेफाली के हृदय की गहराई को ताड़ लिया। वह बोला, "शेफाली जी, जिस दिन से मैं आपके सम्पर्क में आया हूँ उसी दिन से मैं आपके चरित्र को पढ़ रहा हूँ। उसी दिन से आपके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ रही है। आपके-से चरित्र के व्यक्ति मिलते कहाँ हैं ?"

शेफाली ने उत्तर में केवल इतना ही कहा, "यह सब आपके हृदय की उदारता है, प्राणनाथ बाबू, मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ। परन्तु आज ऐसा अवसर आया है कि मुझे आपना बिलकुल अन्तरंग मानकर आपसे कहना पड़ रहा है।"

"मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आपको निराशा नहीं होगी।"

शेफाली ने एक बार फिर प्राणनाथ की आँखों की तरफ देखा, उनमें झाँककर उसे पढ़ना चाहा। फिर सेठ रामकुमार के साथ बीती दुर्घटना सिलसिलेबार सुना दी। प्राणनाथ चुपचाप सुनता रहा। वह बराबर शेफाली के कहने की भावभंगी, शब्द-विन्यास की शैली को पढ़ने की चेष्टा करता रहा।

सुनने और सारी परिस्थिति पर विचार करने के बाद प्राणनाथ ने कहा, "मैं भी मानता था और बार रूम के कुछ वकीलों का भी यही खयाल था कि इस घटना का सम्बन्ध किसी स्त्री से होना चाहिए। बात ठीक निकली। आप बिलकुल चिन्ता न करें। मैं प्रयत्न करूँगा कि आपका नाम किसी भी तरह इसके साथ न जुड़े। मैं आज ही सेठ रामकुमार से मिलूँगा।"

इसके बाद शेफाली बोली, "मैं इस परिणाम पर पहुँची हुँ कि डाक्टरी का पेशा भी खतरे से खाली नहीं है। आखिर कभी-कभी तो डाक्टर को रात को भी बीमार देखने जाना ही पड़ता है। कोई इस सम्बन्ध में नियम तो नहीं बनाया जा सकता, प्राणनाथ बाबू!"

प्राणनाथ चुप रहकर बोला, "यह रात को मरीज देखने जाने का इतना प्रश्न नहीं है जितना व्यक्ति के रूप का है। क्षमा कीजिए। सारे शहर में आपकी सुन्दरता, शालीनता प्रसिद्ध है। लोगों को हैरानी है, इतनी सुन्दर होते हुए भी आपने अभी तक शादी क्यों नहीं की! अवश्य ही कोई विशेष कारण है या आपको प्रेम सम्बन्धी ठेस पहुँची है, जिससे मजबूर होकर आपने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की है।" प्राणनाथ ने अपने मन की बात इस तरह घुमा-फिराकर कही।

शेफाली अपनी पुरानी कथा दुहराने जा रही थी कि कुछ सोचकर चुप हो रही। फिर बोली, "हो सकता है, परन्तु मुझे ऐसी कोई बात नहीं लगी। मैं तो वैसे ही माँ की इच्छा के अनुसार डाक्टर बनी हूँ। वैसे भी सेवा करने की मेरी प्रवृत्ति बचपन से है। आप मानते हैं, स्त्री स्वभावतः दयालु प्रकृति की होती है।"

प्राणनाथ ने शेफाली की यह बात सुनी, परन्तु विश्वास उसे नहीं हुआ। उसने पूछा—

"तो क्या माँ ने यह भी चाहा कि आप विवाह न करें ?"

"नहीं, यह मेरा निश्चय है, परन्तु अब मैं सोच रही हूँ कि मुझे वैसा करना ही होगा।"

"वह दिन आपके और उस व्यक्ति के सौभाग्य का होगा, शेफाली देवी !"

"निश्चय से कह सकना कठिन है। जीवन का प्रवाह जहाँ सरल है वहाँ बहुत वक्र भी है, दुरभिजेय भी है, प्राणनाथ !" इतना कहकर शेफाली ने मुस्कान-भरी एक नजर प्राणनाथ के ऊपर डाली। "आपका क्या विचार है ?"

"आप मुझसे पूछ रही हैं ?"

शेफाली ने अपनी बात के दो अर्थ समझकर तत्क्षण कहा, "मेरा मतलब विवाह करने से है।"

"बुरा तो नहीं है, बल्कि एक तरह से अच्छा है। वैसे भी जो बात आपके हृदय में है उसका मैं जवाब भी क्या दूँ !"

"मैं निश्चय कर रही हूँ।"

"आपके निश्चय का सौभाग्य दिनों, सप्ताहों या मासों में किसको मिलने वाला है ?" आँखों में ही हँसकर प्राणनाथ ने प्रश्न किया।

"यह तो उत्तर-पक्ष पर निर्भर है, प्राणनाथ !"

"हर एक प्रश्न का उत्तर होता है। यदि प्रश्न ही नहीं होगा तो उत्तर कोई क्या दे।" इतना कहकर प्राणनाथ ने शेफाली का हाथ पकड़ लिया।

शेफाली ने अपना हाथ प्राणनाथ के हाथ में रहने देकर कहा, "मैं इधर कल रात से इस दुर्घटना से पागल हो गई हूँ। न जाने क्या हो ? मुझे डर है सेठ को कहीं 'पेनोफेल्माइटस' न हो जाय। फिर तो सारा जीवन उस बिचारे का खराब हो जायेगा और यदि रामकुमार की आँखें

ठीक न हुई तो हो सकता है वह क्रोध में आकर मेरा नाम ले दे ।"

प्राणनाथ ने शेफाली की बात की गुरुता को समझा और थोड़ी देर बाद वह चला गया ।

दूसरे दिन प्राणनाथ सेठ के घर पहुँचा तो मालूम हुआ वह अस्पताल में है । वह अस्पताल पहुँचा। उसकी आँखें बहुत ही खराब हो गई थीं । उसकी आँखों में अलसर हो गया था। घावों के कारण दोनों आँखों में खराबी आ गई थी । रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा था । डाक्टर और नर्स बराबर सेठ की देखभाल कर रहे थे । नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति वहाँ आ-जा रहे थे ।

डाक्टर से पूछने पर उसने कहा, "सम्भव है आराम हो जाय ।" प्राणनाथ यत्न करके भी एकान्त न पा सका । आँखों पर उसके पट्टी बँधी थी । देख सकने का तो प्रश्न ही नहीं था । जिस समय प्राणनाथ का नाम सेठ ने सुना तो वह स्वयं बोला, "बैरिस्टर साहब, इधर आइए न ! आपसे कुछ काम है । और कौन है यहाँ पर ? जरा मुझे आपसे एकान्त में बातें करनी हैं।" सब लोग चले गए । एकान्त पाकर रामकुमार ने प्राणनाथ का हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा, "कहाँ से आ रहे हो ?"

"सीधा घर से । तुम्हें देखने आया हूँ । कैसी तबियत है ? यह सब हुआ कैसे ?"

रामकुमार ने उत्तर दिया, "दुर्घटना कहकर नहीं आती, बैरिस्टर साहब ! मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ ।" इतना कहकर वह रुक गया ।

"पूछिए न !"

"बात तुम्हीं तक है । क्या मैं किसी तरह भी डाक्टर शेफाली की मनोवृत्ति का परिचय पा सकता हूँ ? मुझे लगता है, उस रात को मेरे और मेरी पत्नी के कारण उन्हें बहुत दुःख पहुँचा है । मैं उन्हें उनकी फीस भी नहीं दे सका ।"

"मैं पूछकर देखूँगा ।"

"नहीं।"

इतना कहकर रामकुमार चुप हो गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि किस तरह अपने मन की बात कहे।

प्राणनाथ ने इसी बीच कहना शुरू किया, "यह तो कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे आप डाक्टर शेफाली की मनोवृत्ति के सम्बन्ध में व्याकुल हों। उनकी फीस उन्हें दे दी जायेगी। बस, आखिर डाक्टर का तो काम है कि जब कोई बुलावे तब आवे।"

'ठीक है पर मुझे ऐसा लगता है कि वह मुझसे नाराज हो गई हैं। वे बहुत भली हैं। अच्छा, ठीक होते ही मैं स्वयं उनसे मिलूँगा। माफी माँग लूँगा। तुम कुछ न कहना।" इतना कहकर रामकुमार चुप हो गया। उसने उधर मुकदमे की दो-चार बातें कीं और उसे बिदा कर दिया। प्राणनाथ ने उसके द्वारा स्पष्ट न कहे जाने पर भी सारी स्थिति समझ ली और चला आया।

शेफाली ने सुना तो उसे तसल्ली हुई। जब शेफाली ने पूछा, "क्या मैं सेठ को हस्पताल में जाकर देख आऊँ?" तो प्राणनाथ ने इसका विरोध किया।

इधर एक दुर्घटना हो गई। हीरादेई की लड़की सरोज और लड़के नलू की अपने नाना के घर अचानक मृत्यु हो गई। माँ की बीमारी का हाल सुनकर हीरादेई अपने बच्चों के साथ गाँव चली गई। वहाँ लड़के को हैजा हो गया। गाँव का मामला, कोई डाक्टर अथवा वैद्य तो मिला नहीं। एक सिड़ी से अनाड़ी हकीम को बुलाकर दवा कराई। दूसरे दिन ही लड़का और उसके दो दिन बाद सरोज चल बसी और उसके साथ ही गोद का लड़का भी। हीरादेई मन मसोसकर रह गई। बहुत रोई-चिल्लाई। एक-एक करके उसके आठ बच्चे इसी तरह जाते रहे थे।

शेफाली के पास समाचार उस समय आया जब तीनों बच्चे हीरादेई के हाथ से छिन गए। शेफाली ने कम्पाउण्डर को भेजकर हीरादेई को बुला लिया, बहुत ढारस बँधाया, किन्तु हीरादेई उस दुःख को न भूल सकी। पहले कुछ दिनों तक तो पागल-सी गुम-सुम रही; न किसी से बोलती न बात करती, दिन-भर आँखें फाड़-फाड़कर देखती रहती, जैसे उसके रोम-रोम में शोक का प्रबल वेग छा गया हो, जैसे उसकी चेतना-ग्रन्थियों में निःशून्यता भर गई हो। शेफाली ने काफी प्रयत्न किया, काफी समय देना पड़ा, तब जाकर वह प्रकृतिस्थ हो पाई। फिर भी दिन-भर अपनी कोठरी में बैठी रोती रहती। शुभदा जब-तब जाकर उसे धीरज बँधाती। शेफाली भी रात को उसके पास बैठकर उसे तसल्ली देती। इन दिनों हीरादेई की अवस्था देखकर दुःख होता था। उसका रूप और शरीर घोर दुःख में निष्प्राण हो गए थे। उसका मन बहलाने के लिए शेफाली ने उसे अपना सहकारी बना लिया। धीरे-धीरे वह उसे नर्स का काम सिखाने लगी।

प्रयत्न करने पर भी जगन्नाथ का हीरादेई को कोई पता न चला। कभी कोई कहता कि वह जेल में है, कभी समाचार मिलता कि वह सरकारी नजरों से भागा-भागा फिर रहा है। इसी दुःख में हीरादेई एक बार फिर बीमार पड़ गई। शेफाली ने उसकी सेवा में कुछ भी उठा न रखा। वह रात को हीरादेई के पास ही सोती; दिन में उसकी देख-रेख करती; स्वयं अपने हाथों से उसे दवा पिलाती; उसके पथ्य की व्यवस्था करती। परिणामस्वरूप शेफाली की सेवा और लगन से हीरादेई रोग-मुक्त हो गई। इधर दिन-रात काम करते-करते तथा ठीक आराम न करने के कारण शेफाली के स्वास्थ्य पर भी उसका असर हुआ।

एक दिन शाम को प्राणनाथ ने कहा, "शेफाली देवी, लगता है जैसे आप महीनों की बीमार हैं।"

"भीतर से मैं बहुत प्रसन्न हूँ प्राणनाथ बाबू, अपने जीवन में पूरी तरह सेवा करने का मुझे यही अवसर मिला है।"

"अपना स्वास्थ्य खोकर आप निरन्तर सेवा नहीं कर सकतीं और आपके मन की प्रसन्नता भी रह न सकेगी।"

"कभी-कभी मैं सोचती तो हूँ, पर क्या करूँ काम से छुटकारा मिले तब न?"

"मेरी राय है आप थोड़े दिनों के लिए पहाड़ हो आइये।"

"शुभदा की परीक्षा होते ही मैं जाने की चेष्टा करूँगी। केवल दो सप्ताह की बात है।"

प्राणनाथ ने राममोहन का प्रसूति-गृह वाला प्रस्ताव उसके सामने रखते हुए कहा, "राममोहन ने नगर के बाहर बाग के पास चालीस बीघे का एक प्लाट खरीदा है।"

"अच्छा तो है।"

"अस्पताल के लिए इंजीनियर को डिजाइन के लिये भी कहा है। नक्शा पास होते ही काम शुरू हो जायेगा।"

शेफाली को प्रसूति-गृह के सम्बन्ध में बहुत उत्साह न लेते देखकर प्राणनाथ ने कहा, "जो डाक्टर सब का स्वास्थ्य ठीक करे वही बीमार या अस्वस्थ हो तो आश्चर्य है। आपको अवश्य पहाड़ जाना चाहिए।"

"मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में शायद सभी को बहुत चिन्ता हो गई है। साधना भी आई थी, उसने भी यही कहा था। अब मुझे निश्चय ही कुछ न कुछ करना होगा। न करने से काम भी तो नहीं चलेगा। शुभदा के पर्चे अच्छे हो रहे हैं। शायद अच्छा डिवीजन आ जाय।"

"आगे क्या एम० ए० ज्वाइन करने का इरादा है?"

"यह तो वही जाने। यदि उसे एम० ए० करना होगा तो कौन मना करता है।"

प्राणनाथ कुछ देर चुप रहकर बोला, "आपने शुभदा को जिस तरह अपनाया है, वह अद्भुत है। मालूम होता है जैसे सगी बहन हो।"

"शुभदा की आत्मीयता भी मेरे लिए कम गौरव की वस्तु नहीं है, प्राणनाथ बाबू! वह भी एक-मात्र मुझे अपना अभिभावक मानती है।

मुझसे पूछे बिना कुछ भी कर सकना उसके लिए असम्भव है। हीरादेई ने जिस प्रकार तन्मयता से मुझे अपनाया है, उसे देखकर लगता है कि वह मुझे भी छोड़कर कहीं नहीं जायेगी। मनुष्य में निश्छल भावना चाहिए। इधर हीरादेई बड़ी तेजी से नर्स का काम सीख रही है। मैं चाहती हूँ वह भी ट्रेनिंग लेकर एक सर्टिफिकेट ले ले। किन्तु मुश्किल यह है कि पढ़ी-लिखी नहीं है; उसे दाई का सर्टिफिकेट मिल सकता है, नर्स का नहीं।"

हँसकर प्राणनाथ बोला, "तो यों कहिए कि कोई भी आपके यहाँ आकर आश्रय ले सकता है, उसके पति का क्या हुआ ?"

"उसका कुछ भी पता नहीं लग रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि वह जेल में है, दूसरे कहते हैं फरार है।"

प्राणनाथ ने कहा, "सुना है तारा ने पार्टी का काम छोड़ दिया है।"

"क्यों ? वह तो घोर कम्यूनिस्ट थी न ?"

"कहते हैं तारा अब वह नहीं रही। वह आजकल बम्बई में है। सुना है वह रूस जा रही है, परन्तु पासपोर्ट की दिक्कत है। उसके काम करने का ढंग अच्छा है। बम्बई की पार्टी में उसका बहुत ऊँचा स्थान है।"

शेफाली ने इस समाचार को आँख फाड़कर बड़ी उत्सुकता से सुना। "सचमुच ? वह बड़ी तेज है एक दिन···" इतना कहकर वह चुप हो गई।

प्राणनाथ बोला, "हाँ, एक दिन, आप आगे क्या कह रही थीं ?"

"एक दिन वह मेरे पास आई थी—तीन मास का गर्भ लेकर। मैंने कहा—विवाह कर लो तारा, मैं ऐसा काम नहीं करती।"

प्राणनाथ जैसे चौंक उठा, बोला, "फिर ?"

"मैंने उसे एक और लेडी डाक्टर बता दी। उसके बाद मुझे नहीं मालूम।"

"शायद उसका काम हो गया था। स्त्री के लिए यह बड़ा कष्टप्रद

प्रसंग होता है। देश की सेवा के मुकाबले में उसका यह काम मामूली है। आखिर मनुष्य ही तो है।"

शेफाली ने जरा उग्र होकर कहा, "फिर भी शायद संसार का कोई भी सभ्य समाज इसकी स्वीकृति नहीं देता। और तो और उस व्यक्ति की आत्मा, जिससे यह भूल हुई है, वह भी भीतर-ही-भीतर लज्जित होती है, पश्चात्ताप करती है। क्षणिक सुख के आवेग में जीवन का यह अनन्त पश्चात्ताप है, प्राणनाथ बाबू! स्त्री ही इसको समझ सकती है। मेरे सामने आये-दिन ऐसे केस आते हैं। मैं जानती हूँ कि ऐसी लड़कियों की क्या दशा होती है।"

इसके साथ ही शेफाली ने नगर के प्रसिद्ध परिवार की एक लड़की के सम्बन्ध में बताया कि उसने निरुपाय होकर आत्महत्या कर ली। सेक्स को स्वाभाविक मानते हुए भी उसका नियन्त्रण आवश्यक है। "उस दिन रात को तारा अचानक मेरे सामने आ खड़ी हुई। उसके पास जगन्नाथ का पत्र था। मैं उस समय दवाखाने में बैठी थी। सब लोग जा चुके थे। आकर उसने चुपचाप मुझे वह पत्र दिया। मैंने पढ़ा और उसकी ओर देखने लगी। उसने कहा—'इसमें मेरी भूल नहीं है। एक साथी ने मेरे साथ बलात्कार किया है।' "

" 'बिना तुम्हारी मरजी के ऐसा सम्भव नहीं है,' मैंने कहा।"

"वह चुप रही और बोली, 'क्या आप मेरी सहायता कर सकती हैं?' "

"मैंने पूछा, 'क्या तुम उससे शादी नहीं कर सकतीं? शादी कर लो।' "

" 'नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकती। वह निकम्मा है। फिर मुझे अभी शादी नहीं करनी है। मेरा काम अधूरा है।' "

"किन्तु तुम्हें सम्हलकर चलना चाहिए था।' "

"इसका उसने कोई जवाब नहीं दिया। अन्त में मैंने कहा, मैं ऐसा काम अनुचित समझती हूँ तारा, तुम्हें मैं एक और डाक्टर का

नाम बताये देती हूँ, वह कभी-कभी ऐसा काम करती है। तुम वहीं जाओ।' वह चुपचाप चली गई।"

"मैं समझता हूँ वह जगन्नाथ ही होगा। स्त्री सर्वसाधारण को इस मामले में अपने कान्फिडेन्स में नहीं ले सकती।"

"हो सकता है। यदि ऐसा है तो वह बड़ा पतित है। उसके स्त्री है।"

"पुरुष बड़ा उच्छृङ्खल होता है।"

"तब तो डरना चाहिए", उसने मुस्कराकर कहा।

"पर यह स्वाभाविक है। कोई भी सेक्स के वेग को रोक नहीं सकता।"

"और समाज ?"

"जीवन के आवेग पाप-पुण्य नहीं देखते।"

"हो सकता है", कहकर शेफाली चुप हो गई।

जगन्नाथ बड़े जोश से पार्टी का काम करता रहा। उसने कुछ चन्दा माँगकर और कुछ और तरह से रुपया इकट्ठा किया। तारा उन सबकी देख-रेख करती। इन्हीं दिनों बम्बई से एक कार्यकर्त्ता आ गया। उसने दिन में मजदूरों में काम करने और काम चलाने के लिए उनसे ही चन्दा लेने की प्रथा डाली। धीरे-धीरे कुछ रुपया भी जमा होने लगा। तारा और मधुकर दोनों बराबर मजदूरों में काम करने लगे। रात को उन्होंने हरिजनों की बस्ती में एक पाठशाला खोल दी। तारा स्त्रियों को पढ़ाती और मधुकर पुरुषों को, पर बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी थीं जो पढ़ने आतीं। अक्सर बच्चे ही घेर-घारकर लाये जाते, उन्हें ही वह पढ़ाती। मधुकर लोगों को गरीबी का एक-मात्र उपाय साम्यवाद बताता। वह रूस की क्रान्ति और उससे पहले की देश की दशा का

चित्र खींचता और लेनिन और स्टालिन द्वारा रूस की उन्नति की बातें सुनाता। लोग आकर बैठ जाते और चुपचाप सुनते। कभी कोई शराब पिये हुए आकर बैठ जाता और उनकी बातें सुनकर कहता, "सब बकवास है। कभी गरीब भी मालदार हुआ है ?"

उस दिन जब मधुकर रात को अकेला आया तो सुखिया जमादार पूछ बैठा, "भैया, तुम्हारी बहू नहीं आई ?"

"वह बहू नहीं है, सुखिया ! वह तो मेरे साथ काम करती है।"

"बहू नहीं है तो बहन होगी।"

मधुकर ने उत्तर दिया, "वह बहन भी नहीं है।"

"फिर भी अकेली तुम्हारे साथ रात को घूमती है ?"

"हाँ, इसमें क्या हर्ज है ? रूस में तो स्त्रियों को पूरी स्वतन्त्रता है। वे चाहे जिसके साथ बैठें।"

"तो क्या ऐसी ही स्वतन्त्रता तुम दिलाना चाहते हो भैया ?"

जगधर बोला, "यह तो बड़ी मौज है।"

दूसरा, जो पास में बैठा था, बोल पड़ा, "ब्याह नहीं हुआ है न, तभी साँड-सा बना ताकता रहता है दूसरे की औरतों को।"

जगधर बिगड़ पड़ा। उसने आव देखा न ताव झपटकर चेता का गला दबा दिया। बोला, "साले, किसकी औरत को ताकता हूँ ? और ताकता हूँ तो तेरी औरत को तो नहीं ताकता।"

हुल्लड़ मच गया। सभा विसर्जित हो गई। दूसरे दिन जब मधुकर तारा के साथ आया तो दो चौधरियों ने मधुकर से कहा, "हमारे यहाँ तुम्हारे आने की जरूरत नहीं है। अब हम नहीं पढ़ेंगे।"

तारा प्रश्न-भरी दृष्टि से ताकते रहकर पूछ बैठी, "क्यों ?"

"हम ऐसा स्वराज्य नहीं चाहते। हमारी औरतें छिनाल बनने को नहीं हैं।"

दूसरा चौधरी, जो शराब के नशे में धुत था, बोल उठा—"तू इस आदमी के साथ बिन-ब्याहे फिरती है। जा चली जा यहाँ से। खबरदार

जो इधर कदम धरे तो !"

"हम आखिर तुम्हें पढ़ाते ही तो हैं। तुम्हारा कुछ लेते तो नहीं।"

"हमें नहीं पढ़ना; हम ऐसे ही भले हैं।"

इसी समय रूपा की बड़बोली औरत आ गई और कहने लगी, "इतनी बड़ी लुगाई अकेली गैर मरदों के साथ रहे है। क्या हमारे घर भी खराब करने हैं ?"

उस दिन पाठशाला नहीं लगी। मधुकर ने बहुत-कुछ समझाया परन्तु किसी की कुछ भी समझ में नहीं आया। दोनों लौट गए। रास्ते में तारा बोली, "बड़ा मूर्ख देश है !"

मधुकर चुपचाप क्रोध में भरा चला जा रहा था। बोला, "बात ठीक है। यह बात इनकी समझ में आ ही नहीं सकती कि बिना ब्याह के एक लड़की कैसे किसी लड़के के साथ रह सकती है। कल से हम जगन्नाथ और शमशेर को लेकर आएँगे।"

जगन्नाथ ने आकर सब लोगों को धीरे-धीरे समझाया। तारा दफ्तर का काम करने लगी। वह कभी-कभी अकेले मजदूरों की बस्ती में औरतों में काम करती। जो दो-एक लड़कियाँ इधर-उधर से इकट्ठी हो गई थीं, वे कुछ दिन बाद चली गई।

आखिर एक दिन मधुकर बोला, "तारा को ट्रेनिंग लेने बम्बई भेज दिया जाय।" जगन्नाथ ने इसका विरोध किया। वह नहीं चाहता था कि तारा वहाँ से जाय। बड़े कम्यून के कार्यालय से सम्बद्ध होने के कारण आज्ञा मानना आवश्यक था। तारा को जाना पड़ा। वह बम्बई चली गई। कुछ दिन बाद मधुकर को आगरा, कानपुर जाने का आर्डर मिला। आगरे और कानपुर का काम सम्हालने के लिए मधुकर चला गया। शमशेर, जगजीत भी उदास हो गए थे। जगन्नाथ इधर-उधर घूमता रहता।

तीन मास बाद तारा फिर लौट आई। जगन्नाथ बड़ा प्रसन्न हुआ। अब उसका काम में मन लगने लगा। वह बड़े उत्साह से काम करने

लगा। थोड़े ही दिनों में तारा के उत्साह से पार्टी में नई जान आ गई। जगन्नाथ ने चमारों, भंगियों की बस्ती में प्रचार-कार्य प्रारम्भ कर दिया। शमशेर कालेजों के लड़कों में जा बैठता। उन्हें कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम और भावी जीवन के सन्देश सुनाता। कभी जगन्नाथ, कभी जगजीत और कभी शमशेर घूम-घूमकर पार्टी का प्रचार करते। तारा उनके काम की योजना बनाकर देती और वे काम करते। जैसे-ही-जैसे उनका काम बढ़ रहा था वैसे ही सरकार के कान भी खड़े होने लगे थे। पुलिस पीछे लगी रहती। उनके काम पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। बम्बई, कानपुर और अहमदाबाद में हड़तालें कराने का काम पार्टी की तरफ से हुआ। सब लोगों को जहाँ-तहाँ भेजा गया। थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली, परन्तु रुपये के अभाव से पूरी सफलता कहीं नहीं मिली। हड़ताल थोड़े दिन चलकर रह जाती, फिर भी कार्यकर्त्ताओं में उत्साह की कमी न थी। सब लोग अपना काम कर रहे थे। एक दिन अहमदाबाद की मिल में काम करते हुए जगन्नाथ को खबर मिली कि सरकार ने पार्टी को अवैध घोषित कर दिया है। पार्टी के दफ्तरों की तलाशी हुई। पुलिस को जो कुछ मिला वह उठा ले गई। लोग इधर-उधर पकड़े गये। जगन्नाथ कान्हूभाई नाम के एक मजदूर के घर छिपकर रहने लगा। दिन-भर उसके घर के भीतर छिपा रहता। रात को बाहर निकलता। एक रात को घूमते-घूमते साबरमती के किनारे एकान्त में उसे तारा मिली। वह भी पुलिस की नजरों से भागती फिर रही थी।

जगन्नाथ तारा के पास गया और उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला, "मैं तुम्हें ही ढूँढ़ रहा था तारा। दिन में तो निकलना मुश्किल है, रात को ही निकलकर तुम्हें ढूँढ़ता रहा हूँ। बराबर पन्द्रह दिन से साबरमती आता हूँ।"

"मैं पास के गाँव में हूँ। आज इसी आशा से आई कि तुम मिलोगे। अब यहाँ रहना बेकार है। पुलिस ने चुन-चुनकर हमारे लोगों को पकड़ लिया है। अच्छा हो हम लोग वापस लौट चलें।"

"आज ही रात की गाड़ी से ?"

"हाँ।"

"परन्तु अहमदाबाद के स्टेशन से बैठने में खतरा है।"

"हम लोग पैदल चलकर दूसरे स्टेशन से बैठें, पर मैं तो भूखी हूँ।"

"ठहरो, मैं तुम्हारे लिए कुछ खाना ले आता हूँ।" इतना कहकर जगन्नाथ उस अँधेरे में छिप गया। किनारे-किनारे सड़क की बत्तियों से बचता जगन्नाथ एक दुकान से कुछ मिठाई-नमकीन खरीदकर लौटा तो देखा तारा वहाँ नहीं है। दो आदमी टहल रहे हैं। जगन्नाथ एक पेड़ की आड़ में हो गया और उन दोनों की गति देखता रहा। वे कह रहे थे, "हमारी आँखें धोखा नहीं दे सकतीं। वह अभी यहीं थी। शायद हमारी टार्च की रोशनी को देखकर इधर-उधर हो गई है।"

इसके बाद टार्च की रोशनी फिर उन्होंने इधर-उधर फेंकी। जगन्नाथ पास के बँगले के पीछे झाड़ी में छिपकर बैठ गया। वे लोग बहुत देर तक इधर-उधर खोजते रहे। पेड़ों पर उन्होंने लाइट फेंकी, इसके साथ ही पाँच-सात पुलिस के और आदमी भी आ गए। एक बार तो जगन्नाथ के ऊपर भी रोशनी पड़ी किन्तु मैले कपड़ों और पत्तों में ढके रहने के कारण वे उसे देख न पाए। वे फिर इधर-उधर तलाश करने लगे। जगन्नाथ को लगा कि वह अवश्य ही पकड़ा जायेगा; इतनी तेज रोशनी और इन आँखों से उसका बचना मुश्किल है। वह साँस साधकर लेट गया। इधर पूरब की तरफ से कुछ खड़बड़ की आवाज आई तो सब लोग उधर ही घूम गए। वहाँ कुछ भी न था। केवल एक गीदड़ भागकर दूसरी ओर चला गया था। पुलिसवाले बहुत देर तक एक-एक पेड़ और पत्तियों को देखकर चले गए। जगन्नाथ चुपचाप पड़ा रहा। उसने देखा कि दो आदमी अब भी वहाँ घूम रहे हैं। उसने समझ लिया कि तारा इनमें नहीं है। वह शायद पकड़ी भी नहीं गई है। हो सकता है वह रोशनी देखकर पहले ही कहीं छिप गई हो और उसके बाद वे लोग आये हों। परन्तु अब वह कब तक इस तरह पड़ा रहेगा,

यही सोचता रहा। लगभग आध घण्टे के बाद वे दोनों आदमी चुपचाप साबरमती के किनारे-किनारे चले गए। जगन्नाथ पसीने से तर हो रहा था, फिर भी वह वैसे ही पड़ा रहा। वह उस समय तक पड़ा रहा जब तक उन लोगों के पैरों की आहट दूर नहीं हो गई। अब वह उठा, किन्तु इस अँधेरे में, जबकि दूर पर सड़क की बिजली की रोशनी टिमटिमाते तारों की तरह दिखाई पड़ रही थी, वह तारा को कहाँ खोज पाता। अँधेरा बढ़ रहा था। आकाश में बादल छा रहे थे। गरमी से पसीना-पसीना होकर जगन्नाथ उठा और किनारे पर गया। उसके हाथ में तारा के लिए खाना था। वह उसने रख दिया और प्यास बुझाने के लिए पानी पीने लगा। फिर वह उसी जगह जा बैठा जहाँ वह तारा को छोड़ गया था। उसे विश्वास था कि यदि तारा पकड़ी नहीं गई है तो वह अवश्य आयेगी। वह बैठा ही रहा। एक तरफ ध्यान से देखने पर कुछ हिलता-सा दीख पड़ा। वह उठा और उसी ओर बढ़ा। ऊबड़-खाबड़ जगह तथा अँधेरे में कुछ भी सूझ नहीं पड़ रहा था। वह पास जाकर आँखें फाड़कर देखने लगा तो मालूम हुआ कि गाय थी। इसी अस्त-व्यस्त दशा में जगन्नाथ बहुत देर तक कभी उसी स्थान पर आता और इधर-उधर ताकता। तारा की कहीं छाया भी न थी। जगन्नाथ को विश्वास हो गया कि या तो तारा पकड़ी गई है और या फिर वह गाँव की ओर भाग गई। उसे गाँव का भी पता नहीं था, जहाँ जाकर वह ढूंढ़ता। आखिर हारकर वह उठा और वापिस मुड़ा। निरुद्देश्य जीवन की तरह उसे यह सब लग रहा था, किन्तु न चाहने पर भी उसके पैर साबरमती नदी के पुल की ओर चले। कुछ दूर जाने पर उसे झोंपड़े दिखाई दिए। वह उन्हीं के पास जाकर ठिठक गया। बहुत देर तक खड़ा रहा। उसके हृदय में निराशा-आशा का घोर द्वन्द्व चल रहा था। उसने निश्चय किया कि यदि तारा न मिली तो वह भी वापस अपने घर लौट जायेगा। अहमदाबाद में रहकर उसे कुछ भी नहीं करना है। वह अकेला था। जिस आदमी के सहारे वह उसके घर ठहरा था, वह

कान्हूभाई एकदम आवारा ढंग का व्यक्ति था। हड़ताल के दिनों में उससे जान-पहचान हुई थी। वह सप्ताह-भर मजदूरी कर लेता और दो-चार दिन की छुट्टी मनाता, शराब पीता और बेसुध पड़ा रहता। कभी-कभी उसकी बहन आती और उसे खाना खिलाती। बहन पास ही रहती थी। उसने पिछले दिनों अपने पहले पति को छोड़कर एक और से सम्बन्ध कर लिया था। राधा ने जब जगन्नाथ को पहली बार देखा तो ठिठककर रह गई। भाई ने बताया कि यह बहुत काम का आदमी है—गरीबों का सेवक। इसी ने हड़ताल कराई थी और दिन-रात मजदूरों की सेवा की। जब मिल वालों के आदमियों ने मजदूरों को पीटा उसमें इसे भी चोट आई। दिन-भर यह छिपा पड़ा रहा। शाम को कुछ ठीक होने पर वही उसे दया करके अपने घर ले आया। राधा ने उसे भी बाजरे की रोटियाँ खिलाईं और चली गई। उस दिन से राधा जगन्नाथ के लिए भी खाना ले आती और बोली न समझने पर भी जगन्नाथ के पास बैठती। जगन्नाथ उसकी बातें पूरी तरह नहीं समझ पाता था फिर भी दोनों की बातें होतीं। राधा की उम्र पैंतीस से ऊपर थी—देखने में कुरूप, काली परन्तु टीम-टाम से रहने वाली स्त्री। जगन्नाथ दिन-भर भीतर कोठरी में पड़ा रहता; रात को बाहर निकलता। एक दिन दोपहर के समय राधा भोजन लेकर आई तो उसने जगन्नाथ को ही पाया। भाई कहीं गया था। वह उसी के पास बैठ गई। उसने जगन्नाथ के गले में हाथ डालकर उसका मुँह चूम लिया। वह पहले तो कुछ झिझका। अब राधा एक तरह से जगन्नाथ की पूरी तरह सेवा करने लगी। इधर राधा से वह डरने भी लगा था। वह जब-तब उससे अपना पति बनने को कहती। वह कहती, "यदि जगन्नाथ चाहे तो वह अपने पहले मालिक को छोड़ सकती है।" पर जगन्नाथ को जैसे उसे देख उबकाई आती। फिर भी नियत समय एकान्त पाकर दोनों मिल जाते। उसे एक डर यह भी था कि यदि वह मना करेगा तो यह औरत न जाने पुलिस को खबर ही कर दे तो वह पकड़ा

जायेगा, क्योंकि एकाध बार जगन्नाथ के मना करने पर उसने धमकी दी थी। इधर जगन्नाथ स्वयं भाग जाना चाहता था। यही सब बातें जगन्नाथ उस समय खड़ा-खड़ा सोचता रहा।

रात अपने पूरे यौवन पर थी। वह फिर एक बार तारा को पाने की चेष्टा में पीछे लौटा, तो देखा तारा वहीं बैठी है। उसने बताया कि पुलिस वाले जिस समय टार्च जलाकर दूर से आ रहे थे, उसी समय वह साबरमती में कूद पड़ी और उनके आते-आते वह पार की झाड़ियों में छिप गई। अभी आध घण्टा हुआ लौटी है। हाथ लगाकर जगन्नाथ ने देखा कि उसके कपड़े भीग गए थे। जगन्नाथ ने तारा को खाना खिलाया और दोनों वहाँ से चल दिए। उस समय रात के दो बजे थे। आकाश में चाँद का टुकड़ा उग आया था। फिर भी देखने योग्य पूरा प्रकाश न था। दोनों स्टेशन की लाइन की ओर चल दिए। दोनों लाइन के दोनों ओर मकानों की कतार पार करते चले जा रहे थे।

"अब कितनी रात होगी, मैं तो थक गई हूँ ?"

"अभी काफी रात है; न हो हम लोग कहीं सुस्ता लें।"

"पर मकानों से तो पीछा छूटे ?"

"हाँ, इन्हें तो पार ही करना होगा; जरा और चलो।" इसके साथ ही जगन्नाथ तारा को सहारा देकर चलाने लगा। थोड़ी देर चलने के बाद तारा ठहर गई। जगन्नाथ ने पीछे मुड़कर देखा, "और बस, बहुत दूर नहीं है, हम एकान्त में पहुँचने ही वाले हैं।

"नहीं, अब मैं और आगे नहीं चल सकती।"

"बस थोड़ी दूर और चलो तारा, मकान समाप्त हो गए हैं।" इतना कहकर जगन्नाथ ने तारा का हाथ पकड़ लिया।

तारा फिर कुछ दूर चली। लाइन की पटरी पर बैठकर बोली, "न जाने हम लोग कहाँ हैं ? मैं तो बहुत थक गई हूँ जगन्नाथ !" फिर जगन्नाथ के कहने से तारा और आगे चली। पास ही एक पुल पर दोनों बैठ गए। चाँद अब पूरा निकल आया था। चारों ओर सुनसान ! इधर-

उधर खेत, मैदान और झाड़ियाँ। स्पष्ट कुछ भी नहीं था। अपने अस्पष्ट भाग्य की तरह दोनों बैठ गए। तारा पुल के पत्थरों पर लेट गई।

जगन्नाथ बोला, "नींद तो मुझे भी आ रही है, परन्तु यह जगह बिलकुल असुरक्षित है।"

पुल की चौड़ाई बहुत असाधारण थी—दोनों ओर गिरने का डर। फिर भी तारा लेट गई। जगन्नाथ ने तारा का सिर अपनी गोद में लेना चाहा तो उसने प्रतिरोध करके सिर हटा लिया। जगन्नाथ ने एक बार फिर उसका सिर गोद में रखने की चेष्टा की तो वह चुप रही। जगन्नाथ तारा के सिर पर हाथ फेरने लगा। तारा ने जगन्नाथ की कमर में हाथ डाल दिया। जगन्नाथ का साहस उद्बुद्ध हो उठा। उसने मन्द प्रकाश में मुरझाए हुए तारा के रूप को देखा। उसके यौवन से गदराये शरीर से उभरते हुए सौन्दर्य का स्पर्श पाकर जगन्नाथ ने तारा का मुँह चूम लिया।

"तुम्हें शरम आनी चाहिए, जगन्नाथ!"

"मैं तो तुम्हारा ही हूँ तारा! क्या हम इतने दिनों एक-दूसरे के साथ रहकर एक नहीं हो गए?"

"नहीं, नहीं!" इतना कहकर वह फिर लेट गई।

जगन्नाथ ने फिर तारा का सिर उठाकर गोद में रख लिया। तारा का शरीर शिथिल पड़ गया। जगन्नाथ ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। तारा कुछ भी प्रतिरोध न कर सकी। उस अँधेरी एकान्त रात में जगन्नाथ और तारा उसी पुल के ऊपर लेटे एक-दूसरे के आलिंगन में आबद्ध हो गए और थोड़ी देर के बाद फिर उठकर पास के स्टेशन पर पहुँच गए। तारा को लगा कि जैसे उसका सम्पूर्ण गौरव, आत्म-सम्मान, प्रतिष्ठा, चिर-संचित यौवन उस अँधेरी रात में न जाने कहाँ बह गया। वह उदास हो गई। जगन्नाथ ने उसे बहुत समझाया, सान्त्वना दी।

जगन्नाथ लौटने पर भी हीरादेई से नहीं मिला। तारा के एक-मात्र

भाई ने तारा की बहुत भर्त्सना की। उसे भ्रष्ट दुराचारिणी कहकर निकाल दिया। इस काम में भाई की पत्नी ने सहायता दी। वह लौट आई और फिर शहर से बाहर जमुना जी के पास एक मकान में दोनों रहने लगे। तारा को कुछ-कुछ आभास हुआ कि वह माँ बनने वाली है, इससे उसे और भी दुःख हुआ। यह बात एक दिन उसने जगन्नाथ पर प्रगट की तो वह भी चुप रहकर सोचने लगा।

"अब क्या होगा जगन्नाथ, मेरी तो जिन्दगी खराब हो गई। मैं तो इससे मर जाना बेहतर समझती हूँ।"

जगन्नाथ फिर भी चुप रहा। थोड़ी देर के बाद बोला, "डा० शेफाली तुम्हारी मदद कर सकती है। कहो मैं एक पत्र लिख दूँ।"

तारा फिर भी चुप रही। जगन्नाथ ने एक पत्र शेफाली के नाम देते हुए कहा, "इसे ले जाओ, कृपा करके उसे और कुछ न बताना।" और उठकर चला गया।

वह पत्र बहुत देर तक वहीं पड़ा रहा। तारा क्षोभ और घृणा से भर गई। उसे लगा कि जैसे उसका जीवन व्यर्थ हो गया। उसकी सारी आशाओं पर पानी पड़ गया। उसका सम्पूर्ण उत्साह ठण्डा पड़ गया। स्त्री के लिए इससे अधिक दुःख की बात क्या हो सकती है कि समाज से उसे छिपना पड़े, उसके सामने उसे हीन होकर रहना पड़े। रह-रहकर उसमें प्रतिक्रिया होती। वह चाहती कि जगन्नाथ का भण्डाफोड़ कर दे। जिस जगह वह रहता है, वहाँ के लोगों को वह बता दे कि इसने मेरा सारा जीवन नष्ट कर दिया, किन्तु फिर सोचती इससे जगन्नाथ का कुछ नहीं बिगड़ेगा; बदनामी तो उसकी ही होगी। वही किसी को मुँह दिखलाने लायक नहीं रहेगी। इधर जगन्नाथ का रुख भी बदल गया। जितने स्नेह से वह तारा को चाहता था वह सब धीरे-धीरे कम हो गया और उसे स्वयं तारा से डर लगने लगा। दोनों एक-दूसरे से बिना बोले रात को पड़े सोया करते। दोनों एक-दूसरे को न चाहते हुए भी विवश इकट्ठे रह रहे थे, जैसे किसी ने उन्हें बाँध दिया हो।

जगन्नाथ रह-रहकर हीरादेई की बात सोचता, अपने बच्चों की बातें याद करता। दिन में तारा रूखा-सूखा बनाकर जगन्नाथ के सामने रख देती; वह खाकर बाहर निकल जाता। न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरता। तारा पड़ी रहती और सोचा करती। उसका सुख म्लान और हृदय जैसे शून्य हो गया हो। दिन-दिन उसे भारी हो रहे थे। निरुपाय उसी समय एक दिन तारा रात के समय शेफाली के पास गई। कुछ दिनों बाद क्लिनिक से लौटने पर उसे ज्ञात हुआ कि जगन्नाथ को पुलिस पकड़ ले गई। तारा अब निश्चिन्त थी। शेफाली की बताई हुई एक लेडी डाक्टर द्वारा उसका गर्भ गिराया जा चुका था। एक दिन उस मकान के लोगों ने देखा कि तारा सामान बाँधकर कहीं जा रही है।

मकान मालकिन ने, जो उस समय अपने बाग में टहल रही थी, पूछा, "क्या कहीं जा रही हो ?"

"हाँ, जाना ही होगा।"

"अपने पति को छुड़ाओ, शायद वे छूट जायँ।"

"वे मेरे पति नहीं हैं।"

जैसे उसके ऊपर वज्र गिर पड़ा। "क्या वह तुम्हारा पति नहीं है ?"

"नहीं, हम दोनों साथ रहते थे।"

"अच्छा, बिलकुल नई बात है ?"

"हाँ, वह मेरा पति नहीं है। अच्छा चलूँ, गाड़ी को देर हो रही है।" इतना कह सामान ताँगे में रखकर तारा चली गई। स्वामिनी बड़ी देर तक तारा की ओर देखती रही और फिर घूमने लगी। जैसे कुछ हुआ ही न हो। फिर भी उसे लगा जैसे जीवन वही नहीं है जो बीत रहा है। वह भी है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

उसके बाद किसी ने भी तारा दिल्ली में नहीं देखी। वह बम्बई चली गई। बम्बई पहुँचकर तारा ने कुछ दिन तो परिस्थिति के अध्ययन में बिताये, फिर अपने पुराने काम में लग गई। उसके जीवन में

एक ही लगन थी—अपने विचारों का प्रचार, अपने उद्देश्य की सिद्धि। वह दिन-भर मजदूरों की बस्ती में काम करती, उन्हें अपने उद्देश्य समझाती। सच्चे मनुष्य बनने का, आर्थिक शोषण से मुक्त होने के लिए हर तरह के त्याग का, कठिनाइयों के सहन का मार्ग बताती। भूखी, प्यासी रहने पर भी बिजली की तरह तेज, फौलाद की तरह मजबूर उस लड़की को देखकर पार्टी के अवसरवादी लड़कों और लड़कियों में भी प्राण संचार-सा होने लगा।

थोड़े दिनों बाद उसे पार्टी के हिन्दी-पत्र में काम करने का भार दिया गया। उसमें भी उसने जैसे जान फूँक दी। उसके लेखों को पढ़-कर विरोधी भी उसकी दलीलों का लोहा मान जाते। सामग्री के चयन और पत्र के 'डिस्प्ले' से भी उसके प्रचार में सहायता मिली और तारा सबकी 'नयन-तारा' हो उठी। उसे कार्य-समिति में ले लिया गया। मधुकर ने देखा तो वह भी उसका भक्त बन गया, उसकी लगन का, काम करने की क्षमता का लोहा मान गया। जिस लड़की को वह कुछ दिन पहले 'फैशनेबल कम्यूनिस्ट' मानता था, उसी ने अवसर मिलने पर जो अपने जौहर दिखाये उससे मधुकर जैसे उग्र लगन के व्यक्ति को भी उसकी कर्तृत्व शक्ति का चमत्कार स्वीकार करना पड़ा। और एक दिन मधुकर और तारा को नये ढंग की ट्रेनिंग के लिए यूरोप की यात्रा के बहाने रूस भेज दिया गया।

"आज तो मैं बहुत थक गई हूँ शुभदा!" इसके साथ ही उसे मूर्छा आ गई।

शुभदा ने देखा तो घबरा गई। उसने हीरादेई को पुकारा, दोनों ने सेवा की। शेफाली का चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था। थोड़ी देर बाद वह ठीक हो गई।

शुभदा की परीक्षा समाप्त होते-होते शेफाली का स्वास्थ्य और भी गिर गया। उसके संयमी जीवन का ढाँचा आत्मिक प्रतिरोध होने पर भी बिखरने-सा लगा। देखते-ही-देखते उसके शरीर की निर्बलता बढ़ने लगी। मुख की कान्ति मलिन हो गई। उठने-बैठने में भी उसे थकावट महसूस होने लगी। शुभदा परीक्षा में व्यस्त होते हुए भी बहन का ध्यान रखने लगी। उसने आग्रह करके मरीजों को देखना बन्द करा दिया और परीक्षा से निवृत्त होने पर एक अच्छे डाक्टर को बुला लाई। उसने कुछ औषधि दी और साथ ही एकदम पहाड़ जाने का परामर्श दिया।

शेफाली ने कहा, "किन्तु मुझे तो एक-मात्र रोगियों को देखने में ही सुख मिलता है। जिस दिन मेरा सेवा-व्रत टूट जायेगा..."

डाक्टर ने कहा, "आप पहले अपना शरीर ठीक कर लीजिए, सेवा पीछे होती रहेगी। कम्प्लीट रेस्ट!"

"नहीं तो क्या...?"

"अभी तो नहीं, पर उसकी सम्भावना दूर नहीं है।"

शेफाली चुप हो रही। डाक्टर चला गया। जाते हुए उसने शुभदा से एकान्त में कहा, "इनका जीवन न केवल लोगों के लिए ही बहुमूल्य है बल्कि हमारे लिए भी इनका स्वस्थ रहना जरूरी है। यदि आवश्यकता हो तो मैं स्वयं मंसूरी की एक कोठी खाली करा सकता हूँ। आप वहीं जाकर रहिए। चौकीदार है। किसी प्रकार की असुविधा न होगी। कल ही इनको लेकर चली जाइए।" डाक्टर चला गया।

शेफाली की बीमारी की खबर लोगों में बिजली की तरह फैल गई। राममोहन, साधना तथा अन्य कई लोग देखने आये। प्राणनाथ भी आया। उसने एक नौकर के साथ स्वयं मंसूरी तक पहुँचा आने का निश्चय किया। साधना ने जब शेफाली को देखा तो वह एकदम रोकर शेफाली से चिपट गई। शेफाली की इच्छा थी कि प्राणनाथ भी साथ चले। उसके साथ उसे दो लाभ थे, एक तो यह कि वह सब विषयों

पर बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से बोल मन बहला सकता था, दूसरे अब उसे हर प्रकार का सहारा प्राणनाथ ही था। प्राणनाथ को भी यह मालूम था कि शेफाली का उसके प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण है। यही बात चलते समय उसने प्रकारान्तर से कही। शुभदा पहले ही जानती थी कि बहन को प्राणनाथ के प्रति मोह है। उसने प्राणनाथ को बुला भेजा और उसके आते ही बोली—

"प्राणनाथ बाबू, आपके कोर्ट कब से बन्द हो रहे हैं ?"

"अभी तो नहीं, परन्तु जल्दी ही होने वाले हैं। क्या ही अच्छा होता कि मैं डाक्टर शेफाली की सेवार्थ चलता।

"तो चलिए न !"

"क्या तुम्हारा ही यह विचार है ?"

"बहन को कोई आपत्ति न होगी। और हो भी तो मैं उन्हें समझा लूँगी।"

प्राणनाथ का मन खुशी के मारे बल्लियों उछलने लगा। वह संकोच के मारे कह नहीं सका था। और कहता भी क्या ? उसने निश्चय कर लिया। न होगा वह कुछ दिनों की छुट्टी ले लेगा। यही सोचकर उसने कहा, "शुभदा, मैं तैयार हूँ। परन्तु···"

"मैं आपसे कहती हूँ कि बहन को कोई आपत्ति न होगी।"

"अच्छा !"

इसी समय शेफाली ने कमरे में प्रवेश किया। प्राणनाथ को बैठा देखकर बोली, "लो प्राणनाथ बाबू, मैं कल मंसूरी जा रही हूँ। आप भी तो कुछ दुबले दिखाई देते हैं।"

"बहन, मैं इनसे कह रही हूँ कि ये भी हमारे साथ चलें। ठीक रहेगा।"

शेफाली कुछ देर चुप रहकर बोली, "क्या हर्ज है ! चलिए न ! हाँ, यदि काम में कोई रुकावट हो तो···"

"मैं तैयार होता हूँ।"

प्राणनाथ चला गया। अब दो के बजाय तीन की तैयारी हुई। दिन-भर आवश्यक सामान जुटाने में लगा। शेफाली भी प्रसन्न थी।

इसी समय शाम को प्राणनाथ आकर बोला, "मैं नहीं जा सकूँगा।"

"क्यों ?"

"मुझे बनारस एक केस में जाना है। एक क्रान्तिकारी पर सरकार मुकदमा चला रही है। उसे कोई वकील नहीं मिल रहा है। मैंने निश्चय किया है मैं बिना पैसा लिये उसकी तरफ से लड़ूँगा।"

"सरकार तुम्हें भी जेल में डाल देगी," शुभदा ने भेद लेने के लिए कहा।

"कोई परवाह नहीं।"

"मेरा विचार है मंसूरी जाने की अपेक्षा यह बड़ा काम है।"

"अरे, तो और कोई वकील यह काम कर लेगा," शुभदा फिर बोली, "चलिए न।"

प्राणनाथ ने दृढ़ता से कहा, "नहीं शुभदा, मैं उसके बाद आऊँगा; मेरा कर्तव्य मुझे बुला रहा है।"

"कर्तव्य ? वकील का भी कोई कर्तव्य होता है ?" शुभदा ने फिर व्यंग्य किया।

"यही कर्तव्य है शुभदा, अन्याय की चक्की में पिसते लोगों को बचाना। मैं नहीं जा सकता।"

शेफाली ने सुना तो प्रसन्न हुई। उसे आज पहली बार प्राणनाथ का यह रूप दिखाई पड़ा। उसने शुभदा से कहा, "प्राणनाथ सचमुच महान् है। वह मनुष्य ही क्या जो अपनी शक्ति-भर किसी की सहायता न कर सके ?"

शेफाली को यथासमय मंसूरी पहुँचाया गया। उसके रहने के लिये सेवॉय होटल के पास एक बँगले में व्यवस्था की गई। साधना भी साथ ही रही। डाक्टर ने अपने एक डाक्टर मित्र को भी सूचना दे दी कि वह शेफाली को प्रतिदिन एक बार देख लिया करे। डाक्टर चौधरी के पास

जब यह समाचार पहुँचा तो वह शेफाली के पहुँचते ही उसी दिन उसे देख गया। डाक्टर ने सब प्रकार की व्यवस्था कर दी। शेफाली यथा-नियम शुभदा और साधना के साथ प्रातः सायंकाल घूमने जाती। बाकी समय आराम करती, कुछ पढ़ती या आमोद-प्रमोद के लिए कभी शुभदा उसे सिनेमा दिखाने ले जाती।

डाक्टर अविनाशचन्द्र दास चौधरी बंगाली थे। वे अपनी विधवा बहन के साथ मंसूरी में प्रेक्टिस करते थे। धार्मिक प्रवृत्ति के इस डाक्टर की बातचीत से शेफाली बड़ी प्रभावित हुई। वह जितने अच्छे ढंग से अपने पेशे की गहराई तक उतरता था उतना ही वह भारतीय संस्कृति, धर्म पर भी व्याख्यान दे सकता था। उस दिन जब वह दोपहर को छड़ी हिलाता शेफाली के बँगले पर पहुँचा तो वह बाहर धूप में बैठी तिलक का गीता-भाष्य पढ़ रही थी। यह देखते ही बोला—"ओह, तिलक का गीता एकदम अवास्तविक है। यह 'मिसइण्टरप्रेटेशन' देता है।"

"किन्तु यह गीता-भाष्य प्रवृत्तिपरक है न? यह संन्यासी नहीं बनाता, क्रियाशील उत्साही बनाता है डाक्टर, आइए बैठिए।"

डाक्टर ने एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "नहीं नहीं, शेफालीजी, मैं निवृत्ति को ही वास्तविक प्रवृत्ति मानता हूँ। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,' यही वास्तविक निवृत्ति है। निराकार ब्रह्म की उपासना कठिन है, अतएव साधक को सृष्टि में प्राप्त प्रेम-रूप ब्रह्म की उपासना का निर्देश गीता करती है। उसे सदा स्मरण करते हुए सब कार्य कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए। उन सब कर्मों को उसकी उपासना के रूप में समर्पित करते रहना चाहिए। यही प्रवृत्ति है।"

"पर लोकमान्य भी तो यही कहते हैं।"

"नहीं नहीं, वह ऐसा कहाँ कहते हैं। लोकमान्य तो एकदम प्रवृत्ति में ही गीता समाप्त कर देते हैं," डाक्टर ने बात पर अड़ते हुए कहा।

शेफाली ने नम्रता से अपनी बात पेश करते हुए कहा, "क्षमा कीजिए डाक्टर, सारा संसार प्रवृत्तिमूलक है। यदि हम कर्म करना छोड़ दें और

केवल चिन्तन करते रहें तो यह संसार कैसे चले। जिस प्रेममय ब्रह्म की बात आप करते हैं, वह भी तो सृष्टिमय ही है। यदि वहीं क्रिया समाप्त हो जाय तो मनुष्य अथवा दूसरी सृष्टि कहाँ रहे ? आप रोगियों की सेवा करते हैं और उसके द्वारा आपको जो सुख मिलता है वह क्या है, प्रवृत्ति नहीं है ? प्रवृत्ति सृष्टि है, निवृत्ति उसका विनाश या प्रलय। तिलक ने गीता-दर्शन को मनुष्य की निरपेक्ष क्रिया के रूप में स्वीकार करके उस पर जोर दिया है, वह सदा ही अनासक्त कर्म पर जोर देते हैं, पर कर्म की हानि उनके मत में निरा ढोंग है।"

चौधरी शेफाली के तर्क पर कुछ देर रुका और फिर कहने लगा, "आप ठीक कहती हैं। किन्तु उस व्यक्ति के लिए भी क्या गीता का उपदेश नहीं है, जो जीवन से उपरत हो चुका है। जिसे कार्य कुछ भी नहीं रहा, वह तो केवल प्रभु का स्मरण मात्र करना चाहता है; उसी के द्वारा जीवन और आत्मा को जानना चाहता है।"

"वह उसका एक अंग है, उसमें भी प्रवृत्ति ही काम करती है क्या आपने गीता में यह नहीं पढ़ा कि कोई जीव बिना कर्म किए एक क्षण भी नहीं रह सकता ?"

शुभदा भी वहाँ आ बैठी, किन्तु उसका मन किसी तरह भी उन बातों में नहीं लग रहा था। इस कारण वह बात का प्रसंग बदलते हुए बोल उठी—"परन्तु भौतिकवाद में न आत्मा है, न परमात्मा; न आपका अध्यात्म है न परात्म। इसका समाधान क्या है डाक्टर ?"

डा० चौधरी ने कहा, "भौतिकवाद एक दम अनार्य है।"

शेफाली ने बात का प्रसंग सँभालते हुए उत्तर दिया, "मेरे खयाल में भौतिकवाद केवल व्यावहारिक जीवन को तर्क पर कसता है, आत्मा-परमात्मा का विवेचन नहीं करता है। भौतिकवाद का स्पष्ट रूप भूतों एवं भूतों से सम्बन्ध रखने वाले तत्त्वों का विवेचन है। यद्यपि हमारे यहाँ पाँच भूत हैं, किन्तु वैज्ञानिकों ने चौरानवे तत्त्व खोज निकाले हैं। दुनिया की वस्तुएँ इन्हीं तत्त्वों से बनती हैं। फिर भी जब वैज्ञानिक

इन्हीं तत्त्वों का विश्लेषण करता है तब वह आत्मा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता।"

डा० चौधरी ने आगे बढ़कर कहा, "हाँ, यह भी एक तर्क है, किन्तु मैं मानता हूँ भौतिकवाद जीवन की सबसे पहली सीढ़ी है, अन्तिम नहीं।"

शुभदा ने बीच में ही कहा, "भौतिकवाद में आत्मा को न मानते हुए भी उसका काम चलता है। वह शरीर के 'केमिकल कम्बिनेशन' को ही आत्मा मानता है, प्रकृति द्वारा स्वयंभूत, इसलिए ईश्वर की भी उनको जरूरत नहीं है।"

वाद-विवाद काफी देर तक चलता रहा। साधना को छोड़कर उसमें सबने भाग लिया। डा० चौधरी को शेफाली और शुभदा के तर्कों से प्रसन्नता हुई। वह जान गया कि शेफाली केवल डाक्टर ही नहीं उसका ज्ञान गम्भीर और अन्तरंगव्यापी भी है। अन्त में वह बोला, "ठीक तर्क से सत्य और असत्य को पहचाना जाता है। पर तर्क के लिए बुद्धि-विवेक की आवश्यकता है। हमारे परमहंस रामकृष्ण ने भक्ति द्वारा सत्य को जानने का मार्ग बताया है। भक्ति स्वयं एक विज्ञान है। इसी से उन्होंने जीवन में कई चमत्कार देखे और जनता को दिखाए।"

शुभदा ने पूछा, "क्या चमत्कार अपने-आप में सत्य होते हैं, क्या वह एक भ्रान्ति नहीं होते? जादूगर जो एक खेल करके लोगों को मुग्ध कर देता है, क्या वह सत्य है?"

चौधरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह विवेकानन्द के एक उपदेश की चर्चा करता रहा। उसने शेफाली से प्रस्ताव किया कि नीचे राजपुर आश्रम में एक बीतराग साधु ठहरे हैं; उनके दर्शनों को मैं जा रहा हूँ, क्या आप भी चलेंगी?"

डा० चौधरी प्रेक्टिस के लिए प्रायः सुबह ही बैठता था। शेष समय में या तो वह आत्मचिन्तन करता या फिर किसी साधु संन्यासी के पास जा बैठता। वह साधुओं के दर्शनों के लिए ऋषिकेश, देहरादून

भी चला जाता। पिछले दिनों उसने रामकृष्ण मिशन में जाने का निश्चय कर लिया था, किन्तु अपनी बहन के कारण वह उसमें सम्मिलित न हो सका।

शेफाली, शुभदा और साधना तीनों उस दिन साधु के दर्शनों को गईं। संन्यासी एक तेजस्वी युवक थे। वयस होगी लगभग पैंतीस की। भव्य आकृति, गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें, कमर से नीचे एक अँगोछा पहने थे। बातचीत वे अंग्रेजी में ही करते थे। काफी भक्त-मण्डली से घिरे हुए थे। जब वे प्रवचन कर रहे थे तभी डा० चौधरी के साथ ये लोग भी पहुँचे। धीरे-धीरे वे अंग्रेजी में मनुष्य-जीवन के लक्ष्य पर बोल रहे थे। प्रवचन के पश्चात् स्वामी जी उठे और बिना कुछ कहे वन की ओर चल दिये। एक आश्रमवासी ने बताया, 'ये महात्मा कभी घूमते आ जाते हैं। इच्छा होती है तो रात को रह जाते हैं नहीं तो कई-कई दिनों तक नहीं आते। न रात को कुछ ओढ़ते हैं, न बिछाते हैं; ऐसे ही कहीं भी पड़ रहते हैं। हम लोगों ने इन्हें कम्बल दिये, पर यह वहीं छोड़कर चल देते हैं; साथ में कुछ नहीं रखते। एक बार दो दिन तक एक पेड़ के नीचे पड़े भीगते रहे।'

दूसरे ने कहा, "सदा मुस्कराते रहते हैं। वीतराग हैं।"

"और भोजन ?"

"न जाने। कभी खाते तो देखा नहीं; कुछ खा लेते होंगे।"

दूसरे ने कहा, "पत्ते भी खाते हैं।"

डा० चौधरी तथा अन्य लोग आपस में बातें करने लगे। यात्री अंग्रेजों ने उनका फोटो लिया। धीरे-धीरे सब चले गए।

चौधरी ने शेफाली से कहा, "यह निवृत्ति-मार्ग है।"

शुभदा ने पूछ लिया, "इससे क्या लाभ ? ऐसा तो एक पागल भी कर सकता है।"

साधना बोल उठी, "ऐसा न कहो शुभदा, साधु-महात्मा को ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

"चाहे जो कोई भी ये हों, आखिर इनसे समाज को क्या लाभ है ? यह एक प्रश्न है," शुभदा ने टोका।

चौधरी को धक्का-सा लगा। वह कुछ न बोला। देर तक चुपचाप साथ-साथ चलता रहा। वह स्वयं कुछ नहीं समझ पा रहा था कि वह वीतरागिता किस लिए है। फिर भी उसने एक बार कहा, "वीतराग मनुष्यों के यही लक्षण हैं। जीवन्मुक्त हैं यह !"

शुभदा के ऊपर उन महात्मा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। शेफाली के हृदय में अन्तर-मंथन हो रहा था। साधना कुछ और न समझकर भक्ति-विभोर हो उठी और उसने मन ही मन एक बार उन महात्मा को प्रणाम किया।

रास्ते-भर महात्मा के सम्बन्ध में चर्चा होती रही। चारों व्यक्ति अलग-अलग सोच रहे थे। डा० चौधरी उनको पहुँचा हुआ आत्मज्ञानी मानते थे। वह जोर देकर कह रहे थे, "महात्मा जीवन्मुक्त हैं। हमारे यहाँ ऐसे महात्माओं की परम्परा है। जड़ भरत, विदेह, बुद्ध, महावीर, परमहंस रामकृष्ण इसी श्रेणी के महात्मा थे। आत्मलीनता में रहने के कारण बाह्य जीवन से यह मुक्त हैं।"

साधना भी कुछ-कुछ इसी मत की थी। उनकी विवेचना इतनी दूर तक नहीं पहुँची थी। वह केवल उनके रूप से ही उन्हें महात्मा मानती थी।

शेफाली उन्हें महात्मा तो मानती थी, पर उनके इस रूप में उसे पूरा विश्वास नहीं हो रहा था। वह कह रही थी, "यदि इसका चरम लक्ष्य आत्मा का साक्षात्कार है तो उससे समाज का भी कुछ लाभ होना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक अंग है। समाज का हित तो किसी न किसी रूप में उसके द्वारा होना ही चाहिए। इसके अभाव में व्यक्ति का अस्तित्व श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता। हमको तो उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। फिर यह परम तप क्या महत्त्व रखता है ? इसलिए शुभदा की बात भी कुछ अंश तक ठीक हो सकती है कि ये

महात्मा आत्म-विक्षिप्त हैं या योगभ्रष्ट हैं !"

शुभदा एकदम भौतिकवादिनी थी। वह न आत्मा में विश्वास करती थी न व्यक्ति के इस रूप में। वह मानती थी कि यह जीवन का अपलाप है, जिसका रूप इस व्यक्ति में देखने को मिला है। क्या वह कहे कि यह व्यक्ति एकदम 'एबनार्मल' है। और 'एबनार्मेलिटी' का दूसरा नाम पागलपन है।

बहुत-कुछ वाद-विवाद के बाद भी चारों व्यक्ति एकमत नहीं हो सके। शेफाली इसका वैज्ञानिक विश्लेषण चाहती थी। उसने साधु-महात्मा को बड़े ध्यान से देखा। उनकी प्रत्येक चेष्टा को वह ध्यान से देखती रही। उनकी बातों में भी उसे लगा, जैसे उनकी बातों में कोई क्रम नहीं है; कोई नई बात नहीं है। वही रटे-रटाए शब्द हैं, जिन्हें वे बार-बार दुहराते रहे हैं। यही सब सोचकर उसने डाक्टर चौधरी से कहा, "हो सकता है आपकी बात ठीक हो, किन्तु क्या आपके दर्शन में साधु के प्रति एक गहरी श्रद्धा नहीं है? मेरा मानना है कि सत्य की पहचान में श्रद्धा एक भ्रम पैदा करती है।"

डा० चौधरी ने माना कि श्रद्धा के बिना मनुष्य की दृष्टि अपूर्ण है। उनकी इस बात पर शुभदा खिलखिलाकर हँस पड़ी। चौधरी को शुभदा का यह हँसना बुरा लगा, पर वह चुप रहे।

उस दिन कार में आने-जाने पर भी शेफाली थक गई थी। रात-भर नींद नहीं आई। वह उन महात्मा तथा उनके सम्बन्ध में पड़ी सोचती रही। प्रातःकाल ही जब शेफाली का समाचार देने शुभदा डा० चौधरी के घर पहुँची तो डाक्टर बोल उठा—"नींद नहीं आई होगी। ठहरिए मैं चलता हूँ। मैं भी रात को यही सोचता रहा और इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जीवनमुक्त की यही स्थिति होती है। परमहंस भी कभी-कभी इसी प्रकार हो जाते थे। ऐसे लोग भूत-भविष्यत् सभी जानते हैं शुभदा देवी !"

शुभदा ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। चुपचाप चौधरी की बातें

सुनती रही। उनकी बहन पूजा में बैठी थी—शुद्ध बंगाली वेश में। शुभदा को यह सब अच्छा लगा। वह बंगला में बोली, "चौधरी बाबू, विवाह क्यों नहीं कर लेते ?"

चौधरी जोर से ठठाकर हँस पड़ा और बंगला में उत्तर देते हुए बोला, "शुभदा देवी, यह प्रश्न तो तुम अपने से भी कर सकती हो !"

"किन्तु आप तो समर्थ हैं न ?"

"तो अब क्या हमको समर्थ की परिभाषा करनी होगी। तुम तो साक्षात् शक्ति हो। तुम्हीं उत्तर दो।"

इसी समय डाक्टर चौधरी की बहन वहाँ आ गई—हाथ में अर्घ्य-पात्र लेकर। उसने सूर्य को जल चढ़ाया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया इसके पश्चात् पल्ला फैलाकर प्रार्थना के स्वर में कुछ बोलती रही। डा० चौधरी हड़बड़ाते अपना सामान ढूँढ़ते रहे। उन्होंने धोती खोजी तो कोट नहीं मिला। फिर गोलूबन्द के लिए इधर-उधर घूमते रहे। उन्हें लपड़-झपड़ घूमते देखकर बहन ने पूछा, "अरे, कोट क्या ?"

"नहीं, गोलूबन्द बाबा, गोलूबन्द ! न जाने कहाँ रख दिया ! इतने परिश्रम से तो ईश्वर भी मिल जाता।"

"देखो उधर खाट पर रखा होगा। रात को कहाँ उतारा था ?"

"सो ही तो देख रहा हूँ दीदी !"

'शुभदा' नाम सुनकर पीयूषदासी उसकी तरफ अतृप्त नेत्रों से निहारने लगी। "तुम भी बंगाली हो ?"

"हाँ !"

बाहर से नौकर आ गया। उसने डाक्टर का सामान ढूँढ़कर दिया, चाय लाया। दोनों चाय पीकर चल दिए।

शेफाली उस समय तक सो रही थी। दोनों बाग में टहलने लगे। डा० चौधरी बोले—

"तर्क कभी पूर्ण नहीं होता शुभदा, वह केवल बुद्धि का चमत्कार है।"

"किन्तु सभी वस्तुएँ तर्क से जानी जाती हैं। यही सत्य के पहचानने की कसौटी है।"

"किन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में अपूर्ण है।"

"मैं ईश्वर को नहीं मानती, डाक्टर!"

"तो क्या मानती हो? छिः!"

"वह, जो है।"

"यह भी सिद्ध करना होगा कि क्या है और क्या नहीं। जैसे मनुष्य के भीतर आत्मा है वैसे ही वह भी है।"

"मैं आत्मा में विश्वास नहीं करती डाक्टर!"

"जिस वस्तु को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं यदि ऐसी कोई वस्तु है तो आत्मा ही है। मेरा अस्तित्व नहीं है ऐसा कौन स्वीकार करता है? 'अहं नास्मि' क्या ऐसा भी कोई कहता है, शुभदा देवी?"

शुभदा का मन चौधरी की बातों में नहीं लग रहा था। वह तन्मय होकर पर्वत की छवि का निरीक्षण कर रही थी। बीच-बीच में अन्य-मनस्क भाव से वह चौधरी को उत्तर भी देती जाती थी। उसे परम आस्तिक चौधरी को चिढ़ाने में कुछ आनन्द भी मिलता था। अतः वह उसे उत्तेजित करने के लिए बीच-बीच में कुछ बोल देती थी।

जब डा० चौधरी भन्नाकर तर्क पर तर्क करने लगा तो शुभदा उसकी तरफ देखकर बोली, "आप इस प्रकृति-सौन्दर्य को देखिए चौधरी बाबू! क्या यह हमारी आत्मा और उस काल्पनिक ईश्वर से महान् नहीं है। कितना सुन्दर है यह सब-कुछ! जैसे जीवन का रस कण-कण में बरस रहा है। शत-शत निर्मूल आस्थाएँ, भ्रान्त धारणाएँ इस पर न्यौछावर की जा सकती हैं। इस विशाल और असीम आकाश में धरती के चरणों को चूमने वाले इन पर्वत-शिखरों के मस्तक पर कितना गर्व फूल-फूल रहा है।"

"मैं यही कहता हूँ, यह उस कुशल चित्रकार के चित्र हैं," चौधरी बोले।

शुभदा ने कहा, "इस परम विपत्ति ने मुझे नास्तिक बना दिया है, डाक्टर ! मुझे लगता है यह सबसे बड़ा भ्रम है जीवन का। इससे मुक्ति ही परम पुरुषार्थ है।"

इसी समय शेफाली आती दिखाई दी। डाक्टर ने आगे बढ़कर शेफाली का स्वागत किया और बोला, "देखता हूँ रात में आपको नींद नहीं आई।"

"हाँ, न जाने थकावट से ऐसा हुआ है। परन्तु अब ठीक हूँ।"

नौकर से बाहर दो-तीन कुर्सियाँ डलवाकर शेफाली धूप में बैठ गई। डाक्टर ने अच्छी तरह परीक्षा करके देखा और दवा की व्यवस्था के लिए नौकर को दौड़ाया। स्वयं एक और रोगी को देखने की बात कहकर चला गया।

शेफाली धूप में बैठी ही थी कि आकाश में बादल घिर आए, मौसम में घनापन छा गया, सरदी बढ़ने लगी और थोड़ी देर में वर्षा होने लगी। शुभदा ने स्वयं कुर्सियाँ उठाकर भीतर रख दीं। शेफाली को कमरे में ले जाकर काउच पर लिटा दिया। वह कम्बल ओढ़कर अधलेटी ही सोचने लगी। शुभदा ने हीटर लगा दिया और कमरा गरम हो गया।

इन दिनों शेफाली अपेक्षाकृत अधिक सोचने लगी थी। उसे कभी-कभी लगता कि यदि कुछ हो जाता तो क्या होता ? मृत्यु भी हो सकती थी। क्या इस सबसे पहले यह अच्छा न होता कि शुभदा शादी कर ले। इस बसाक-कन्या से कौन शादी करेगा ? परन्तु यह किससे कम है ? कौन बात नहीं है इसमें ? विद्या, बुद्धि, सौन्दर्य, शिष्टता किसमें कम है यह ? शुभदा, लगता है, जैसे मेरी ही आत्मा हो, मेरा ही स्वर हो, मेरा ही प्राण हो। नहीं, यह नहीं हो सकता ! यह चौधरी, क्या यह इसे स्वीकार करेगा ? परन्तु प्रश्न यह है, क्या शुभदा इसे स्वीकार करेगी ! चौधरी कट्टर है। शुभदा एकदम सरिज्जल की तरह स्वच्छ। मेरी शुभदा ! वह पड़ी यही सब सोचती रही।

इधर बीमारी की अवस्था में साधना उसके साथ जब से आई है तब से उसने शेफाली के प्रति एक प्रकार का आत्मदान कर दिया है। उसकी बीमारी में घर का सारा खर्च उसने अपने ऊपर ले लिया है। वह उसकी सेवा भी बड़ी तत्परता से कर रही है। राममोहन ने उसे लिख दिया है कि शेफाली को स्वस्थ करना उसका प्रथम काम होना चाहिए। स्वयं साधना भी शेफाली के प्रति कम अनुरक्त नहीं है। वह उसे अपनी एकमात्र बड़ी बहन मानती है। शेफाली हृदय में सब कुछ जानती हुई भी मौन है। जब कभी उसे अपनी शादी के दिन याद आते तो उसके हृदय में असन्तोष की प्रचण्ड आग सुलग उठती। उसे लगता यह सब उसके भाग्य का दोष है, किन्तु वह उस आग को दबा लेती। उसकी चिनगारी कभी नहीं उभरती थी।

इधर मंसूरी की यात्रा का सारा खर्च करने के प्रश्न पर जब साधना और राममोहन ने विनय और प्रेमपूर्ण भर्त्सना के स्वर में शेफाली को चेतावनी दी तो उसने विरोध किया। शुभदा ने शेफाली का साथ देते हुए कह डाला, "हम लोग अपाहिज नहीं हैं साधना बहन !"

साधना ने उस समय आँखों में आँसू भर लिये और चुप होकर शेफाली की तरफ देखने लगी। शेफाली ने भीतर ही भीतर एक तृप्ति की साँस लेकर साधना को व्यय-भार सँभालने की अनुमति दे दी। शुभदा को आश्चर्य और क्षोभ हुआ, किन्तु वह चुप हो गई। इसके बाद वैसा प्रसंग ही नहीं उठा। साधना को अपने साथ पाकर जैसे शेफाली का हृदय फूल-फूल उठता था। रात के समय साधना और शुभदा दोनों जब उसके सिर और पाँव सहलातीं तो शेफाली को लगता जैसे उसकी बिना गृहस्थी के भी गृहस्थी बस गई है।

यही सब सोचती हुई शेफाली ने एक प्रातःकाल शुभदा से कहा, "डा० चौधरी अच्छा आदमी लगता है शुभदा !"

शुभदा शेफाली का हाथ अपने हाथ में लेकर उसे धीरे-धीरे सहला रही थी। थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "हाँ, बुरा नहीं है।"

शेफाली फिर कुछ देर चुप रहकर बोली, "इसका मतलब है अच्छा नहीं है, या साधारण है। एक बात पूछूँ ?"

शुभदा हाथ सहलाना रोककर उसकी ओर देखने लगी।

"मैं चाहती हूँ तू ब्याह कर ले," शेफाली ने जरा सहमे हुए ढंग से कहा, जैसे वह शुभदा को कोई चोट पहुँचाने जा रही हो या उसके छिपे भाव को व्यक्त कराने की चेष्टा से उसने यह कहा हो।

शुभदा चुप रही। शेफाली ने फिर जरा उसके कन्धे पर हाथ रखा और बोली, "आखिर यह भी एक दिन करना होगा। मैं चाहती हूँ, डाक्टर चौधरी बुरा नहीं है। वैसे भी तुम बंगाली लोग देखने-सुनने में और शिष्टाचार में किसी से पीछे नहीं हो। यदि तू चाहे तो मैं··क्या कहती है ?"

शुभदा ने कुछ भी उत्तर न देकर जैसे सोचना शुरू कर दिया हो। "बंगाली बड़ी भावुक जाति है जीजी, इसी ने इसका नाश भी कर दिया है।"

"कैसे ? यह तू कैसे कह सकती है ? वह तो वीर और सभ्य है पगली !"

"नहीं, ऐसा होता तो वह अंग्रेजों द्वारा प्रचलित देश में अकाल-भूख के ताण्डव पर आत्म-समर्पण न कर देती। मुझे लगता है क्यों उस समय प्रत्येक बंगाली युवक-युवती ने भीख माँगकर चावल के एक-एक दाने के लिए हाथ पसारने की अपेक्षा तत्कालीन पूँजीपतियों और अधिकारियों की हत्या नहीं कर दी ? और क्यों नहीं महाभारत के बाद यादवों की तरह उन्होंने एक-दूसरे का नाश कर दिया ? दुर्भिक्ष, भूख का जैसा भयंकर रूप इस बंगाली जाति ने देखा है और जिस तरह से उसने उसका मुकाबला न करके निःसहाय दीनता दिखाई उससे लगता है हमने बंगाल के सौन्दर्य, उसकी कला, उसकी परम्परा के नीचे कायरता का पोषण कर रखा था। माँ काली के सामने प्रत्यह वीरता-पूर्वक बलिदान की प्रतिज्ञा करने वाली इस जाति ने अपनी पुकार को

मन्दिर के घण्टों तक ही सीमित रखा। हमने जोर से बोलने की अपेक्षा कृतित्व या अवसर का कभी महत्त्व नहीं जाना। अन्यथा क्या हम मरणान्त कष्ट में भी साहस छोड़ते ?···"

वह जोश में आकर और भी बोलने जा रही थी कि शेफाली ने बीच में ही टोककर कहा, "रहने दे, वह इतना बड़ा नाश था कि उसमें एक व्यक्ति के किये कुछ भी नहीं हो सकता था। फिर भी मैं मानती हूँ कि फुटपाथों पर मुर्दों की तरह पड़े जन-समूह को चैतन्य देने वाला कोई भी महान् पुरुष ऐसा न था, जो समय के अनुसार पग बढ़ाता। बंकिम, शरद्, रवीन्द्र का बंगाल दुःख की एक चोट भी न सह सका। पर इसमें तेरा या किसी का क्या दोष है ?"

"दोष तो मेरा ही है जीजी। मेरे बंगाल का दोष है। आज प्रत्येक जीवित बंगाली का दोष है जो उस अपलाप, लांछना, प्रताड़ना, भीरुता को कन्धे पर ढोता हुआ आज भी जी रहा है। किसी भी बंगाली को देखकर मुझे सबसे पहले यही खयाल आता है। डा० चौधरी आत्मा-परमात्मा की बातें करते हैं, पर अपने देश की दुरवस्था पर उनका कभी ध्यान नहीं गया। यही सब सोचकर मैं आज घोर नास्तिक हो गई हूँ। मुझे चौधरी जैसे आदमियों से घृणा है।"

"अरी, आज तो सारा देश ही विपन्न है फिर हम केवल बंगाल की ही बात क्यों सोचें ?"

"हाँ, बंगाल तो इस महान् देश का एक अंग है। मैं भी आज अपने को किसी विशेष अंग से बँधा हुआ नहीं मानती।"

"फिर क्या मैं यह समझ लूँ कि तू···चौधरी से······!"

"नहीं, मैं विवाह नहीं करूँगी।" शुभदा ने जोर देकर कहा, "और चौधरी जैसे व्यक्ति से तो कभी नहीं !"

"फिर क्या करोगी।"

"पढ़ूँगी !"

"ठीक है।" शेफाली चुप हो गई। शुभदा ने नौकर की लाई हुई

दवा दी। साधना भी इस समय तक घूमकर आ गई थी। उस दिन शेफाली तबियत खराब होने के कारण जल्दी न उठ सकी। शुभदा भी नहीं गई थी। आते ही साधना ने दवा की शीशी देखी। थर्मामीटर लगाने जा रही थी कि शेफाली बोली, "डा० चौधरी अभी देखकर गए हैं। शुभदा बुला लाई थी।"

"हाँ, मैं भी उसी तरफ से आ रही हूँ। वे घर पर नहीं मिले। शायद इसीलिए शुभदा मेरे साथ सबेरे घूमने नहीं गई थी।"

"मुझे सबेरे घूमने का कोई खास शौक नहीं है, साधना बहन, मैं तो वैसे ही तुम्हारे साथ चली जाती हूँ।"

"मैं जानती हूँ, पर पहाड़ पर यदि घूमा-फिरा न जाय तो आने का क्या फायदा? लेकिन आज तो तुम्हें चलना ही होगा। कुछ सामान भी खरीदना है। मुझसे तो बाजार से चीजें खरीदने में तुम्हीं होशियार हो।"

शेफाली ने आज्ञा के स्वर में कहा, "तो दोपहर को चलेंगे। मैं भी चलूँगी। अब तबियत ठीक है।"

खाना खाकर दोपहर को तीनों बाजार चली गईं। साधना और शुभदा ने सामान खरीदा। शेफाली डा० चौधरी का घर पास आया जान-कर उनके घर चली गई। उस समय डा० चौधरी सो रहे थे। उनकी बहन बरामदे में बैठी चण्डीदास की रामायण पढ़ रही थी। अधेड़ उम्र की होने पर भी चौधरी की बहन बुरी नहीं थी। काली किनारे की सफेद धोती पहने चश्मा लगाए वह पुस्तक पढ़ रही थी। शेफाली को घर में घुसते देखकर बोली, "डाक्टर इस समय सो रहा है। शाम को आना।"

शेफाली थोड़ी देर के लिए चौंकी फिर बोली, "मेरा नाम डा० शेफाली है। वैसे ही आपसे मिलने चली आई। देखा नहीं था। सोचा मिल लूँ आपसे।"

उसने चश्मे में से आँखों को ऊँचा करके देखा और उन्हें उतारते हुए बोली, "ओह, आप हैं शेफाली! शुभदा की बोंन! आइये बैठिए!"

इतना कहकर वह उठी। कुर्सी खींचकर लाने लगी। शेफाली स्वयं उसके पास चटाई पर बैठ गई।

"ओ रे अविनाश, देख डाक्टर शेफाली !"

चौधरी सोते ही सोते बोला, "दीदी, शेफाली बंगाली नहीं हैं। मैं आया।"

"हमको क्या मालूम बाबा, कौन कौन है ? आप बंगाली नहीं हैं ?"

"मैं दिल्ली रहती हूँ।"

"दिल्ली में हमारें कई बंगाली-परिवार हैं।"

"मैं युक्त-प्रान्त की रहने वाली हूँ।"

"अच्छा अच्छा, ठीक, यह शुभदा ?"

"यह मेरी बहन है।"

"शोगी नई !"

"नहीं, सगी से भी बड़ी।"

चौधरी कुरता-धोती पहने मुँह पर हाथ फेरते आ गया। उसने शेफाली को हाथ जोड़े।

"ठीक है न तबियत ?"

"हाँ !"

"हमारा बड़ा भाग्य है। फिर बंगला में बहन से कहा, "शेफाली बहुत प्रसिद्ध डाक्टर है दिल्ली की।"

पीयूषदासी ने सिर हिलाया और हाथ जोड़े। फिर बोली, "इस डाक्टर चौधरी को समझाइए कि शादी कर ले। यह शादी नई करता। आपका विवाह ··!"

शेफाली चुप रही। इसी समय चौधरी ने नौकर को पुकारा और दो कप चाय बनाने की आज्ञा दी। फिर बोला, "आइए बैठक में बैठा जाय !"

"यहीं दीदी के पास ठीक हूँ। घर में इस प्रकार बैठना अच्छा लगता है।"

डा० चौधरी भी वहीं एक ओर चटाई पर बैठ गया। सरदी उस दिन कुछ अधिक थी। पीयूषदासी अँगीठी उठा लाई। वह शेफाली से प्रभावित हुई। फिर बोली, "हाँ, तो तुम्हारा विवाह नहीं हुआ ?"

डा० चौधरी ने टोकते हुए कहा, "सभ्य समाज में ऐसा प्रश्न नहीं किया जाता दीदी !"

पीयूषदासी ने बात को बदलते हुए कहा, "पर तुमको तो ब्याह करना ही चाहिए। मुझको छुट्टी दो, मैं ऋषिकेश जाऊँ।"

डा० चौधरी ने बहन की बात का जवाब न देकर शेफाली से कहा, "देखता हूँ आपका स्वास्थ्य ठीक हो रहा है।"

"मुझे भी लगता है। सोचती हूँ अगले सप्ताह दिल्ली लौट जाऊँ।"

"नहीं, अभी नहीं, एक मास और। अभी नीचे काफी गरमी है। अब आप खूब खाइए, घूमिए और औषधि लेती रहिए। वे दोनों क्या हुईं ?"

"वे बाजार में सामान खरीदने लगी थीं। मैंने सोचा आपके घर दीदी के दर्शन कर आऊँ।"

पीयूषदासी बोली, "इस डाक्टर को अवकाश नहीं होता। मैं कहीं भी बाहर नहीं जा पाती।"

चौधरी ने कहा, "तुमको पूजा-पाठ से फुरसत ही नहीं है। और जाओ भी कहाँ दीदी ?"

इसी समय किसी ने बाहर से डाक्टर को पुकारा। वह उठकर बाहर गया। पीयूषदासी अवसर पाकर बोली, "अविनाश शुभदा की बहुत प्रशंसा करता। बंगालिन है न वह ?"

"हाँ !"

"आपके पास वह कैसे रहती है ? सुना है बी० ए० पास है।"

"इस साल उसने बी० ए० की परीक्षा दी है। हम दोनों बहुत दिनों से साथ रहती हैं।"

"क्या शुभदा हमारे भाई से विवाह नहीं कर सकती ? यह उसको

चाहता है। उसका बोर्नन करता है।"

"शुभदा स्वतन्त्र है दीदी, मैं क्या कहूँ !"

"नहीं नहीं, हम लोग बिना जाति के विवाह कर लेंगे। बंगालिन होना चाहिए। वह कौन जाति है ? आप प्रयत्न कीजिए !"

शेफाली पीयूषदासी की निर्भीक बात सुनती रही। उसने डाक्टर की आमदनी, उसका चरित्र, अपने कुल आदि के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कह डाला।

शेफाली सब-कुछ सुनती रही। वह जानती थी कि साधारणतया ऐसे परिवार की स्त्रियाँ यथार्थ बात करने में कैसी होती हैं। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं होता कि एकदम अपरिचित व्यक्ति से ऐसी बातें नहीं करनी चाहिएँ। उसने इसका बुरा नहीं माना, बल्कि और स्नेह से बातें करने लगी जैसे वह अपने ही परिवार में बैठी हो, जहाँ स्त्रियों को विवाह के अतिरिक्त और कोई बात नहीं आती।

शेफाली ने उसकी बातें सुनकर कहा, "चेष्टा करूँगी। मैं स्वयं चाहती हूँ कि शुभदा का विवाह हो जाय।"

"हाँ हाँ, अवश्य बात करना। ऐसा वर उसे नहीं मिलेगा। मेरा भाई बड़ा गौ है। पढ़ा-लिखा डाक्टर ! मुझे भय है यदि इसका विवाह नहीं हुआ तो यह साधु हो जायेगा। बन्दीगृह से छूटने के बाद यह ऐसा हो गया है।"

शेफाली चौंकी, "बन्दीगृह ?"

"हाँ हाँ, क्रान्तिकारी होने से इसे बन्दीगृह जाना पड़ा—छः वर्ष का कारावास। इसी बीच में यह धार्मिक हो गया है।"

"क्रान्तिकारी भी थे ?"

पीयूषदासी को लगा जैसे उसने भाई के कारावास की बात कहकर बुरा किया है। अब शुभदा सुनेगी तो इससे विवाह नहीं करेगी। अब क्या हो ? यह तो बहुत अनुचित हुआ। वह बोली, "वह क्रान्तिकारी नहीं था। उसको सरकार ने पकड़ लिया था।"

"तो क्रान्तिकारी होना बुरी बात नहीं है दीदी । यह तो बहुत गौरव की बात है । मुझे नहीं मालूम था कि डा० चौधरी इतने महान् हैं ।"

शेफाली की बात सुनकर उसे सन्तोष हुआ । वह कहने लगी, "इसने किसी पर एक बम चलाया वह मरा नहीं, बच गया। कौन जाने मर भी गया हो, परन्तु मैं तो इतना ही जानती हूँ ।"

शेफाली ने बढ़कर पीयूषदासी के पैरों की धूल ली और बोली, "आप धन्य हैं, जिसका ऐसा भाई है ।"

गद्‌गद् होकर पीयूषदासी कहने लगी, "नहीं नहीं, ऐसा क्या, मैं तो अभागिन हूँ । चौबीस साल की उमर में मेरा सिन्दूर पुँछ गया ।" इतना कहते-कहते उसकी आँखों से दो-चार बूँद आँसू टपक पड़े ।

डा० चौधरी ने बाहर से आते ही नौकर को चाय लाने के लिए आवाज दी और कहा, "हमारी दीदी बिलकुल सीधी-सादी ग्रामीण हैं । इनका बुरा न मानियेगा डाक्टर शेफाली ! आपका नाम बंगाली है । लगता है आप बंगाली हैं शेफाली !"

"यह नाम मेरे पिता का रखा हुआ है । माँ और नाम से पुकारती थीं ।"

"ठीक !"

नौकर चाय लाया । पीयूषदासी झपटकर भीतर से मिठाई और नमकीन ले आई ।

चौधरी ने कहा, "डाक्टर अभी मिठाई-नमकीन नहीं ले सकती दीदी ! लाओ मुझे दो ।" इतना कहकर वह स्वयं खाने लगा। शेफाली ने केवल चाय ली।

डाक्टर ने चाय पीते-पीते कहा, "मैं आजकल योग-वसिष्ठ पढ़ रहा हूँ । बड़ा आनन्द आता है ।" वह बोलता जा रहा था । धर्म और देश दोनों की बातें एक ही रूप में मिश्रित होकर निकल रही थीं । शेफाली अनमने भाव से बैठी रही ।

पीयूषदासी का ध्यान अपनी पुस्तक पर था। वह उड़ते-उड़ते अक्षर पढ़ रही थी। जैसे उस पुस्तक के प्रत्येक अक्षर से अविनाशचन्द्र दास के विवाह का सम्बन्ध हो। उसे लग रहा था यदि शुभदा माने तो उससे भाई का विवाह हो जाय। इधर शेफाली कुछ और ही सोच रही थी। वह इन दोनों भाई-बहनों को मानो पढ़ रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्रान्तिकारी दल में काम करने, इतने दिन जेल में रहने के बाद इस डाक्टर में जो एकदम आध्यात्मिक परिवर्तन हो गया है, क्या वह उन्नति है ? निश्चय ही यह इसका यथार्थ से हटकर संन्यास धर्म की ओर जाना एक प्रकार से पलायन है। क्या इस व्यक्ति की वह सराहना करे ? क्या यह ऐसे ही नहीं है कि युद्धक्षेत्र में शत्रु को हराने की चेष्टा वाले व्यक्ति ने एकदम संन्यास ले लिया है, जबकि युद्ध अभी बाकी है। लड़ने के लिए देश उसे पुकार रहा है।

उसकी बहन के सामने महत्त्व न तो उसके क्रान्तिकारी होने में है और न उसके अध्यात्म में। उसकी दृष्टि में एक साधारण स्त्री की तरह सृष्टि का महत्त्व किसी एक छोकरी को भाई के गले से बाँध देना-भर है। यही शेफाली ने उन दोनों के आकार-प्रकार से पढ़ने की चेष्टा की। इसी समय साधना और शुभदा नौकर के सिर पर सामान लदवाये वहाँ आ गईं।

शेफाली उठने को हुई तो डा० चौधरी ने एक-एक प्याला चाय और पीने का अनुरोध किया। पीयूषदासी ने शुभदा को अपने पास ही बिठाया। साधना एक ओर खिसककर बैठ गई।

साधना ने ब्यौरेवार सामान की फहरिस्त का बखान कर डाला। पीयूषदासी ने न तो साधना के बारे में पूछा न कोई बात की। वह बंगला में शुभदा से बातें करती रही। यथासमय सब लौट आए।

शेफाली ने डाक्टर के क्रान्तिकारी होने तथा छः वर्ष तक कारावास काटने की बात शुभदा को सुनाई। उसने कहा, "कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि यह व्यक्ति कभी क्रान्तिकारी रहा होगा।"

शुभदा के हृदय में उसकी आध्यात्मिकता के प्रति अनास्था थी। वैसे स्वयं डाक्टर चौधरी के प्रति कोई आकर्षण भी नहीं था। एक साधारण डाक्टर के नाते वह उससे मिलती, किन्तु उसके क्रान्तिकारी होने की बात ने उसे एक क्षण के लिए चौधरी के सम्बन्ध में सोचने को बाध्य कर दिया। उसे पुरानी स्मृतियाँ उद्‌भूत हुईं। उसने पिछले दिनों जिन क्रान्तिकारियों के संस्मरण पढ़े थे उनमें इसका भी नाम था।

शुभदा ने बताया, "चौधरी क्रान्तिकारियों के दल में एक साहसी व्यक्ति रहा है।"

"पर यह सब क्या है शुभदा?"

"समझी तो मैं भी नहीं।"

"क्या यह जीवन से भागना नहीं है?" शेफाली ने प्रश्नसूचक ढंग से पूछा। फिर बोली, "हो सकता है इसमें भी कोई रहस्य हो। बहुत देर तक चौधरी का प्रसंग लेकर चर्चा होती रही। शेफाली ने लक्ष्य किया कि शुभदा के हृदय में चौधरी के प्रति वह कटुता नहीं है। अब वह अपेक्षाकृत कुछ नरम भी हो गई है। किन्तु पीयूषदासी के प्रति कोई भी अच्छी भावना वह प्रकट न कर सकी।

दूसरे दिन शेफाली शुभदा के साथ डा० चौधरी को देखने गई तो शुभदा ने एकान्त पाकर उससे पूछा—

"क्रान्तिकारी का अन्त कहाँ होता है डाक्टर?"

डाक्टर ने सशंक होकर पूछा, "तुम्हारा मतलब?"

"मैं वैसे ही पूछ रही हूँ। मैंने चौधरी नाम के एक व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाले संस्मरण पढ़े हैं।"

"उसकी मृत्यु हो गई; वह कुछ न कर सका।"

"तो अब क्या दूर किसी पहाड़ पर आध्यात्मिक जीवन बिता रहा है?"

"वह साधना कर रहा है। जब उसके जीवन की साधना पूरी होगी तभी वह कुछ कर सकेगा।"

"साधना क्या है ?"

"संयम का पालन; आत्मा की खोज !"

"मैं समझती हूँ यह अपने प्रति धोखा है ।"

"हो सकता है," निरीह भाव से डाक्टर ने उत्तर दिया ।

शुभदा छोड़ने वाली नहीं थी । बोली, "डाक्टर, क्या आप समझते हैं कि आप धरती को छोड़कर पाताल की ओर नहीं जा रहे हैं ?" काफी देर तक डा० चौधरी और शुभदा में बातचीत होती रही । शुभदा के हृदय में डा० चौधरी के प्रति एक आस्था थी तो एक क्षोभ भी था । वह इस मामले में एकदम उग्र थी । वह चाहती या मानती थी कि ऐसे व्यक्ति का स्थान या तो जेल है या मृत्यु । इस प्रकार उद्देश्यहीन होकर अध्यात्म में मुँह छिपा लेना उसे किसी तरह सह्य नहीं था । डा० चौधरी बात करते-करते बचने की कोशिश करता तो शुभदा उसे व्यंग्य बाणों से बींध देती । वह झुँझला उठता । अन्त में शुभदा ने कहा, "डाक्टर, क्या तुम्हारे जीवन का यही ध्येय है—आत्मा को खोजते-खोजते मर जाना ? यह तो जीवित मरण है डाक्टर ! जाओ, देश तुम्हें अब भी पुकार रहा है, बूढ़ी माँ की आत्मा अब भी क्षीण आवाज में कराह रही है ।" शुभदा चली आई । डा० चौधरी गुमसुम हो गया ।

घर आकर शुभदा ने देखा कि प्राणनाथ और राममोहन आये हैं ।

प्राणनाथ ने बताया, "एक महीने आगे की तारीख पड़ गई है । सरकार किसी तरह भी उसको 'बेल' पर नहीं छोड़ रही है । मुझे देखकर एक और बनारस के वकील भी तैयार हो गए । हम दोनों ने मिलकर केस की तैयारी की है । छूटना तो मुश्किल है पर…"

"यह बड़े साहस का काम है कि आजकल किसी क्रान्तिकारी की कोई सहायता करे ।"

"साहस तो दिखाने से ही होगा । पर मुझे प्रसन्नता है कि मैं आज अपने पेशे में सफल हूँ । अब तक तो सच को झूठ ही बनाता रहा हूँ ।"

प्राणनाथ के चेहरे पर प्रसन्नता थी। शेफाली ने देखा कि प्राणनाथ में भी वे ही सब गुण हैं जो एक मनुष्य में होने चाहिएँ। उसने उन दोनों का सत्कार किया।

राममोहन जब साधना से मिलकर कमरे से लौटा तो बोला, "हाँ, अब शेफाली का स्वास्थ्य ठीक है।"

"ठीक तो मैं वहाँ भी थी। यह तो आपको लग रहा था कि मैं बीमार हूँ," शेफाली ने हँसकर कहा।

"इस ठीक और उस ठीक में अन्तर है, यह तो आप मानेंगी," प्राणनाथ ने कहा।

"मैं इसी ठीक को ठीक मानता हूँ," राममोहन ने शेफाली के चेहरे पर आँखें जमाये हुए उत्तर दिया। अभी आप कम-से-कम एक मास और यहाँ रहिए। हाँ, मैं यदि आप आज्ञा दें तो साधना को लेकर कल सवेरे की गाड़ी से चला जाऊँ। आपको देख लिया, तसल्ली हुई। प्राण-नाथ यहाँ है ही।"

"पर साधना के बिना क्या हमें वह सुख मिल सकेगा ?" शेफाली ने कहा।

"साधना का जाना जरूरी है। इसकी माँ बीमार है। उनके पास भी इसे जाना है।"

साधना ने माँ की बीमारी का जब से समाचार सुना तभी से वह बेचैन थी। वह आ भी गई। शेफाली ने साधना को अपने पास ही बिठा लिया और उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोली, "इसने माँ की तरह मेरी सेवा की है।"

"क्यों मुझे कुएँ में डाल रही हो जीजी ?" साधना ने तत्क्षण विभोर होकर जवाब दिया।

"जीजी की न मालूम किस रूप में इन्होंने सेवा की। मुझे तो लगा है कि ये मेरी सगी बहन हैं ! बड़ी बहन ! ठसकीली, मटकीली, फबीली, चटकीली और कभी-कभी चपत लगा देने वाली !" शुभदा ने चुटकी

लेते हुए कह डाला।

"चपतीली भी कहिए !" सब लोग हँस पड़े, "शायद 'ईली' का इससे अच्छा प्रयोग और कभी नहीं हुआ है !"

उन दिनों मंसूरी में खासी चहल-पहल थी। युक्तप्रान्त, राजपूताना, बिहार, बंगाल—सभी प्रान्तों के धनी लोग वहाँ आ रहे थे। बाजारों में नये-नये चेहरे विचित्र वेश-भूषा में दिखाई देते। जैसे ही मंसूरी पहाड़ अपने यौवन पर था, वैसे ही यौवन, रूप, रमणीयता, सौन्दर्य का अजस्र प्रवाह भी वहाँ बह रहा था। एक तरफ जहाँ आर्य-समाज, धर्म-समाज, ब्राह्म-समाज आदि धार्मिक संस्थाओं ने मनुष्य जाति को शुद्ध ईश्वरवादी बनाने का बीड़ा उठा लिया था, दूसरी तरफ वहाँ उतनी ही जोर-शोर से होटलों, रेस्तराँओं, नाटक-सिनेमा-घरों, नृत्यशालाओं में मदनोत्सव मनाये जा रहे थे। भीड़ दोनों में काफी होती। पर एक में बूढ़े, श्वेत-केश, गलितदन्त धर्म को विलास के रूप में समझने वाले 'फेनेटिक' लोगों की भरमार थी, तो दूसरे में उमंग, उत्साह, रति-रंग में डूबे जीवन को प्रत्यक्ष भोगने वालों की भीड़ थी। सूर्य दोनों के ऊपर एक-सा चमकता था; वर्षा दोनों प्रकार के लोगों को अपने स्फटिक बिन्दुओं से भिगोती; हवा दोनों को उत्फुल्ल करती; और रात दोनों को अपनी गोद में लिटाती; बिजली की बत्तियाँ दोनों को उत्तेजित करतीं—जैसे पृथ्वी से ऊपर उठकर मनुष्य ने अधर में अपनी विलास-भूमि बना ली हो, जहाँ शराब के झरने झर रहे हैं, सुन्दरियों का स्वर्ग उभरा पड़ रहा है।

शुभदा के लिए यह यात्रा बिलकुल नई थी। उसकी आँखें इतना स्वर्ग-सुख देखकर चौंधिया गईं। साधना की विलासिता में चार चाँद लग गए। शेफाली दोनों को देखती और सोचती—'वास्तविक क्या है ! यह या वह।'

उस दिन राममोहन साधना के साथ सिनेमा चला गया। शेफाली के ही कारण और लोग नहीं गये। वे रात के नौ बजे तक घूमते रहे।

डा० चौधरी को प्राणनाथ बहुत अच्छा लगा। प्राणनाथ को दो-एक मित्र और भी मिल गए। वह सवेरे उनके साथ घूमता रहा। दोपहर को डाक्टर चौधरी आ गया। आते ही बोला, "रात आर्य-समाज में ईश्वर के ऊपर एक सुन्दर व्याख्यान हुआ, आज भी है।"

शुभदा ने कहा, "ईश्वर को सिद्ध करने से पूर्व देश को रोटी सिद्ध करने की जरूरत है, डाक्टर चौधरी ! उसे संकटों से बचाने की आवश्यकता है। सारा संसार आज त्राहि-त्राहि कर रहा है।"

"पर यह कष्ट तो ईश्वर पर श्रद्धा न रखने के कारण ही है शुभदा देवी," डा० चौधरी ने उत्तर देते हुए अपनी बात कही और 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' शास्त्र-वाक्य सुना दिया।

प्राणनाथ ने बीच में होकर कहा, "आज मनुष्य की सन्देहवादी बुद्धि एकदम किसी भी प्राचीन को 'इन टोटो' स्वीकार नहीं कर सकती। शुभदा का कहना ठीक है कि उस अप्रत्यक्ष के ज्ञान की चेष्टा न करके हमें प्रत्यक्ष होनेवाली कठिनाइयों का हल सोचना होगा। ईश्वर पर विश्वास करने या न करने से हमारा पेट तो भरने से रहा, डाक्टर साहब !"

चौधरी ने प्राणनाथ की बात काटते हुए कहना शुरू किया, "आप ठीक कहते हैं कि मनुष्य जाति पीड़ित है। यह पीड़ा उसे किसने दी ? मनुष्य ने स्वयं ही तो उत्पन्न की है। क्यों ? इसलिए कि ठीक मार्ग पर वह नहीं चला। वह उस छात्र की तरह है, जो माता-पिता का कहना न मानकर फेल हो जाता है और फिर रोता है। तो क्या यह उसके माता-पिता का दोष है ?"

शुभदा ने तत्क्षण कहा, "यह आपका दृष्टान्त यहाँ नहीं घटता। सारी बुराई की जड़ हमारी समाज-व्यवस्था है। उसी के दूषित होने पर हमारे दुःख बढ़े हैं। इसमें छात्र की तो कोई बात ही नहीं है। हमारा भौतिकवाद मानता है कि मनुष्य आदिकाल से परीक्षण कर रहा है। निरन्तर होनेवाले पुराने अनुभव के आधार पर ही बहुत से सृष्टि के

सत्यों का आविष्कार हुआ है। हवा की लहरों और समुद्र के जल के प्रवाह की नियति का ज्ञान हजारों वर्षों की नाव की यात्रा के व्यवहार से मनुष्य को मिला है।"

"मैं मानता हूँ, अनुभव ही सत्य की खोज का आधार है, पर अनुभव दो तरह से मिलते हैं—एक बाह्य जगत् से और दूसरे आत्म-साक्षात्कार से। अध्यात्म-अनुभव आत्म-साक्षात्कार का फल है।" डाक्टर चौधरी ने अपनी बात को पुष्ट किया।

शेफाली ने बीच में ही टोककर कहा, "यह भौतिकवाद क्या बला है?"

चौधरी तत्क्षण बोल उठा, "भौतिकवाद, नास्तिकवाद!"

"ठीक है, भौतिकवाद नास्तिकवाद होते हुए भी वह सत्य है।" प्राणनाथ बोला।

"कैसे?"

प्राणनाथ ने कहा, "जड़वाद का पहला सिद्धान्त है कि सब चीजें बदलने वाली हैं, परिवर्तनशील हैं। वस्तुओं का स्थान बदलता रहता है, उनके घटक गुण-धर्म सब बदलते रहते हैं।"

"यह तो हमारा धर्मशास्त्र भी मानता है।"

"भूगर्भ का इतिहास कहता है कि वायुमय, द्रवमय, घनरूप इन तीन अवस्थाओं में से पृथ्वी गुजरी है। पहले वनस्पति नहीं थी, मनुष्य नहीं थे, वे सब हुए। जो जानवर पहले जिस रूप में थे वे अपने रूप में आज नहीं हैं। दूसरा सिद्धान्त है कि सत्तावाली वस्तु का सम्पूर्ण नाश नहीं होता, क्योंकि सम्पूर्ण अभाव से कोई वस्तु नहीं होती। प्रत्येक वस्तु किसी वस्तु से ही बनती है। जैसे कपड़ा रुई से, घड़ा मिट्टी से।"

सब लोग प्राणनाथ की मार्मिक बातें सुन रहे थे। उसके कहने का ढंग भी काफी आकर्षक था। उसने आगे कहा, "जरा विस्तार से बात करने के लिए क्षमा चाहता हूँ। जैसे बीज, पानी, खाद से वनस्पति बनती है, आक्सिजन और हाइड्रोजन से पानी बनता है और आक्सिजन-हाइड्रो-

जन के अणु विद्युत्-कणों से बनते हैं, विद्युत्-कण 'एनर्जेटिक मैटर' आप हिन्दी में इसे क्या कहेंगे, उससे बनता है; इस निर्माण के लिए गति की आवश्यकता होती है। यह भौतिकवादी गति को सबमें स्वभावसिद्ध मानता है। इस विश्व में प्रेरणा या गति है। वह हर वस्तु के स्वभाव से निर्मित होती है। यन्त्र का एक पहिया घूमा कि दूसरा अपने-आप घूमने लगता है। इस प्रकार समस्त विश्व का चक्र अनादिकाल से घूम रहा है।"

"प्रारम्भ में गति जिसने दी वही तो ईश्वर है," शेफाली ने तर्क किया।

"इस जगह प्रारम्भ की कल्पना नहीं हो सकती। प्रारम्भ का अभिप्राय उस समय से है जब गति नहीं थी। विज्ञान-शास्त्री ऐसा कोई समय नहीं मानते। जब वस्तु थी तो गति अवश्य थी। देव और ईश्वर की कल्पना मनुष्य ने प्रकृति के कार्य-कारण न समझने पर की है।"

"ठीक है। वर्षा का ठीक ज्ञान न होने पर प्रारम्भिक मनुष्य ने वर्षा के देवता की कल्पना की। अन्धड़, तूफान, सरदी, गरमी जो प्रकृति के रूप थे, वे ही देवता बन गए। यहीं से भौतिकवाद से ईश्वरवाद और देववाद की सृष्टि हुई," शुभदा बोली।

"चौथी बात भौतिकवादी मानता है—हर वस्तु में गठन, व्यवस्था, सुसंगति, नियमबद्धता। वह उसका मूलगत स्वभाव है। वह स्वभाव एक वस्तु को दूसरी से पृथक् करता है। यह 'डिज़ाइन' हमारी प्रकृति में निरन्तर वर्तमान है।"

चौधरी ने कहा, "हमारा-आपका झगड़ा इस पर नहीं है कि प्रकृति का यह स्वभाव नहीं है। होगा! इसका पहला प्रवर्तक कौन है, यही प्रश्न है। इसका उत्तर विज्ञान के पास नहीं है।"

प्राणनाथ ने कहा, "विज्ञान के पास तो है। आप न मानें तो दूसरी बात है। इस प्रकार के सृष्टि-क्रम में ईश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

शेफाली ने प्राणनाथ की बात का नम्रता से उत्तर देते हुए कहा, "आपकी बात ठीक हो सकती है, प्राणनाथ बाबू ! मैं स्वयं जानती हूँ कि डाक्टरी में न आत्मा है न उसकी चर्चा। इसी प्रकार सम्पत्ति-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, रसायन-शास्त्र—सब में कहीं भी आत्मा और ईश्वर का जिक्र नहीं है। तो इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि इन शास्त्रों में अध्यात्म की चर्चा नहीं है तो यह विषय ही नहीं है।"

शेफाली के इस तर्क को सुनकर डा० चौधरी उछल पड़ा। बोला, "हियर यू आर, शेफाली देवी !"

प्राणनाथ ने उसी नम्रता से कहा, "इससे तो मेरी बात ही सिद्ध होती है, कि जब विज्ञान में ईश्वर का अस्तित्व नहीं है और वह उसके बिना भी अपना काम चलाता है, प्रकृति की और मानव की सीमा निश्चित करता है और उसके द्वारा निश्चित मानव-मूल्यों का भी ठीक-ठीक साधन उपस्थित करता है, तो हमारे लिए कहीं उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती, और हमारा काम चल जाता है।"

डा० चौधरी ने कहा, " 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' यह गीता-वाक्य ही बताता है वह आत्मा, जिसका भौतिकवादी भौतिक-शास्त्र उल्लेख नहीं कर पाया, नहीं समझ पाया, सब जगह मौजूद है।"

प्राणनाथ डा० चौधरी के इस तर्क पर हँसा और बोला, "मालूम होता है आपने फीजिक्स पढ़ा तो है, गुना नहीं। मित्र, तुम भूल जाते हो, द्रव्य-रचना के बदलने पर उसके नियम बदल जाते हैं। एलोक्ट्रोन्स प्रोटोन्स के आविष्कार से विज्ञान ने मनुष्य की आस्था को बदल दिया है। पदार्थ-विज्ञान जिन नियमों का विवेचन करता है, रसायन-शास्त्र उससे भिन्न नियमों का विवेचन करता है। जीव-सृष्टि के नियम क्या अजीव-सृष्टि से भिन्न हैं ? द्रव्य की रचना बदल जाने पर जब नये गुण-धर्म वाले द्रव्य का निर्माण होता है तब इस नवीन बनने वाली सृष्टि के नियम भी नये हो जाते हैं। वे दोनों जड़-चेतन में एक-सा

कार्य करते हैं। भौतिकवादी उस चेतन को शरीर से भिन्न कोई तत्त्व नहीं मानता। सजीव पिण्ड या मनुष्य उसी प्राकृतिक द्रव्य की एक विशेष अवस्था है।"

शुभदा ने कहा, "मैं भी विश्व की गति-स्थिति के लिए परमात्मा की आवश्यकता नहीं मानती।"

शेफाली ने कहा, "आज मनुष्य की बुद्धि चकरा गई है कि वह क्या माने और क्या न माने। फिर भी काम दोनों का चलता है। जाने दीजिए। यह विषय ऐसे हैं जिन पर विश्वास के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

प्राणनाथ ने उत्तर दिया, "यदि मनुष्य सोचे तो सत्य को प्राप्त कर सकता है। हमारे भीतर सबसे बड़ी कमजोरी हमारी रूढ़िवादिता है।"

डा० चौधरी बहुत देर तक रामकृष्ण परमहंस की महत्ता पर बोलता रहा। अन्त में उसने कहा, "हमें प्रत्यक्ष से अनुभव प्राप्त करके किसी परिणाम पर पहुँचना चाहिए। क्या कारण है कि सारे संसार में सभी प्रकार के लोगों को कष्ट से बचने के लिए धर्म की आवश्यकता मालूम हुई ? यही नहीं, उससे सन्तोष भी हुआ, समाज का कल्याण भी हुआ। इससे स्पष्ट है कि धर्म की आवश्यकता आज भी है और कल भी होगी। धर्म एक बल है, प्रेरणा है, एक विश्वास है, जो मनुष्य को उन्नति की ओर ले जाता रहा है; सामाजिक सुख, व्यक्तिगत सुख दोनों ही देता रहा है। मुझे गीता पढ़कर, योग वासिष्ठ का मनन करके कम सुख, कम सन्तोष नहीं मिलता। फिर मैं कैसे मान लूँ कि भौतिकवादी पद्धति ही श्रेष्ठ है ? मुझे क्रान्तिकारी बनने, शत्रु पर विजय प्राप्त करने और कष्ट सहने की प्रेरणा इस धार्मिक ग्रन्थ गीता से मिली है। और मैंने मौत को हथेली पर रखकर इस मैदान में कूदने का निश्चय किया। यह सब क्या है, क्या यह असत्य है ? यदि यह असत्य है तो देश-प्रेम भी असत्य है। यह समाज, जिसमें हम रहते हैं, वह भी असत्य है।"

डाक्टर चौधरी की अन्तिम बात में उसके हृदय का सत्य-विश्वास और दृढ़ता झलकी। उसे लगा उसने क्रान्तिकारी होने की बात क्यों कह डाली, पर हृदय के एकमात्र विश्वास को प्रकट करते समय वह अनायास इस बात को भी कह गया।

प्राणनाथ रुककर बोला, "तो क्या आप क्रान्तिकारी भी रहे हैं ? मैं क्रान्तिकारियों की हृदय से पूजा करता हूँ। मैं उनकी देश-भक्ति, लगन की प्रशंसा करता हूँ। यह दूसरी बात है कि उनका मार्ग सर्वजन-सहमत न हो।"

शेफाली बोली, "डाक्टर चौधरी साधारण व्यक्ति नहीं हैं। मैं उनके सम्बन्ध में कल ही उनकी बहन के मुख से सुन चुकी हूँ।"

डाक्टर ने बात को टालते हुए कहा, "वह थोड़ा-बहुत कभी किया था, परन्तु मैं तो साधारण व्यक्ति हूँ—तुच्छ, स्वार्थी, यह बात मत भूलिए।"

प्राणनाथ पूछ बैठा; "याद आ रहा है शायद आप वही चौधरी हैं, जिनके कारनामे, बहादुरी की बातें हम लोग पढ़ते-सुनते आ रहे हैं; जो क्रान्तिकारी दल के प्रसिद्ध नेता थे।"

शुभदा आँखें फाड़-फाड़कर दाढ़ी बढ़े, शुष्क, नीरस किन्तु तेजस्वी अविनाशचन्द्र दास के मुख की ओर देखती रही। शेफाली ने अपना अहोभाग्य मानते हुए डाक्टर को प्रणाम किया और बोली, "आपका धर्म-सम्बन्धी कोई भी दृष्टिकोण हो डाक्टर चौधरी, परन्तु आपकी महत्ता और त्याग में कोई सन्देह नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपके दर्शन कर सकी, आपसे परिचय प्राप्त कर सकी।"

सब लोग इस छिपे व्यक्ति को पहचानकर श्रद्धा से अभिभूत हो उठे। जितना ही लोग डाक्टर चौधरी के सम्बन्ध में बातें करते, उतना ही वह विनम्र, विवश होता जा रहा था। अन्त में उसने कहा, "छोड़िए इन बातों को, अब तो मैं वही स्वार्थी पेट भरने वाला डाक्टर हूँ। मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें कहकर मुझे लज्जित न करें।" इतना कहकर

वह प्राणनाथ से बोला, "आपका दृष्टिकोण बिलकुल वैज्ञानिक, तर्क-सम्मत है प्राणनाथ बाबू, किन्तु उसमें श्रद्धा का अभाव है। इसलिए वह मस्तिष्क को अपील करता है, हृदय को नहीं।"

"वैज्ञानिक तो हृदय-जैसी किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता, इसलिए वह नग्न सत्य के उद्घाटन का प्रयत्न करता है; वह सत्य-प्रिय है, मनोहर नहीं।"

"तो क्या आपका ध्येय पूर्ण हो गया, चौधरी बाबू ?" शुभदा ने पूछा। "मेरा विश्वास है यह आपकी नई दौड़ के लिए बीच का समय है।"

डाक्टर चौधरी इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। उत्तर भी नहीं देना चाहता था, बोला, "जाने दीजिए। पूछकर क्या कीजिएगा ?"

"फिर भी मेरा विश्वास है कि जो नदी प्रबल तूफान लेकर किनारे तोड़ने में एक बार असफल रही है वह एकदम ठण्डी नहीं हो जायेगी। जो आग आपने अपने प्राणों की हवा से प्रज्ज्वलित की है वह ऐसे ही नहीं बुझ जायेगी।" शुभदा ने फिर बात पर जोर देते हुए कहा।

"मैंने अपने प्राणों की हवा से आग प्रज्ज्वलित की है," आसमान की ओर ताकते रहकर उसने शुभदा की बात को दुहराया, "मेरे भीतर संघर्ष उठता रहता है। मैं निश्चय नहीं कर पाता हूँ। मैं अपनी आत्मा से इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ, किन्तु वह मिलता नहीं है। इसीलिए उत्तराखण्ड के इस तपोवन में अध्यात्मयोग में प्रवृत्त हुआ हूँ, शुभदा ! वह कोई भी दिन आ सकता है जब मुझे वापस जाना होगा, लौट जाना होगा। लौट भी सकता हूँ। तुमने आज फिर मुझे याद दिलाई है।"

सब लोग उस व्यक्ति की चेष्टाएँ देखते रहे। वह आसमान की ओर ताकता रहा। कभी अन्तस्थ हो जाता। "अच्छा चलूँ।"

"आपका ध्येय अधूरा है, डाक्टर मोशाय !" शुभदा ने यह फिर कह डाला।

"नहीं, नहीं, यह कोई ध्येय नहीं है। यदि मनुष्य और किसी तरह

भी समाज की सेवा कर सके तो वह भी कम नहीं है। तुम ऐसा क्यों कहती हो शुभदा ?"

"जीवन का लक्ष्य परिस्थिति के अनुकूल निर्मित होता है। तपेदिक के रोगी को साधारण बुखार की दवा नहीं दी जा सकती। हो सकता है डाक्टर चौधरी अब किसी और ढंग से काम करना चाहते हों।"

चौधरी उठते-उठते बोला, "ध्येय तो मेरा एक ही है। हो सकता है मार्ग भिन्न हो। विश्वास करता हूँ शुभदा की प्रेरणा मुझे बल देती रहेगी।" इतना कहकर वह बिना नमस्कार किये ध्यानस्थ-सा होकर चला गया। सब लोग चुप हो गए, जैसे वर्षा के बाद शान्ति छा गई हो। सब लोग अपने-अपने ढंग से चौधरी की बात सोचते रहे। चुप्पी तोड़ने का साहस ही जैसे नष्ट हो गया।

अगले तीन-चार दिनों तक डा० चौधरी आता और शेफाली को देख जाता। न वह किसी से बहुत बोलता न हँसता। प्रयत्न करने पर भी वह चुप रहता। शेफाली उसे देखती और दयार्द्र होकर एक बार मन-ही-मन उसे प्रणाम करती। प्राणनाथ मनोवैज्ञानिक ढंग से उसका विश्लेषण करता।

शुभदा भीतर-ही-भीतर डा० चौधरी की भक्त हो गई। वह कभी-कभी उसके साथ बाहर तक निकल जाती और बातें करती रहती। एक बार सब लोगों ने चौधरी को प्रसन्न करने के लिए एक होटल में चाय-पार्टी दी, पर उसका मौन वहाँ भी न टूट सका। वह साधारण बात-चीत में भी जैसे रस नहीं पाता था। अन्त में शेफाली ने एकान्त में ले जाकर चौधरी से कहा, "डा० चौधरी, मुझे बहुत दुःख है कि शुभदा ने आपकी मनःस्थिति को डाँवाडोल कर दिया है। आप उसकी बातों में न आइये, वह बच्चा है।"

चौधरी ने उत्तर दिया, "आप ठीक कहती हैं। पर मुझे लगता है जैसे मेरा जीवन व्यर्थ हो रहा है। कोई मुझे पुकार-पुकारकर कह रहा है, 'काम करो, काम करो या मरो।' "

"नहीं नहीं, आप अपने मन को स्वस्थ करें," शेफाली ने सान्त्वना देते हुए कहा।

दिन बीतने लगे। शेफाली स्वस्थ हो रही थी। थोड़े दिनों बाद सबने देखा कि डा० चौधरी में अब वह चुप्पी नहीं है। वह सबसे हँसता-बोलता, समाज, धर्म पर चर्चा करता। प्राणनाथ, शेफाली और शुभदा से भी उसका व्यवहार बड़ा स्नेहमय हो गया था। प्राणनाथ की विद्वत्ता की धाक वह मानने लगा। प्राणनाथ भी अपने जर्मनी के अनुभव, राजनीतिक दाव-पेंच, हिटलर द्वारा कम्यूनिस्ट पार्टी पर अत्याचार की बातें सुनाता। जब चौधरी ने सुना कि प्राणनाथ तीन वर्ष तक जर्मनी की कम्यूनिस्ट पार्टी में काम करता रहा है और उसी बीच वह पकड़ा जाकर घोर कष्ट सहता रहा और अन्त में ट्रूस पर छोड़ा गया, तब उसे बहुत अच्छा लगा। उसने कहा, "प्रत्येक मनुष्य में अनन्त शक्ति का भण्डार है, उसे पहचानने की क्षमता चाहिए।"

प्राणनाथ ने कहा, "तुम ठीक कहते हो चौधरी, मेरा भी यही विश्वास है। यह मनुष्य का युग है। उसे अपनी समस्याओं को अपने-आप हल करना है। कोई देव, दानव और ईश्वर आकर उसकी सहायता नहीं कर सकते।"

"ठीक है, यह मनुष्य का युग है और उसे ही अपनी कठिनाइयों को सुलझाना है—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः।' "

जब मंसूरी से प्रस्थान करने का समय आया तो निश्चय हुआ कि डाक्टर चौधरी को चार सौ एक रुपया भेंट दिया जाय। सब लोग जाकर रुपया दे भी आए। चौधरी ने बहुत मना किया, बुरा भी माना, परन्तु शेफाली का आग्रह वह किसी तरह भी न टाल सका। उस दिन शाम को सब लोग शुभदा के आग्रह पर सिनेमा देखने चले गए। दूसरे दिन सब लोग मंसूरी के अन्य दर्शनीय स्थान देखने चले गए। रात को वहाँ से लौटे। घर आने पर मालूम हुआ कि डाक्टर चौधरी की बहन दिन में कई बार आ चुकी हैं। उसने यह भी कहा, "डाक्टर चौधरी

का कुछ भी पता नहीं लग रहा है। न जाने कहाँ चले गए !"

शेफाली ने सुना तो सन्न-सी रह गई। शुभदा से बोली, "चलो ज़रा देखें क्या बात है।"

शेफाली काफी थक गई थी, फिर भी उसे तैयार देखकर शुभदा और प्राणनाथ दोनों साथ हो लिए। रास्ते-भर डाक्टर चौधरी की चर्चा होती रही। शेफाली ने कहा, "हो सकता है कि शुभदा की बात उसे लग गई हो और वह फिर मैदान में कूदने के लिए चल पड़ा हो।"

"पर बीच में तो वे ठीक हो गए थे, जीजी !"

प्राणनाथ चुप रहा। वह क्या कहता !

दस बजे के लगभग जब ये लोग पहुँचे तो पीयूषदासी एक चटाई पर कम्बल ओढ़े पड़ी थी। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई थीं। शेफाली के पूछने पर उसने बताया, "इधर कई दिन से वह बहुत चुप-चुप था। किसी रोगी को देखने भी नहीं गया। दिन में दुकान पर भी नहीं। रात को जब-जब मैंने देखा उसके कमरे की बत्ती जलती पाई। सोचा, कुछ बात होगी। जवान आदमी है, मैं कहती भी क्या ? मैं सन्ध्या-समय पूजा में बैठी थी कि वह बाहर चला गया। फिर नहीं मालूम।" इतना कहकर वह रोने लगी।

सब लोग हैरान थे कि आखिर डाक्टर चौधरी चले कहाँ गए। पीयूषदासी ने बताया, "वह बहुत दिनों से रामकृष्ण मिशन में जाकर संन्यासी होने की सोच रहा था। मैंने ही उसे समझाया कि मेरी मृत्यु के बाद वह संन्यास ले। उसे रोकने का मेरा मतलब था कि किसी तरह प्रमथनाथ दास का वंश चले। किन्तु ऐसा भाग्य में नहीं था।" इतना कहकर वह रोने लगी।

प्राणनाथ ने कहा, "मैं कलकत्ता चिट्ठी लिखकर पता लगाऊँगा।"

शेफाली की आँखों में भी आँसू आ गए। उसने पीयूषदासी को सान्त्वना दी। इधर उसने दो दिन से कुछ खाया-पीया नहीं था। शेफाली ने चाहा कि कुछ बना दे, क्योंकि नौकर कहीं इधर-उधर गया था। वैसे

भी पीयूषदासी किसी के हाथ का बना खाना नहीं खाती थी। आखिर शुभदा ने थोड़ा भात बनाकर उसे खिलाया।

एकान्त में आकर शेफाली ने शुभदा से कहा, "शुभदा, तुझे कुछ दिन पीयूषदासी के पास रहना होगा। जब डा० चौधरी लौट आएँगे या उनका कुछ भी पता लग जायेगा तभी तू दिल्ली चली आना।"

शुभदा कुछ देर खड़ी सोचती रही। शेफाली के विछोह का ध्यान आते ही वह विह्वल हो गई। उसके मुँह से कोई उत्तर नहीं निकला, और कोई उपाय भी न था। इस अवस्था में पीयूषदासी को छोड़ना स्वयं शुभदा को भी ठीक नहीं लगता था। बहन शुभदा से इसी बीच में कई बार कह भी चुकी थी। हारकर शुभदा बोली, "जीजी, मैं स्वयं दुखी हूँ किन्तु···" इतना कहते हुए शुभदा ने मुँह फेर लिया। शेफाली ने शुभदा को गले से लगाकर रहने का आदेश दिया और चल दी। उस समय शुभदा को ज्ञात हुआ कि शेफाली और उसका स्नेह एक-दूसरे के लिए कितना गहन, कितना पवित्र, कितना निःस्वार्थ है। स्वयं शुभदा के मन में भी जैसे हूक उठी, किन्तु वह चुप रह गई। उसने पीयूषदासी को समझा-बुझाकर शान्त किया और स्वयं एक खाट बिछाकर पड़ रही।

दूसरे दिन प्राणनाथ ने खरीद-फरोख्त की और शेफाली के साथ शुभदा से आखिरी बार मिलने गये।

शेफाली ने पाँच सौ रुपये शुभदा को देते हुए कहा, "मैं प्रतिमास पचास रुपये इन्हें भेजा करूँगी, जब तक डा० चौधरी का पता नहीं लग जाता।"

शुभदा सब लोगों को मोटर के अड्डे तक छोड़ने गई। शेफाली ने शुभदा से जल्दी लौटने का आग्रह किया और प्राणनाथ ने पढ़ाई जारी रखने और पत्र लिखने का। पर शुभदा कुछ भी न कह सकी। उसे भीतर-ही-भीतर अनुभव हुआ जैसे मंसूरी से उसका सुख चला जा रहा है। शुभदा ने उस समय समझा कि शेफाली के बिना वह ज्ञानहीन क्रिया के समान है।

हीरादेई, शेफाली के मंसूरी जाने के बाद से बराबर घर की देख-भाल करती रही। इसी बीच में एक दिन उसे गिरधर दिखाई दिया। वह उसे देखते ही बोली, "क्यों गिरधर, आजकल अपनी कविता से कुछ नाराज हो क्या ? बहुत दिनों से आये नहीं !"

गिरधर पहले तो हीरादेई का लक्ष्य समझा नहीं; फिर बोला, "वह तो आजकल प्राणनाथ की कविता है मेरी नहीं।"

हीरादेई ने हँसकर पूछा, "फिर तुम्हारी कविता कौन है ?"

"क्यों, तुम भी तो !"

"मेरा सौभाग्य है कि मुझे तुम इस लायक मानते हो !"

"यह उसका सौभाग्य है जिसकी कविता तुम हो," गिरधर ने उसी भाव से उत्तर दिया।

हीरादेई ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें मटकाकर एक मुस्कान फेंकी और बोली, "मैं तो तुम्हारी सदा याद करती रहती हूँ। परीक्षा हो गई ?"

"पढ़ना छोड़ दिया। अब तो कविता ही करता हूँ। देखो, मेरी कविताएँ अब पत्रों में छपने लगी हैं।" गिरधर ने दो-चार मासिक पत्र, जिन्हें वह साथ लिये घूमता रहता था, हीरादेई को दिखाए। कविताएँ तो उसकी समझ में नहीं आईं पर उसका नाम और चित्र देखे। बोली, "बहुत बड़े आदमी हो गए हो। आजकल कहाँ रहते हो ?"

"ऐसे ही, जहाँ जगह मिल जाय। मित्रों के यहाँ पड़ा रहता हूँ।"

हीरादेई को दया आ गई। उसने शाम को भोजन करने के लिए उसे बुलाया। शाम को गिरधर उसकी कोठरी में खाट पर आ बैठा। हीरादेई ने स्वयं कई तरह के भोजन तैयार किये और प्रेम से उसे खाना

खिलाया। घर में उस समय वह अकेली थी। कम्पाउण्डर बाहर दुकान में रहता था। जमादार भी कम्पाउण्डर के पास बाहर सोता था। गिरधर खाने के बाद बोला, "क्या तुम अकेली हो आजकल ?"

हीरादेई ने बताया, "शेफाली देवी स्वास्थ्य सुधारने मंसूरी गई हैं; शुभदा और साधना भी उनके साथ हैं।"

गिरधर निश्चिन्त हुआ। हीरादेई भोजन करके उसी के पास आ बैठी। गिरधर ने एक गीत गाकर सुनाया। वह जानता था कि यह उसकी समझ के बाहर है, फिर भी तृप्ति के बाद वह सुनाने के लिए बेचैन हो रहा था। उसने एक गीत गाया। हीरादेई कुछ न समझती हुई भी उसकी भावमुद्रा, उसके सुन्दर चेहरे और घुँघराले बालों को देखती रही, जैसे वह सभी समझ रही हो। उसकी आँखों में मादकता छा गई। वह बोली, "कितना अच्छा गाते हो तुम गिरधर ! कोई भी तुम पर लट्टू हो सकती है।" इतना कहकर उसने गिरधर के गले में दोनों हाथ डाल दिए। गिरधर के लिए यह सब बिलकुल नया था। वह किताबी प्रेमी था। उसे एक स्त्री के इस प्रकार गले में हाथ डालने पर रोमांच हो आया। हीरादेई ने उसे चिपटाकर उसका मुँह चूम लिया और प्रेमानुभव में चतुर हीरादेई ने मौखिक प्रेमी गिरधर को रस-विभोर कर दिया।

गिरधर अब प्रति सायंकाल वहाँ आ जाता, रात-भर रहता और सबेरे चुपचाप उठकर चला जाता। एक दिन उसने बताया, "नागपुर में वह एक पत्र का सम्पादक होने जा रहा है।"

हीरादेई ने सुना तो बोली, "मुझे भी साथ ले चलो। एक मकान ले लेना, उसी में हम दोनों रहेंगे।"

"लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?"

"क्यों, हम तुम पति-पत्नी होकर रहेंगे।"

"यदि तुम्हें स्वीकार हो। लेकिन डाक्टर क्या कहेंगी ?"

"मुझे किसी की परवाह नहीं है। वे कुछ भी नहीं कह सकतीं।"

"तो चलो। इस बार उत्तर आने दो। पर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।"

"मेरे ये गहने हैं। पचास-साठ रुपये भी हैं। फिर तुम्हें वेतन तो मिलेगा ही।"

"हाँ, सौ रुपये।"

"बहुत हैं। हम तुम दोनों साथ रहेंगे। नया स्वर्ग होगा गिरधर!" यह कहकर हीरादेई ने गिरधर को कसकर आलिंगन में बाँध लिया।

गिरधर की उम्र लगभग २३ वर्ष की थी। एम० ए० से उसने पढ़ना छोड़ा था। उसके परिवार में एक भाई थे, जो किसी सरकारी दफ्तर में नौकर थे। भाई चाहते थे कि बी० ए० पास करने के बाद गिरधर नौकरी कर ले। किन्तु कवि-प्रकृति ने गिरधर को एकदम दायित्वहीन और लापरवाह बना दिया। वह न घर की चिन्ता करता न भाई का अनुरोध ही मानता था। इससे उसकी भाभी भी जो चार बच्चों की माँ थी, उससे ऊब गई थी। भाई भी थोड़ी नौकरी के कारण गिरधर को आगे पढ़ाने में असमर्थ था। परिणाम यह हुआ कि गिरधर की उच्छृ-ङ्खलता बढ़ गई और भाई-भाभी ने उसकी उपेक्षा कर दी। इधर भाई का कानपुर तबादला हो गया। गिरधर दिल्ली में ही रह गया। गिरधर अब और भी आजाद हो गया। वह कविता लिखता, मित्रों को सुनाता और उन्हीं में किसी के घर पड़ा रहता।

जब उसे नागपुर के एक पत्र में स्थान मिला तो वह हीरादेई को साथ लेकर नागपुर चला गया। कुछ दिन तक तो गिरधर को हीरादेई में आकर्षण लगा। खूब हँसते-खेलते, खाते-पीते, साथ-साथ बाहर घूमने निकल जाते और यौवन के भूखे मनुष्यों की तरह एक-दूसरे के प्राणों में समा जाते। जब तक गिरधर बाहर रहता हीरादेई खाना बना रखती, नहाती-धोती और शृंगार करती। फिर दोनों मिलकर नये जीवन के आनन्द में डूब जाते। कुछ महीनों तक यह प्रवाह चलता रहा। तूफान की तरह प्रेम उमड़ा, उभरा और एक दिन आया कि धीरे-धीरे गिरधर

शिथिल पड़ने लगा। अब गिरधर कभी रात गये लौटता, कभी वह इधर-उधर दोस्तों में रम जाता। सम्पादक-विभाग में एक लड़की भी थी। गिरधर अब उसके प्रति आकृष्ट हुआ। वह कभी-कभी गिरधर के साथ उसके घर भी आ जाती। एक दिन कान्ता ने पूछा, "गिरधर, क्या तुम्हारा विवाह इतनी बड़ी स्त्री से हुआ है ?" गिरधर इसका कुछ भी उत्तर न दे सका। "बोलो गिरधर, क्या तुम्हारे देश में बड़ी उम्र की कन्या से छोटे लड़के का विवाह करने की चाल है ?"

हीरादेई ने सुना तो समझाया, "कह दो, ऐसा भी होता है।" पर गिरधर का मन तो कान्ता में रमा था, वह क्या कहता ?

समय बीत रहा था और गिरधर का मन हीरादेई से हटता जा रहा था। हीरादेई ने पहले तो समझाया। फिर एक दिन उसने गिरधर को डाँट लगाते हुए पूछा—

"इतनी देर करके क्यों आते हो ? मैं दिन-भर अकेली पड़ी रहती हूँ।"

"तो मैं क्या करूँ ?" उसने रूखेपन से जवाब दिया।

"तुम्हें मालूम है मुझे चार मास ऊपर हो गए हैं।"

"क्या मतलब ?"

"तुम थोड़े दिनों बाद एक बच्चे के बाप होने वाले हो। मेरा ध्यान रखा करो प्रियतम !" इतना कहकर जैसे ही प्यार से उसने गिरधर के कन्धे पर हाथ रखा वैसे ही उसने झटक दिया।

हीरादेई निष्प्रभ हो गई। बोली, "क्या बात है ? क्या नाराज हो ?"

बिना कुछ कहे-सुने गिरधर करवट बदलकर लेट गया। हीरादेई की आँखें खुलीं। वह भयभीत होकर गिरधर की खुशामद करने लगी। पर वह कठोर होता जा रहा था।

"तुम कोई पत्नी तो हो नहीं, चाहे जब मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ।"

"पर ऐसा करने की नौबत ही क्यों आयेगी ? ब्याही औरत में

और मुझ में फर्क ही क्या है ? क्या मैं उसी तरह तुम्हारी सेवा नहीं करती ?"

गिरधर कहने जा रहा था कि अब तुम में वह सौन्दर्य नहीं, वह आकर्षण नहीं जो एक कवि को प्रिय होता है। पर उसने कहा नहीं। कान्ता की बात सोचने लगा—कितनी सुन्दर है वह ! कितना भोला मुख ! बड़ी-बड़ी नशीली आँखें, जैसे अपनी मस्ती की कहानी कह रही हों ! हर समय होठों पर मुस्कराहट ! दाँत कितने सुन्दर ! चिड़िया की तरह चंचल ! काश वह मेरी होती। पर निश्चय ही वह मुझे चाहती है, मेरी कविता पर मुग्ध है। वह भूल गया कि हीरादेई का कोई अस्तित्व है। वह उसकी आँखों में मोहक स्वप्न बनकर नाचने लगी। इसी अवस्था में बहुत देर तक पड़ा रहा। फिर उसे हीरादेई का ध्यान आया। अरुचि और उपेक्षा से उसका मन तिलमिला उठा। जो हीरादेई उसके यौवन का आधार थी, जिसकी उष्ण, मादक साँसों में उसे प्रेरणा मिलती वही एक नवयौवना के मुकाबिले में व्यर्थ हो गई। काश, यह हीरादेई न होती। मैं कान्ता से कह दूँगा कि यह मेरी कोई नहीं है। कह दूँगा—कान्ता मेरी है···इसी प्रकार की बातें सोचता-सोचता वह सो गया।

इधर हीरादेई को अपनी भूल मालूम हुई। उसने कितनी बड़ी गलती की है इस व्यक्ति के साथ भागकर ! यदि यह उस लड़की से कह दे तो मेरी क्या अवस्था होगी ? मैं कहाँ जाऊँगी, क्या करूँगी, मेरा तो यहाँ कोई नहीं है। यही सब पड़ी-पड़ी हीरादेई सोचती रही। फिर रोने लगी, पर गिरधर का मन नहीं पसीजा। उसने दो-एक बार जागने पर हीरादेई को रोते देखकर भी न कुछ पूछा न उससे बोला ही।

दूसरे दिन सबेरे उठकर बिना चाय पिये वह बाग में घूमने चला गया। वहाँ से कान्ता के घर पहुँचा। कान्ता उस समय बाथ-रूम से नहाकर निकली थी। उसका सौन्दर्य देखकर गिरधर और भी विह्वल हो उठा। कान्ता ने गिरधर को चाय पिलाई और बोली—

"मैं आज रात की गाड़ी से बम्बई जा रही हूँ गिरधर ! एक

सप्ताह तक लौटूँगी ।"

"क्यों ?"

"पिताजी ने बुलाया है ।"

गिरधर चुप हो गया, बोला कुछ भी नहीं ।

"क्यों, आज उदास हो, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही ।"

कान्ता चुपचाप उसकी मुखाकृति देखती रही । बोली—

"बम्बई देखा है तुमने ?"

"नहीं ।"

"बड़ा अच्छा शहर है ।"

"कौनसी गाड़ी से जा रही हो तुम ?"

"रात की गाड़ी से । एक सप्ताह बाद भेंट होगी ।"

वह चुप हो गया । थोड़ी देर बाद वह अनमने भाव से उठकर चल दिया । यथासमय दफ्तर पहुँचा और शाम होते-होते घर जाकर सामान बाँधने लगा ।

हीरादेई ने पूछा, "यह क्या है ?"

"मैं बाहर जा रहा हूँ ।"

"कहाँ ?"

"बम्बई ।"

"क्यों कोई काम है ?"

"हाँ, दफ्तर का काम है । एक सप्ताह तक लौटूँगा ।"

"और मैं किसके सहारे रहूँगी ? मुझे तो यहाँ कोई नहीं जानता । गिरधर, तुम इतने निर्मोही न बनो ।"

"मैं कुछ भी नहीं जानता, चाहो तो वापस जा सकती हो ।"

"कहाँ ? क्या मैं अब कहीं जाने लायक रह गई हूँ ?" उसने आँखों में आँसू भरकर प्रार्थना-भरे स्वर में कहा । पर गिरधर फिर भी न पसीजा और रात होते-होते अपना थोड़ा-सा सामान उठाकर चल दिया ।

हीरादेई ने बहुत मनाया, मिन्नत की, पैरों पड़ी पर सब व्यर्थ; गिरधर चला गया। हीरादेई पछाड़ खाकर आँगन में गिर पड़ी, जैसे उसका सब-कुछ लुट गया हो।

न जाने वह कब तक वैसे ही पड़ी रही। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई। जैसे-तैसे किवाड़ बन्द करके सो रही। दूसरे दिन न उसने कुछ खाया न पिया। वह सोचती थी कि यह क्या हो गया, अब क्या करे, कहाँ जाय, इतने बड़े शहर में कोई जान-पहचान का भी तो नहीं है जिससे जाकर कुछ कहे। एक बार उसके जी में आया कि गिरधर के दफ्तर में जाकर उसका पता लगाए। पर दफ्तर वालों से यदि उसने कह दिया हो कि हीरादेई उसकी पत्नी नहीं है, तो ? तो क्या कान्ता के घर जाय ? पर उसका घर कहाँ है ? क्या वह उसे बताएगी...वह उसे क्यों बताने लगी ? वह भी तो उसकी प्रेयसी है। यदि उससे भी उसने कह दिया हो कि हीरादेई उसकी पत्नी नहीं है तो...रोते-रोते उसने बर्तन माँजे। बुहारी लगाने जाते हुए सोचा—आखिर यह सफाई किस लिए...वह तो न जाने कहाँ चला गया, कब आएगा ? निराहार, असहाय हीरादेई की दशा उस मनुष्य के समान थी जो समुद्र में एक शहतीर के सहारे बहता चला जा रहा हो, जिसे कहीं भी किनारा न दीखता हो, या अथाह अन्धकार में अपना स्थान ढूँढ रहा हो। उसकी आँखों के आगे अन्धकार-ही-अन्धकार था। फिर उसने सोचा—'शायद एक सप्ताह में गिरधर लौट आए, फिर तो कोई बात ही नहीं। मनुष्य है, कभी-कभी बिगड़ ही जाता है। ऐसी कोई बात नहीं। वे भी (जगन्नाथ) तो आये-दिन नाराज हो जाते थे।' जगन्नाथ का स्मरण आते ही उसे वे दिन, उसके बच्चे, वह जीवन जैसे सभी स्पष्ट हो गया। कितना परिवर्तन हो गया उन दिनों से आज तक ! वे भी न जाने कहाँ चले गये ? और आज वे होते तो...यह ध्यान आते ही वह सोचने लगी—'तो क्या वे मुझे जीती छोड़ते। गिरधर को मार देते और मुझे भी जीती न छोड़ते। पर वही कौन अच्छा था ! यदि भला-सा होता

तो मुझे छोड़कर ही क्यों जाता ? फिर मेरी यह दशा ही क्यों होती ? क्यों मैं गिरधर, इस निकम्मे गिरधर के पास आती । यह कवि है । कविता लिखता है, गाता है, कितना अच्छा गाता है ! घुँघराले बाल, सुन्दर मुख, लम्बी नाक, ऊँचा माथा, सिंह की-सी चाल ! कितनी मादकता है इसकी आँखों में ! और वे दिन, जब वह मेरी बाहों में लिपटकर सोया । अपनी गरम-गरम साँसों से मेरा चुम्बन लेता था । कितना सुख था उसमें…! यही सोचते-सोचते उसने आठ दिन काट दिए । नौवाँ दिन हुआ, दसवाँ बीता, पर गिरधर का कोई पता न था । अब क्या हो ? हारकर एक दिन पूछती-पूछती गिरधर के दफ्तर पहुँची । डरते-डरते भीतर घुसी । बाहर चपरासी बैठा था । उसने भीतर पहुँचा दिया । सामने एक सज्जन बैठे थे—चश्मा लगाए, गुम-सुम । कुछ लिख रहे थे । कलम रखकर हीरादेई का मुँह देखने लगे ।

"मैं गिरधर बाबू को पूछने आई हूँ । उन्हें आज दस दिन हो गए ।"

"वह तुम्हारा कौन है ?"

"पति !"

"पति ? उसने तो कहा था कि उसका विवाह नहीं हुआ है । वह तो नौकरी छोड़कर चला गया ।" हीरादेई ने सुना तो खड़े-खड़े गिर पड़ी ।

उन सज्जन ने उसे उठाया । बोले, "बहन, क्या वह सचमुच तुम्हारा पति था ? बड़ा दुष्ट निकला । तुम्हें इस तरह छोड़कर चला गया । इन कवियों का कुछ भी ठीक नहीं है—दायित्वशून्य, मनुष्यता से रहित !"

वह खड़ी-खड़ी शून्य में आँखें फाड़े देखती रही और चुपचाप जब लौटने लगी तो उन्होंने कहा, "ठहरो," इसके साथ ही दस-दस के पाँच नोट दराज में से निकालकर देते हुए बोले, "यही मैं तुम्हारी सेवा कर सकता हूँ ।"

हीरादेई नोट लेकर चल दी । सब ओर सुनसान था । जैसे इस चहल-पहल भरे जन-समूह में एक भी आदमी न हो, जिससे वह कुछ

कह सके, बोल सके और उसके सामने रोकर अपने को निःसत्व करदे।

ताँगे, मोटर, रिक्शा, सभी चल रहे थे, पर जैसे उसके लिए वे निर्जीव हों। बाजार में सभी हँसते-बोलते बातें करते जा रहे थे, पर जैसे उससे बात करने वाला कोई न हो। वह चली जा रही थी। चलती चली जा रही थी— निरुद्देश्य। इतने में किसी ताँगे वाले ने आवाज लगाई, "एक सवारी स्टेशन को, एक सवारी स्टेशन को।" वह बैठ गई और स्टेशन की ओर चल दी—बिखरे हुए बाल, मैली धोती, फटी अँगिया, नंगे पैर, रूखी आँखें, निस्तेज, निर्मम, निराहार, निर्बल। वह ताँगे में बैठी स्टेशन की ओर जा रही थी। वह पीछे की ओर देख रही थी, घोड़ा आगे दौड़ रहा था। अभागिन···

शेफाली के पूर्ण स्वस्थ होते ही राममोहन ने आकर सूचना दी, "कल प्रसूतिगृह के उद्घाटन का निश्चय हुआ है। नगर के प्रसिद्ध समाज-सेवी राजनारायण जी के द्वारा उद्घाटन-समारोह होगा। सब जगह निमन्त्रण-पत्र भेज दिये गए हैं। मेरी ओर से प्राणनाथ ने भाषण लिखा है, पढ़ेगा भी वही। आपको भी उस अवसर पर कुछ बोलना होगा। तैयार हैं न ?"

शेफाली ने उत्तर दिया, "मैं क्या बोलूँगी ?"

"जो आप उस अवसर के लिए उचित समझें।"

इसी समय प्राणनाथ भी आ गया। उसने सारी तैयारी का ब्यौरे-वार ज़िक्र किया, "चीफ़ कमिश्नर भी आ रहे हैं। स्वास्थ्य-विभाग के प्रधान अधिकारी, प्रमुख डाक्टर, वैद्य तथा नगर के सभी सज्जनों ने आने का वायदा कर लिया है। वन्देमातरम् के बाद उद्घाटन, फिर मेरी ओर से संक्षिप्त भाषण, फिर आपकी स्पीच और उसके बाद चीफ़ कमिश्नर बोलेंगे।"

शेफाली ने घबराकर कहा, "क्या मैं इतने आदमियों में बोल सकूँगी ? नहीं, मैं न बोलूँगी राममोहन बाबू !"

राममोहन ने आग्रहपूर्वक कहा, "मेरी प्रार्थना है कि आप इस अवसर पर कुछ-न-कुछ अवश्य बोलें ।"

"तो तुम भी बोलो ।"

शेफाली ने प्रथम बार राममोहन से 'तुम' कहा । न जाने कैसे उसके मुँह से निकल गया । बाहर से उसे लज्जा हुई । राममोहन को यह शब्द एकदम नया लगा । पहले तो वह चौंका, पर अपने हृदय में निश्चित स्नेह-राशि शेफाली के प्रति सञ्चित होने के कारण वह चुप हो गया—कहना चाहिए उसके 'तुम' को सुनकर वह भीग गया ।

उसने उत्तर दिया, "मैं···मैं क्या बोल सकता हूँ ? मैं कभी कालेज में भी नहीं बोला ।"

"मैं भी नहीं बोलूँगी । मैं क्या कोई वक्ता हूँ ?"

निश्चय हुआ कि जो कुछ बोलना हो वह लिख लिया जाय । सूचना देकर दोनों चले गए । शेफाली अपना वक्तव्य लिखने बैठी, पर क्या लिखे, यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था । उसने कई बार शुरू किया और फिर अच्छा न लगने पर काट दिया । फिर लिखा, फिर काट दिया । इस तरह उसने कई कागज फाड़े और फेंके । अन्त में उसने संक्षेप में बिना किसी भूमिका के एक पेज लिखा, जिसमें नारी-जाति की सेवा तथा प्रसूति के सम्बन्ध में अज्ञान का उल्लेख किया और सोचते-सोचते सो गई ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही प्राणनाथ आ गया । शेफाली ने वह कागज उसके सामने रख दिया । वह हिन्दी में था । प्राणनाथ बोला, "यह क्या ? आपको तो अंग्रेजी में बोलना चाहिए । मैंने स्वयं अंग्रेजी में लिखा है ।"

"नहीं, मैं हिन्दी में ही बोलूँगी ।"

"तो मैं क्या करूँ ? मैं हिन्दी में तो लिख नहीं सकता ।"

"तुम भी हिन्दी में लिखो; हम लोग क्या अंग्रेज हैं ? मैं तो

चाहती हूँ विज्ञापन, साइन बोर्ड, कमरों के नाम सब हिन्दी में हों। यह हमारी दासता का चिह्न है जो हम अपनी भाषा को महत्त्व नहीं देते।"

प्राणनाथ बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से अपना भाषण अंग्रेजी में लिखकर लाया था। शेफाली से निरुत्साहित होकर चुप हो गया।

"अब क्या हो?"

"उद्‌घाटन-कर्ता, सभापति सभी तो हिन्दी में बोलेंगे। फिर तुम क्यों अंग्रेजी में बोलकर नक्कू बन रहे हो?" शेफाली ने ज़ोर देकर कहा।

प्राणनाथ ने कहा, "मैं तो हिन्दी ठीक-ठीक पढ़ भी नहीं सकता; फिर जाने दो मैं नहीं बोलूँगा।"

"अरे, तुम कैसे वकील हो जो हिन्दी में नहीं बोल सकते। तुम जो भी अपनी मातृ-भाषा में बोलोगे वही हिन्दी होगी।"

"अच्छा कोशिश करके देखूँगा। न होगा तो पाइंट्स लिख लूँगा।"

नियत समय पर लोग आये। वन्देमातरम् के बाद उद्‌घाटन हुआ। चीफ़ कमिश्नर ने नगर में प्रसूतिगृह की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए शेफाली देवी की समाज-सेवा तथा राममोहन के रुपये के उचित उपयोग की प्रशंसा की और आवश्यकता पड़ने पर सरकारी सहायता का वचन दिया। शेफाली देवी ने अपने शुद्ध, संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण में स्त्रियों के प्रसूति-सम्बन्धी अज्ञान और उनकी उचित सहायता की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। सभापति ने अन्त में उपस्थित समुदाय के सामने व्याख्यान दिया और करतल-ध्वनि के साथ कार्यवाही समाप्त होने लगी। तभी राममोहन ने सभापति को धन्यवाद देते हुए बताया कि 'प्रसूतिगृह की मुख्य अध्यक्ष डाक्टर शेफाली देवी रहेंगी। यह उनकी कृपा है कि उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करके अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया है। देवी जी की नगर-निवासियों के प्रति की गई सेवाएँ,

जो उन्होंने मानवता की भावना से की हैं, हमें विश्वास दिलाती हैं कि उनकी देख-रेख में यह प्रसूतिगृह यथानाम सिद्ध होगा।' इसके बाद नगर-निवासियों की ओर से कुछ लोगों ने राममोहन के दान की सराहना की। सभा समाप्त हुई।

राममोहन ने प्रसूतिगृह के कम्पाउण्ड के एक बँगले में शेफाली के रहने की व्यवस्था की। दो लेडी डाक्टर उसकी सहायता के लिए नियुक्त हुईं। कुछ नर्सें भी रखी गईं। काम प्रारम्भ हो गया।

शेफाली शुभदा के लिए चिन्तित थी। उसने मंसूरी कई पत्र डाले पर कोई फल नहीं निकला। अन्त में हारकर उसने अपने मंसूरी-निवास के कर्मचारी को पत्र लिखा। वहाँ से जवाब आया—"शुभदा पीयूषदासी के साथ मंसूरी छोड़कर चली गई है। मालूम नहीं कहाँ है।"

इससे उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई, किन्तु प्रसूतिगृह में काम धीरे-धीरे बढ़ने लगा। कभी-कभी उसे रात को भी वहाँ रहना पड़ता। नगर-भर में प्रसूतिगृह तथा शेफाली की कार्यतत्परता की प्रशंसा होने लगी। राममोहन सुबह-शाम वहाँ आता और शेफाली को अधिक-से-अधिक सुविधा देने की कोशिश करता। कुछ क्लर्क, नौकर, चपरासी और रख लिये गए। साधना भी जब-तब शेफाली की भोजन-व्यवस्था के लिए वहीं रह जाती। शेफाली चाहती कि प्रसूतिगृह का कोई भी केस खराब न हो, कोई भी रोगी नाराज़ न जाय। वह भरसक रोगियों की सहायता में लगी रहती। इसकी सहायिकाएँ भी निरन्तर काम में लगी रहतीं।

जैसे-जैसे प्रसूतिगृह का कार्य बढ़ रहा था वैसे ही शेफाली की तत्परता, काम करने की कुशलता और व्यस्त रहने पर भी उसमें नम्रता आती जा रही थी। रोगी उसे देखकर सुख का अनुभव करते थे। प्रसव के लिए स्त्रियाँ मन-ही-मन प्रार्थना करतीं कि भगवान् डा० शेफाली की देख-रेख में ही यह काम हो। एक दिन शाम को दूसरी डाक्टर जिसकी ड्यूटी थी, घर के किसी काम से नहीं आई। नर्सों ने शेफाली को खबर

दा। उसने कहा, "यदि डा० यामिनी गुप्त नहीं आती तो उसकी जगह मैं काम करूँगी।"

उनमें से एक ने कहा, "आप तो पूरा दिन ड्यूटी देकर अभी आई हैं।"

"तो क्या हुआ? यह काम भी तो ज़रूरी है, चलो।"

इतना कहकर शेफाली पीछे-पीछे चल दी। रात के एक बजे तक वह काम करती रही। शेफाली का यह नियम था कि वह खाने से पहले शाम को स्नान ज़रूर करती। उस दिन वह न शाम का खाना ही खा सकी और न उसने स्नान ही किया। रात के एक बजे जब वह अस्पताल से लौटी तभी उसने गरम पानी से स्नान किया और थोड़ा-सा खाकर लेट रही। दूसरे दिन फिर सबेरे नित्य नियम से निबटकर थोड़ा दूध पीकर अस्पताल चली गई। सबेरे ही घूमता हुआ प्राणनाथ आ गया। नौकर ने रात की सब बातें उन्हें सुना दीं।

वह बोला, "बाबूजी, बीबी अब फिर बीमार पड़ेंगी। जो आदमी ठीक वक्त पर खाएगा नहीं, सोएगा नहीं, आराम नहीं करेगा, वह जीएगा कैसे?"

"तो क्या रोज़ यही हाल रहता है?" प्राणनाथ ने बरामदे को बेंत से पीटते हुए पूछा।

"जी, शायद ही कोई मनहूस दिन होता होगा। और रात को भी तीन-चार बार उठकर अस्पताल जाती हैं। मैं तो बहुत मना करता हूँ, परन्तु वे हँसकर टाल जाती हैं। कहती हैं, 'मोहन, काम में ही सुख है।' अच्छा सुख है! अभी बीमारी से उठी हैं। देख नहीं रहे, कितनी थकान चेहरे पर उभरती जा रही है!"

प्राणनाथ ने कहा, "मैं पिछले दो-तीन दिनों से उनसे मिलना चाहता हूँ, पर भेंट ही नहीं होती।"

प्राणनाथ उल्टे पाँव लौट गया। जाकर उसने साधना से कहा कि शेफाली जो इस बार बीमार पड़ी तो किसी के किये कुछ न होगा। यह

प्रसूतिगृह तो अच्छा है। आज ही दो लेडी डाक्टर और रखनी होंगी। सुबह-शाम तुम उन्हें घूमने ले जाया करो। इसके साथ ही उसने मोहन की बताई हुई शेफाली की दिनचर्या भी सुनाई।

साधना ने सुना तो कहने लगी, "प्राणनाथ बाबू, तुम्हीं ने उन्हें इस मुसीबत में डाला है। मैं कहे देती हूँ यदि शेफाली जीजी को कुछ हो गया तो मैं जिन्दा न रहूँगी।"

"तो राममोहन से कहकर दो डाक्टर और रख लो।"

"तुम भी तो ट्रस्ट के एक मेम्बर हो। तुम्हीं उनसे कहो। रही सुबह-शाम घुमाने की बात, इसका जिम्मा मैं लेती हूँ।"

प्राणनाथ के कहने से राममोहन ने दो और लेडी डाक्टरों से बात करके उन्हें अस्पताल में रख लिया और शाम को जाकर यह खबर शेफाली को भी दे दी। शेफाली ने सुना तो बोली, "ऐसी क्या ज़रूरत थी ?"

साधना भी साथ थी। उसने कहा, "ज़रूरत हो या न हो। आपको जीजी, रात को वहाँ नहीं जाना है। दिन में दो-तीन घण्टे से ज़्यादा नहीं। हमने अस्पताल आपके प्राण लेने के लिए नहीं खोला है।"

शेफाली केवल मुस्कराकर रह गई। फिर बोली, "देखती हूँ तुझे मेरी सबसे ज़्यादा चिन्ता है।"

"हाँ, जो भी समझो। अब मैं सुबह-शाम तुम्हें घूमने ले जाया करूँगी।"

राममोहन ने दोनों की बातें सुनीं तो भीतर-ही-भीतर बहुत प्रसन्न हुआ। इसके साथ ही आग्रह करके साधना शेफाली को मोटर में बैठा-कर चल दी।

रास्ते में शेफाली बोली, "देखती हूँ, तू शुभदा का स्थान ले रही है!"

साधना ने शेफाली के गले से चिपटकर कहा, "काश ऐसा हो सकता ? न जाने तुम्हारे स्वभाव में कैसा जादू है कि मैं तो तुम्हें पाकर सब भूल गई हूँ। वे भी, और वे ही क्या जो भी एक बार तुम्हारे सम्पर्क

में आ गया, तुम्हारा हो गया।" फिर आगे बोली, "माफ कर दो तो एक बात कहूँ ?"

"क्या ?"

"मैं चाहती हूँ तुम प्राणनाथ से ब्याह कर लो। भला आदमी है। अब उसका काम भी खूब चल रहा है।"

शेफाली एकदम बड़े ज़ोर से हँसी; हँसती रही। साधना भी हँसती रही। शेफाली थोड़ी देर बाद बोली, "सोचूँगी।"

साधना प्राणनाथ के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहती रही।

लौटकर साधना ने अपने सामने शेफाली को खाना खिलाया और चली गई। शेफाली को जब-तब शुभदा की याद आती, किन्तु उसका कुछ भी पता नहीं लग रहा था। उसी समय प्राणनाथ आ गया। शेफाली उस समय शाम का अखबार पढ़ रही थी। देखते ही सँभलकर बैठ गई। उस समय बँगले के मैदान में चाँदनी रात अपने भरपूर यौवन में छिटक रही थी। रजनीगन्धा के फूलों की महक से सारा वातावरण महक रहा था।

सामने की आरामकुर्सी पर बैठते हुए प्राणनाथ बोला, " 'सेम्सन डलायला' नाम की एक बहुत सुन्दर तस्वीर आई है।"

"फिर ?"

"यह रोमांचकारी प्रेमचित्र है शेफाली देवी !"

"प्रेम ? क्या डाक्टर के लिए उसका कोई महत्त्व है ? और आग की परछाईं से तो गरमी भी नहीं मिलती प्राणनाथ बाबू !"

"डाक्टर भी मनुष्य है।"

"पर वह पहले डाक्टर है।"

उस समय वह गहरे कत्थई रंग की बंगलौरी साड़ी पहने थी। बिजली के प्रकाश में उसका मनोहर और साँचे में ढला हुआ गोरा मुख और भी छविमान हो उठा था। शान्ति, सच्चरित्रता और भोलेपन ने उसे और भी कान्तिमान बना दिया था। पतली नाक, बड़ी-बड़ी आँखें,

सुता हुआ मुख, चमकता सफेद ललाट, पतले होंठ, यह सब पहले भी प्राणनाथ ने देखे थे और रात में बिजली के प्रकाश में पहले भी वह शेफाली से मिला था; परन्तु उस समय की छवि ने तो उसे जैसे उद्-भ्रान्त कर दिया। वह भूल गया कि शेफाली सौन्दर्य-प्रतिमा के अलावा और भी कुछ है। जैसे उसका स्वप्न साकार हो उठा। वह बोला, "मनुष्य के बाद ही तो वह डाक्टर है शेफाली देवी ! आपको सुनकर प्रसन्नता होगी कि अब मेरी प्रेक्टिस अच्छी चल रही है। मैंने कई नये पेचीदा केस जीते हैं।"

उधर शेफाली ने भी देखा कि अब प्राणनाथ अपने सौन्दर्य के शिखर पर पहुँच गया है। उसके हृदय की उत्तप्त यौवनोष्मा उसके मुख पर चमक रही है। वह भीतर-ही-भीतर प्रसन्न हुई।

"अतृप्त मनुष्य बाहरी वासना तलाश करते हैं प्राणनाथ बाबू !"

"पर अतृप्ति ही तो प्रेम का नाम है। वासना तृप्त होती है, प्रेम नहीं। मैं चाहता हूँ···"

शेफाली थोड़ी देर के लिए अन्तस्थ हो गई। कुछ देर बाद आँखें खोलकर उसने कहा, "हाँ, क्या कह रहे थे आप ?"

प्राणनाथ का मुँह जैसे किसी ने सी दिया। थोड़ी देर तक वह केवल शेफाली की ओर देखता रहा।

"आइये, बाहर चाँदनी में घूमा जाय।" इतना कहकर शेफाली बाहर चलने लगी। प्राणनाथ मूक और भूताविष्ट मनुष्य की तरह शेफाली के पीछे चलने लगा।

बँगले के बाहर मैदान में चाँदनी बिछी हुई थी। ठण्डी-ठण्डी मीठी हवा हलके ग्रास की तरह फूलों की खुशबू लिये उन दोनों के शरीरों को थपथपा रही थी। शेफाली लॉन के बीच में जाकर खड़ी हो गई और आकाश में उगे पूरे चाँद की ओर देखने लगी। प्राणनाथ उससे कुछ दूरी पर खड़ा था।

"कितना सुन्दर दृश्य है ! हर चीज अपने समय में ही अच्छी

लगती है। फिर भी उस चीज़ के अच्छा लगने के लिए मनुष्य के हृदय में वैसी भावना चाहिए। उसके अभाव में कुछ भी नहीं है। प्रेम की चीज़ देखने के लिए भीतर भी तो वैसा प्रेम होना ज़रूरी है।"

प्राणनाथ ने दोनों हाथ बाँधकर ज़रा आगे बढ़ते हुए उत्तर दिया, "यह तो सबमें होता है। आपमें भी उसका बृहद् अंश है।"

"अर्थात् ?"

"यौवन एक सुरभि है। वह जहाँ तक फैलता है वहाँ तक अपने को सार्थक करता है।"

शेफाली चन्द्रमा की ओर देख रही थी। उसने मोहन को पुकारकर कुर्सियाँ बाहर डाल देने को कहा। मोहन ने कुर्सियाँ बिछा दीं। वह फिर भी मूक होकर चाँदनी का रसास्वादन करती रही। थोड़ी देर बाद उपनिषद् का एक मन्त्र उसने पढ़ा, "न तत्र सूर्यो गच्छति न चन्द्रमाः।" वह अपने-आप धीरे-धीरे बोलती रही।

फिर बोली, "आप जानते हैं प्राणनाथ बाबू, मैं इस बीमारी के बाद से परम आस्तिक हो गई हूँ। मुझे लगता है कि जब मनुष्य व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है तब का सुख कुछ और ही होता है। हाँ, आप क्या कहना चाहते थे ? कहिए न !"

प्राणनाथ ने विश्लेषण किया कि यह नारी विचित्र है। उसने कई स्त्रियाँ देखी थीं, किन्तु ऐसी मनोदशा उसने किसी की भी नहीं पाई थी। उसे विश्वास था कि शेफाली को भी एक दिन वह वश में कर सकेगा, पर यहाँ तो बात ही कुछ दूसरी है। न जाने किस जीवन में विचरण करती रहती है यह नारी ! उसे एक प्रकार की निराशा भी हुई। वह जितना ही शेफाली के पास आता है उतना ही उससे दूर हो जाता है। उसकी विविक्तता उसे उद्विग्न कर देती। अन्त में उसने एक वकील की चाल चली। बोला, "सुना है आप विवाह करने जा रही हैं ?"

शेफाली, जो उस समय प्रकृति के रस में विभोर हो रही थी जाग-सी पड़ी।

"क्या ?" उसने यह शब्द इतने ज़ोर से कहा कि प्राणनाथ चौंक पड़ा।

"मैंने सुना है।"

वह हँसी और प्राणनाथ की ओर देखकर बोली, "तुमने ठीक सुना होगा प्राणनाथ !" इसके साथ ही उसने गहरी साँस ली और चुप हो गई। वह कातर दृष्टि से प्राणनाथ की ओर देखने लगी। जैसे वह विवश हो।

"मालूम होता है आपके भीतर कुछ है।"

"दुख का सागर !"

"क्या मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ ?" वह शेफाली के और भी पास आ गया।

शेफाली ने अपना हाथ प्राणनाथ के हाथ में दे दिया।

प्राणनाथ शेफाली का हाथ धीरे-धीरे सहलाने लगा। शेफाली ने एकदम हाथ छुड़ा लिया और खड़ी हो गई। दृष्टि उसकी फिर भी आकाश की ओर थी। विचार उसके फिर भी हवा में उड़ रहे थे। अस्थिरता, बेचैना उसकी आँखों से व्यक्त हो रही थी। वह धीरे-धीरे चल दी।

"आप जाइए प्राणनाथ बाबू, जाइए। मुझे देर हो रही है।" इतना कहकर वह अपने कमरे की ओर चल दी।

प्राणनाथ ठिठककर खड़ा हो गया। वह उसे देखता रहा। फिर एकदम पास आकर बोला, "मेरे कारण आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

शेफाली ने कातर दृष्टि से उसकी ओर देखा और बाहर चले जाने का इशारा किया। प्राणनाथ धीरे-धीरे चला गया। शेफाली उसकी तरफ देखती रही, उस समय तक देखती रही जब तक वह कम्पाउण्ड से बाहर नहीं निकल गया।

शेफाली आकर अपने आसन पर लेट गई। तकिए से अपना मुँह

छिपा लिया और निस्तब्ध होकर पड़ी रही। इसी समय मोहन ने आकर पूछा, "दरवाजा बन्द कर दूँ बीबीजी ?"

"हाँ, सब दरवाजे बन्द कर दो और सो रहो।"

"आपकी तबियत एकाएक खराब हो गई ?"

"नहीं, मैं ठीक हूँ। तुम जाओ मोहन !"

मोहन कमरे का दरवाजा भिड़ाकर चला गया।

'यह आग न बुझाए बुझती है न दबाए दबती है। न जाने किस घड़ी में मेरा विवाह हुआ था, निष्फल व्यर्थ—बकरे के गले से लटकने वाले थैले की तरह ! क्या मैं उसको तोड़ नहीं सकती जो व्यर्थ एक दिखावे की तरह हुआ है ? तोड़ दूँ और प्राणनाथ से विवाह कर लूँ ? या घुट-घुटकर मरूँ ! पर क्या यह टूट सकता है ?' उसके भीतर से आवाज़ आई—'हाँ, हाँ, हाँ, हाँ। तोड़ो, तोड़ दो, तोड़ दो।' वह भीतर की आवाज़ बढ़ती जा रही था, बढ़ती ही जा रही थी। वह एकदम उठ बैठी। बोली—'तोड़ दूँगी, तोड़ दूँगी। मैं प्राणनाथ से विवाह करूँगी। मुझे कौन रोक सकता है। रोक सकता है कानून ! कानून ? कानून ?' उसने सिर पकड़ लिया और बैठ गई। 'कानून ! कानून नहीं रोक सकता। मैं विवाह करूँगी। यह मेरा भ्रम है। भ्रम, भ्रम,' इसी उधेड़-बुन में वह तकिए का सहारा लेकर लेट गई और सो गई।

उस दिन दोपहर को साधना के साथ वह भोजन कर रही थी कि एक तार मिला; उत्सुकता से खोलकर पढ़ते हुए शेफाली ने बताया, "शुभदा कल सुबह की गाड़ी से आ रही है।"

"दीदी, मुझे लगता है शुभदा चौधरी पर अनुरक्त है," साधना ने कहा।

"मैं चाहती हूँ साधना, ऐसा होता, पर चौधरी कहाँ है ?"

"देख लेना। नहीं तो वह पीयूषदासी के साथ मंसूरी से बाहर नहीं जाती।"

शेफाली ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन स्वयं साधना अपनी

गाड़ी में शुभदा को स्टेशन से ले आई।

शेफाली यत्न करके भी शुभदा से उस समय आकर न मिल सकी। वह एक स्त्री के प्रसव-कार्य में संलग्न थी। शुभदा एकाध बार उसे देखने उधर गई भी, किन्तु वह उससे न मिल सकी। दोपहर के बाद शेफाली आई और शुभदा को देखते ही गले से चिपटाकर रोते-रोते बोली, "तू मुझे इतनी जल्दी भूल गई री ! जानती है मैं तेरे लिए कितनी व्याकुल थी।"

शुभदा ने विह्वल होकर कहा, "जिस दिन मैं तुम्हें भूल जाऊँगी दीदी, उस दिन मैं इस संसार में नहीं रहूँगी।"

इसके बाद उसने आद्यन्त चौधरी के सम्बन्ध की कथा सुनाते हुए कहा, "डा० चौधरी भागे हुए हैं। वे फरार थे। उन्होंने कलकत्ते में एक अंग्रेज की हत्या की और भाग गए। उनका नाम भी और है।"

"क्या ?"

"रजनीकान्त मुकर्जी !"

"तूने कैसे जाना ?"

"उनके दल के लोगों ने बताया। दीदी, वे मेरे कहने से ही उस काम में गये और उन्होंने एक व्यक्ति के द्वारा सन्देश देते हुए कहलवाया—'शुभदा से कहना मैं फिर लौट गया हूँ कर्तव्य-पालन के लिए।' "

"तो वे पकड़े गये ?"

"नहीं, भाग गये हैं, शायद बर्मा की तरफ गये हैं।"

"सुना है बर्मा पर तो जापानियों का अधिकार हो गया है।"

"मैं वापस लौट आई।"

"और पीयूषदासी ?"

"वह अपने एक निकट-सम्बन्धी के पास रह गई। वह बहुत दुखी है।"

"अब तेरा क्या इरादा है ?"

"कुछ नहीं, अब मैं उसी पथ में जाऊँगी। मेरे ही कहने से वे

गये हैं।"

"यदि इस युद्ध में अंग्रेज हार गये तो वे शीघ्र लौटेंगे।"

"शायद !"

"क्या अब आगे नहीं पढ़ेगी ? तेरा परीक्षा-परिणाम आ गया है। तू प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास हुई है।"

"नहीं, मैं भी उसी दिशा में जाऊँगी दीदी, केवल तुमसे आज्ञा लेने आई हूँ," शुभदा ने रुक-रुककर प्रार्थना-भरे स्वर में कहा। फिर बोली, "बंगाल में स्त्रियों का एक क्रान्तिकारी दल बना है, मैं उसकी सदस्या हो गई हूँ।"

"बिना मुझसे पूछे ?" शेफाली ने दुखित स्वर में कहा।

शुभदा ने कहा, "मैं जानती हूँ तुम इस नेक काम से प्रसन्न होगी, इसीलिए। यही तुम्हारी अब तक की शिक्षा है।"

शेफाली ने शुभदा को गले से लगाकर गद्‌गद् स्वर में कहा, "शुभदा···" इतना कहकर उसका गला भर आया; उसकी आँखों में आँसू छलछला उठे। सारी पुरानी स्मृतियाँ उसके भीतर जाग उठीं। उसे लगा जैसे शुभदा का जाना सदा के लिए जाना है। इस भोली लड़की का मार्ग अभी कुछ भी बना नहीं है। न जाने क्या हो, कितना कष्ट उठाना पड़े और क्रान्तिकारी मार्ग तो और भी बीहड़ है, और भी दुरूह है।

यह सब सोचकर उसने एक बार फिर कहा, "देख शुभदा, मुझे यह सब-कुछ अच्छा नहीं लगता। अब पीयूषदासी को उसके रहने की जगह मिल गई है। दुखी-सुखी जैसे भी हो वह रहेगी। उसमें अब तुझे कुछ भी नहीं करना है। वैसे हम कहाँ तक किसके सुख-दुख में हाथ बँटा सकते हैं ? सारा संसार ही तो दुखी है !"

शुभदा ने आश्चर्य में भरकर कहा, "यह तुम्हारा मेरे प्रति अगाध स्नेह ही है जो तुमसे ऐसा कहलवा रहा है। नहीं तो कोई भी ऐसा दुखी है जिसे देखकर तुम्हारा मन न पसीजा हो और तुमने सीमा से

बाहर जाकर उसकी मदद न की हो ? पीयूषदासी के पास रहने में भी तो तुम्हारा ही संकेत था।"

"हाँ हाँ, पर मैं अपनी शुभदा को नहीं जाने दूँगी," शेफाली ने प्रेम-विभोर होकर उत्तर दिया।

प्राणनाथ ने सुना तो उसने भी शेफाली का ही समर्थन किया। उसने कहा, "शेफाली-जैसी बहन, माँ तुम्हें नहीं मिलेगी। वैसे भी मैं चाहता हूँ हम लोग इस सम्पूर्ण देश को, इसके निवासियों को एक समझें। तुम्हें मालूम है हमारा यह स्वतन्त्रता का संग्राम किसी प्रान्त-विशेष का नहीं है, सारे भारतवर्ष का है। इसलिए भारतवर्ष का हर नागरिक हमारा भाई-बन्धु है।"

शेफाली ने प्राणनाथ को उत्तर देते हुए कहा, "शुभदा ऐसी नहीं है, प्राणनाथ बाबू। मैं उसे बहुत दिनों से जानती हूँ।"

शुभदा कुछ भी न बोली। वह अपने ही ध्यान में डूबी हुई थी। उसने प्राणनाथ की तरफ तेज़ नज़रों से देखते हुए कहा, "जाने दीजिए, यह मेरा और दीदी का काम है, आप क्यों बीच में पड़ते हैं ?"

प्राणनाथ झेंप गया। उसने कुछ भी नहीं कहा, इधर शेफ़ाली हस्पताल चली गई। शुभदा की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। उसे लग रहा था, उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ जा रहा है। वह दिन-भर अपने मन में डूबी सोचती रही। रह-रहकर उसे अपनी दुर्दशा तथा बंगाली युवतियों की दृढ़ प्रतिज्ञा का ध्यान हो आता। वह सोचती—'आखिर मेरे जीने का उद्देश्य और क्या हो सकता है ? क्या शादी कर लेना, क्या फिर एक गृहस्थी बसाकर बच्चे पैदा करना और मर जाना ? नहीं, नहीं। मैं ऐसा नहीं करूँगी। मैं ब्याह जैसे झंझट में नहीं पड़ूँगी। मैं अविनाशचन्द्र दास या प्राणनाथ या गिरधर किसी से भी शादी नहीं कर सकती। यह फिज़ूल है। यह मेरा रास्ता नहीं है। मेरा रास्ता तो निश्चित है, साफ है। मैं उसी पर चलूँगी। जिन विश्वासों ने मेरे देश की जड़ों को हिला दिया है, मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दिया, उन्हें पशु की तरह, निरीह

प्राणी की तरह भूखे मार डाला है, मैं वह सब अब नहीं रहने दूँगी। बूँद-बूँद करके तालाब भरता है। एक-एक प्रयत्न मनुष्य के जीवन और उसके इतिहास को बदल देता है। मैं यदि इतिहास नहीं बदल सकती तो खुद अपनी आहुति तो दे ही सकती हूँ, एक नया रास्ता तो बना ही सकती हूँ। मुझे जाना होगा। मैं रुक नहीं सकती। मेरी बहन का भी यही आदेश है। बहन ने सारा जीवन रोगियों की सेवा में बिताया है, उसके तप-त्याग का उदाहरण मेरे सामने है। वे प्रेमातिरेक में भरकर रास्ता भूलकर मुझे रोक रही हैं, पर मुझे रुकना नहीं है; मुझे जाना है। मुझे क्रान्तिकारी दल के द्वारा इस सम्पूर्ण देश को मुक्त कराना है। मुझे देश की दरिद्रता को दूर करना है। मैं वही करूँगी। मैं जाऊँगी।'

शाम के समय शेफाली ने आकर शुभदा को अनमना पाया। खाना खाते समय उसने पूछा, "तू उदास है शुभदा! देख तेरे कालिज के प्रिन्सिपल का एक पत्र आया है। अरे, मैं तो भूल ही गई थी। ले, उसने तुझे बधाई भी भेजी हैं; कल बुलाया भी है। जा, कल जाकर प्रिन्सिपल से मिल ले। एम० ए० में जो विषय लेने हों उनसे फैसला कर ले।" यह कहकर उसने प्रिन्सिपल का वह पत्र उसके सामने रख दिया।

शुभदा ने वह पत्र नहीं उठाया। दूर से ही उसने पढ़ा और कहने लगी, "दीदी, आखिर हमारे जीवन का क्या उद्देश्य है? क्या ब्याह कर लेना, बच्चे पैदा करना और एक दिन मर जाना?"

"जो सब करते हैं वही तो हमको भी करना होगा।"

"पर तुमने तो नहीं किया।"

शेफाली थोड़ी देर के लिए चकित रह गई। फिर कहने लगी, "सबके लिए एक ही रास्ता नहीं होता शुभदा!"

"पर मैं तुमसे अलग कैसे जा सकती हूँ?"

"पर मैं कब कहती हूँ, तेरा रास्ता अलग है। यह तो पढ़ने की

उमर है। पढ़-लिखकर जैसा चाहे करना। कोई रोकता थोड़े ही है !" शेफाली ने स्नेह-भरे नेत्रों से शुभदा की तरफ देखकर कहा।

"पर पढ़ने-लिखने का उद्देश्य यही तो है कि आदमी में भला-बुरा जानने की बुद्धि हो जाय। दीदी, मैं तुमसे सच कहती हूँ कि मैं जिस दल में शामिल होने जा रही हूँ वह मेरे उद्देश्य के सबसे अधिक निकट है।"

"क्या ?"

"क्रान्तिकारी दल के प्रयत्नों के द्वारा देश को स्वतन्त्र करना।"

"पागलपन है शुभदा, क्या दो-चार अंग्रेजों की हत्या से देश स्वतन्त्र हो सकता है ? इससे तो गांधीजी का मार्ग ही भला है। आज सारा देश उनकी नीति का अनुयायी है। उनका प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है। सरकार भी सशंक होकर उधर देख रही है। इतने पर भी कोई उनसे द्वेष नहीं करता। तुझे यदि काम ही करना है तो इधर काम कर। मैं कुछ भी नहीं कहूँगी। मैं मानती हूँ स्त्रियों का क्षेत्र भी उतना ही विशाल है जितना पुरुषों का। आज भी अनगिनत स्त्रियाँ देश का काम कर रही हैं, जेल जा रही हैं। तो क्या तू समझती है उनका काम व्यर्थ है ? मैं नहीं समझती बंगाल की स्त्रियों का ऐसा कौनसा दल है जो अब काम करके सफलता पाने की आशा करता है। और फिर जब पुरुष सफल नहीं हुए तो स्त्रियाँ कैसे सफल हो सकती हैं ? मैंने तेरी बातों पर खूब गौर किया है। मेरे विचार में तेरा यह प्रयत्न एकदम बिना विवेक का है। डा० चौधरी ने बहुत मूर्खता की कि वे एक अंग्रेज की हत्या करके बर्मा भाग गये। तू सोच उनके इस काम से किसको लाभ हुआ। कई-एक युवक इस एक अंग्रेज के बदले फाँसी पर लटका दिए जायँगे; और कुछ नहीं होगा।"

शुभदा ने वैसे ही उग्र होकर तर्क किया, "तो तुम समझती हो कि एक क्रान्तिकारी देशभक्ति में किसी से कम है। क्या यह उसका देशभक्तिपूर्ण साहस पूजा के योग्य नहीं है कि वह अपने देश के लिए

आत्मदान करता है ?"

"साहस तो अवश्य पूजा के योग्य है, किन्तु यह साहस ठीक दिशा में नहीं है। देश के करोड़ों व्यक्तियों में दस-पाँच के क्रान्तिकारी होने से कुछ भी होना-हवाना नहीं है। यही सोचकर अरविन्द घोष जैसे क्रान्ति-कारी तपस्वी हो गये। यही मार्ग डा० चौधरी ने अपनाया था, परन्तु तूने उन्हें उकसाकर फिर उल्टे मार्ग पर डाल दिया। मेरा तो अपना विचार है अरविन्द-जैसे तपस्वी ने भी हिंसा के इस मार्ग को देश के लिए कल्याणकारी नहीं समझा।"

शुभदा को लगा जैसे सचमुच पचास-सौ अंग्रेजों की हत्या से कुछ नहीं होगा। दीदी की बातें निस्सार नहीं हैं। उसे अपने सारे तर्क व्यर्थ लगे। वह बहुत देर तक सोचती रही। इसी समय शेफाली ने फिर कहा—

"तू सोच ले। फिर भी यदि तुझे मेरी बातें सारहीन और अपनी महत्त्वपूर्ण लगें तो मैं तुझे नहीं रोकूँगी !"

इतना कहकर शेफाली बाहर से आये किसी व्यक्ति से मिलने चली गई। लगभग पन्द्रह मिनट बाद जब लौटकर आई तो देखा शुभदा वैसे ही ठोड़ी पर हाथ रखे बैठी है। उसे शेफाली के आने का भी ज्ञान न हुआ। शेफाली चुपचाप उल्टे पाँव लौट गई। उसने मुनासिब समझा कि शुभदा को पूरी तरह सोचने का मौका दिया जाय। वह जाकर अपने आसन पर बैठकर उस दिन का समाचारपत्र पढ़ने लगी।

शेफाली प्रत्येक काम को अपने ढंग से सोचती, अपने ढंग से करती। यदि सब लोग अपने-अपने ढंग से सेवा करने का व्रत ले लें तो देश का सुधार और उद्धार जल्दी हो सकता है।

उन दिनों अंग्रेज-सरकार की तरफ से भारत को स्वतन्त्रता देने के जो प्रयत्न हो रहे थे और हिन्दू-मुसलमान जो चील-गिद्ध की तरह अपनी माँग की लाश पर लड़ रहे थे उसके भीतर भी उसे लग रहा था कि यदि देश को पूरी तरह मानसिक रूप में स्वस्थ बनाये बिना

स्वराज्य मिल गया तो भी ये लोग आपस में ही लड़ मरेंगे।

स्त्रियों के सम्बन्ध में उसका विश्वास था कि विवाह स्त्री के लिए आवश्यक नहीं है। कोई चाहे तो बिना विवाह के भी रह सकती है। वह अपने लिए कोई ऐसा काम चुन ले, जिसमें उसकी सारी मानसिक शक्तियाँ लिप्त हो जायँ; जिसमें उसे अवरुद्ध सेक्स से उत्पन्न मानसिक विश्रृंखलता का शिकार न होना पड़े। उसे ऐसा न लगे कि यह काम जबर्दस्ती उसके सिर पर लादा गया एक बोझ है। रोगियों की सेवा उसके जीवन का परम लक्ष्य था, इसी में अपने को घुला-मिला देना वह उचित समझती थी। उसने बातों-ही-बातों में एक दिन प्राणनाथ को बताया था कि अब सेक्स का कोई अंश उसकी चेतना को उत्तेजित नहीं करता। जब इस प्रकार की घटना घटती है तब विभिन्न रोगियों के चित्र, उनकी पीड़ा, उनकी चीख-पुकार उसके सामने आ जाते हैं। मनुष्य का सबसे बड़ा कौशल उसके स्वस्थ रहने में है। जब वह रोगी होकर विवश हो जाता है तो समझना चाहिए कि उसने जीवन-जैसी निर्मल वस्तु के साथ अत्याचार किया है।

हस्पताल तेजी से चल रहा था। सभी अमीर-गरीब घरों की स्त्रियाँ उससे लाभ उठाती थीं। बनिस्बत पहले के अब उसका काम भी बढ़ गया था। बँगला प्रसूतिगृह के पास होने के कारण सुबह, शाम, रात, सभी समय उसे रोगियों को देखने जाना पड़ता था। यही सब सोचकर उसने अपनी दो सहायक लेडी डाक्टरों की ड्यूटी लगा दी थी। इतने पर भी काम इतना अधिक था कि दो और लेडी डाक्टर रखने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। राममोहन ने उसके सम्बन्ध में पत्रों में भी विज्ञापन दे दिया था। जब तक वैसा प्रबन्ध नहीं हो रहा था तब तक के लिए और भयंकर केस की हालत में उसका वहाँ होना जरूरी था।

शुभदा ने अन्त में प्रयाग जाकर आगे पढ़ने का निश्चय किया। शेफाली ने सहर्ष अनुमति दे दी।

इधर एक रात को हस्पताल से लौटकर शेफाली अपने कमरे में आराम कर रही थी कि नौकर ने आकर सूचना दी—

"सेठ रामकुमार आपसे मिलने आए हैं।" शेफाली सेठ रामकुमार का नाम सुनकर चौंकी। पहले उसकी इच्छा हुई कि कह दे—पूछो क्या काम है? पर न जाने क्यों इतनी अशिष्टता दिखाने का उसका मन न हुआ। वह स्वभाव से दयालु थी और शत्रु पर भी उसका हृदय अवसर आने पर कोमलता से भर जाता था। कटुता, कठोरता, अशिष्टता उसके स्वभाव में नहीं थे। उसके सामने उस समय की सारी घटनाएँ प्रत्यक्ष हो गईं। उसने एकदम कह दिया, "बुला लो।" इसके साथ ही वह मिलने वाले कमरे में आ बैठी।

रामकुमार चुपचाप आकर हाथ जोड़कर बैठ गया और बोला, "मैं अपनी मूर्खता के लिए क्षमा माँगने आया हूँ शेफाली देवी!"

"मेरे लिए इतना ही बहुत है कि आपको यह अनुचित लगा। वैसे मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ—निर्बल, जिस पर कोई भी स्वतन्त्र होकर अत्याचार कर सकता है।"

"नहीं, मुझे घोर दुख है मैंने आपके चरित्र को नहीं जाना। आज मैं वही अपराध क्षमा कराने आया हूँ।" इसके साथ ही उसने शेफाली की फीस का चैक उसके सामने रख दिया और चुपचाप हाथ जोड़कर कमरे से बाहर निकल गया।

शेफाली जब तक मना करे तब तक वह बाहर निकलकर मोटर में भी बैठ गया था। मनुष्य के चरित्र का यह नया रूप था, जिसमें उसके पाप वेदना की आग में जलकर शुद्ध हो जाते हैं। कुछ मनुष्य स्वभावतः अच्छे होते हैं और बाहरी विकारों के कारण कभी-कभी उनमें दुर्बलता आ जाती है। वह आघात पाकर अपनी पुरानी स्थिति को पहुँच जाते हैं। रामकुमार उन्हीं में था। कुछ स्वभावगत संकोच, निर्बलता, तृप्ति के स्वप्नों के प्रति साहस का अभाव और प्रतिक्रिया में पूर्व-स्थिति का ग्रहण—इन्हीं सब बातों ने रामकुमार को शेफाली से क्षमा माँगने को

विवश कर दिया। अन्यथा वह भी डटकर अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रतिरोध पाकर भड़क उठता और नये हथकण्डों से काम लेकर शेफाली को तंग करता।

शेफाली को ऐसे अनुभव भी हुए जबकि उसे गुण्डों से जान छुड़ाना भारी हो गया था। वे अनुभव उसके कालेज के समय के थे। वही सब सोचती वह अपने बरामदे में खड़ी रही। उसके बाद वह लौटकर अपने कमरे में आ बैठी। उस समय उसने देखा कि प्राणनाथ सामने खड़ा है—नमस्कार करने की मुद्रा में चुपचाप। शेफाली उठी और हाथ पकड़कर उसने प्राणनाथ को अपने पास ही काउच पर बिठा लिया।

दोनों बहुत देर तक चुप बैठ रहे। अन्त में शेफाली ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—

"मैंने निश्चय कर लिया है प्राणनाथ बाबू !" इसके साथ ही उसने प्राणनाथ पर काम-कला से अनभिज्ञ एक नारी की तरह कटाक्ष किया और मुस्करा दी।

"कृतार्थ हुआ शेफाली ! निश्चय ही तुम्हारे बाहरी सौन्दर्य से तुम्हारा हृदय अधिक महान् और सुन्दर है।"

"जितना जल्दी हो सके।"

"मुझे क्रान्तिकारी के केस के लिए बनारस जाना है—आज से आठ दिन बाद। मैं चाहता हूँ उससे पूर्व।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो तुम्हारी ही हूँ प्राणनाथ !" प्राणनाथ गद्‌गद् हो उठा। न जाने कब शुभदा ने प्रवेश करके उन्हें चौंका दिया।

वह बोली, "जीजी, मैंने प्रयाग-विश्वविद्यालय में एडमीशन ले लिया है। चिट्ठी आ गई है। ओह, प्राणनाथ बाबू, आप भी हैं।"

"तो तुम कब जा रही हो ?" प्राणनाथ ने पूछा।

"जितनी जल्दी हो सके; पन्द्रह दिन हैं।"

"मैं भी अगले सप्ताह बनारस जा रहा हूँ। तब तक यह काम भी

हो जायगा।"

"कौनसा ?"

दोनों मुस्करा उठे। शुभदा समझ गई। उसने प्रसन्नता प्रकट की।

दूसरे दिन विवाह के निमन्त्रण-पत्र छपे। तैयारियाँ होने लगीं। राममोहन और साधना ने सुना तो वे बहुत प्रसन्न हुए। साधना ने स्वयं तैयारी की। राममोहन ने अपनी ओर से एक पार्टी देने का निश्चय किया। साधना ने गहने बनवाने, साड़ी खरीदने आदि का काम शुरू कर दिया, यद्यपि शेफाली की इच्छा थी कि विवाह बिलकुल सादगी से हो।

शुभदा के तो जैसे पर लग गये हों, खुशी के मारे! वह दिन-भर फूली-फूली सब प्रबन्ध करती। जिसने सुना वही बधाई देने और सेवा पूछने आया। रामकुमार ने विवाह में एक मोटर देने की सूचना दी। तैयारियाँ होने लगीं।

शेफाली को रह-रहकर हीरादेई का खयाल आता। न जाने वह कहाँ होगी, कैसी होगी? गिरधर उसका ध्यान भी रखता होगा? उधर वह नियमानुसार हस्पताल जाती और रोगियों की सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती। उसे हस्पताल से एक मिनट का भी अवकाश न मिलता। शेफाली ने अपने खर्च से हस्पताल के साधारण कर्मचारियों के कपड़े बनवाये, पर वह स्वयं उन्हीं खादी के कपड़ों में थी। जब साधना ने बाजार से लाकर एक-से-एक बढ़िया साड़ियाँ, मोतियों-जड़े हार और जड़ाऊ गहने उसके सामने पसन्द करने के लिए रखे तब उसने उन सबको छुआ तक नहीं और बोली—

"तू क्या समझती है, मैं पन्द्रह साल की लड़की हूँ? मैं इनमें से एक भी चीज़ न लूँगी। मुझे सिर्फ खादी की साड़ी चाहिए, गहना बिलकुल नहीं।"

"यह नहीं हो सकता जीजी!"

"जो हो सकता है मैं जानती हूँ साधना; ले जाओ इन सबको।"

दूसरे दिन आठ बजे प्रातःकाल विवाह होने जा रहा था। बँगले

के सामने कम्पाउण्ड में शामियाना लगा था। बिजली की बत्तियाँ लग चुकी थीं। दिन में ही बड़े सुन्दर शिक्षाप्रद फोटो लगा दिये गए थे। विवाह-मण्डप बनाकर पंडित लोग चले गए थे। केले, आम, जामुन की बन्दनवारें मण्डप के चारों ओर झूल रही थीं।

शेफाली दिन-भर के हस्पताल के काम से थककर सोने जा रही थी कि इसी समय धड़धड़ाता राममोहन आया और आकर कुर्सी पर बैठ गया। राममोहन जैसे कुछ कहना चाहता हो। पर वह रह-रहकर अचल-सा उठता।

शेफाली ने देखा तो बोली, "कहिए राममोहन बाबू ?"

"आपको एक कष्ट देना है।"

"हाँ कहिए, मैं बहुत थक गई हूँ आज !"

"क्षमा कीजिए, आपके पूज्य पिताजी का नाम और गाँव पूछना चाहता हूँ।"

"क्यों, ऐसी क्या बात है ?" इतना कहकर उसने काँपते हुए अपने पिता का नाम तथा गाँव बता दिया। राममोहन उछल पड़ा। उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसने शेफाली के पिता का पता, बरात का निमन्त्रण, पहली बातचीत के पत्र, शेफाली का फोटो सब उसके सामने मेज पर रख दिए।

"यह क्या है ?"

"शेफाली, अब भी कोई सन्देह है ? मुझे खेद है कि मेरे पिता के कारण आपके परिवार को और आपको इतना कष्ट सहना पड़ा।"

शेफाली ने कुछ कठोर होकर काँपते स्वर में पूछा, "मैं कुछ भी नहीं समझी !"

"आप मेरी परिणीता पत्नी हैं। प्राणनाथ के साथ यह विवाह नहीं हो सकता। यह मेरा सौभाग्य है। ओह, आज मैं कितना खुश हूँ ! कितना सौभाग्यशाली !"

इतना कहकर वह उद्वेग में भरकर शेफाली के सामने जा खड़ा

हुआ। उसकी इच्छा हुई वह जाकर शेफाली का आलिंगन कर ले; उसे अपने भुजपाश में बाँधकर शेफाली के सौन्दर्य से पागल बन जाने वाली अपनी चिर-अभिलाषाओं को चुम्बन द्वारा शान्त करे; और न हो तो इसी विवाह-मण्डप में बड़ी शान के साथ नये सिरे से भाँवरें डाल ले। उसे विश्वास था कि शेफाली उसकी है, अब उसे उससे कोई नहीं छीन सकता—वह शेफाली, जिसके रूप-सौन्दर्य, शील-स्वभाव ने उसे पागल बना दिया है। आज वह रंक को राज्य मिलने वाले मनुष्य की तरह है। इसी तरह की और बहुत सी बातें उसके दिमाग में आ रही थीं। वह आगे बढ़ा और चाहता ही था कि वह शेफाली का हाथ पकड़ ले, उससे एक बार अपने अपराधों की क्षमा माँगे, उसके चरणों में सिर धर दे कि शेफाली एकदम दूर हट गई।

"मैं वह विवाह स्वीकार नहीं करती।"

राममोहन को धक्का-सा लगा। वह चौंक उठा। बोला वह एकदम कुछ भी नहीं। पर वह सोच न सका क्या ऐसा भी हो सकता है? विवाह एक बार होता है। क्या भाँवरें पलट सकती हैं? उसने हृदय का साहस बटोरकर कहा—

"आप कानून से मेरी पत्नी हैं शेफाली! कानून आपको दूसरा विवाह करने की आज्ञा नहीं दे सकता। मैं आपको वह सब-कुछ दूँगा जो आप चाहती हैं। साधना आपकी बहन होकर, दासी बनकर रहेगी। वह आपके खिलाफ नहीं जा सकती। मैं···मैं आपका हूँ, सदा आपका रहूँगा।"

इतना कहकर वह जैसे उसके चरणों में झुकने लगा। शेफाली कठोर से कठोरतर होती गई। उसने कहा—

"मैं यह सब-कुछ नहीं सुनना चाहती। आप जाइए। जाइए आप!"

शेफाली का उत्तर सुनकर राममोहन थोड़ी देर के लिए स्तब्ध-विमूढ़ रह गया। वह सोच नहीं पाया क्या उत्तर दे, क्या कहे। 'क्या वह अपना अधिकार, जो बहुत प्राचीन काल से अनजाने में ही पुराने समाज-

शास्त्रियों ने उसे दिया है, त्याग दे ? नहीं, यह नहीं हो सकता। प्राणनाथ से शेफाली विवाह नहीं कर सकती। वह कानून की शरण लेकर इस विवाह को रोक सकता है। वह प्राणनाथ के सामने सारी स्थिति खोलकर रख देगा। प्राणनाथ उसका मित्र है, उसे भी यह स्वीकार न होगा कि वह ब्याही हुई एक स्त्री से विवाह करे। यह सारा दोष शेफाली का है। इसे सब-कुछ ज्ञात था, फिर भी इसने विवाह की स्वीकृति दे दी।...'

ओह, कितना बड़ा अनर्थ होने जा रहा था ! क्या कभी ऐसा हुआ है कि एक विवाहिता नारी पति के रहते दूसरे को पति-रूप में वरण करे ?

फिर उसे ध्यान आया—'इसमें उसका क्या दोष है। हमारे परिवार वालों ने—मेरे पिता ने ही—इसके साथ कौन नेकी की है, जो हम लोग विवाहिता पत्नी को केवल प्रतिष्ठा के डर से छोड़ आये। कभी सुध भी न ली। ओह, मैं कितना पतित हूँ। मैंने पिता के मरने के बाद कौनसा भला काम किया, एक और लड़की से विवाह कर लिया और इसे भुला दिया। आज जब यह सब तरह से योग्य है तो मैं दावा करता हूँ। कितना गलत है मेरा यह दावा ! तो क्या यह विवाह होने दूँ ? कितनी भोली है यह शेफाली ! कितनी सच्चरित्र, आज तक इसने अपना पल्ला कहीं भीगने नहीं दिया। नहीं, मैं ही अत्याचार करने जा रहा हूँ। यह मेरा अत्याचार है। मेरी पत्नी है, फिर मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसके इस काम में विघ्न बनूँ। तो...तो क्या मैं...इतनी सुन्दर, सुशील स्त्री को हाथ से जाने दूँ...जबकि मेरे ज़रा से प्रयत्न से ही यह मुझे मिल सकती है ! साधना इसके सामने क्या है ? नहीं, यह नहीं हो सकता।'

वह एकदम नरम पड़ गया। फिर आगे बढ़ा। उसने कहा, "सुनिए शेफाली, मैं मानता हूँ मेरे माता-पिता का दोष है, पर इसमें मेरा क्या दोष था ? मैं क्षमा चाहता हूँ; क्षमा कर दो। यह सब वैभव-सम्पत्ति तुम्हारी है, तुम्हारे चरणों पर है। तुम्हें कोई कष्ट न होगा। मैं लिखे

देता हूँ ; मुझसे लिखा लो।"

शेफाली के सामने उस समय का सारा दृश्य घूम गया। उसके विवाह में किस तरह पिता ने झूठ-सच बोलकर दस हज़ार रुपया इन लोगों को देने के लिए इकट्ठा किया। किस तरह इसी बीच में उसके पिता को पुलिस वाले पकड़कर ले गए और लोगों के रोते-धोते रहने पर भी ये निर्दयी बराती विवाह के बाद बरात लौटा लाये। और इसके बाद इनमें से किसी ने भी उसकी सुध न ली। और यह महाशय, जो आज उस पर दावा करने चले हैं, एक और लड़की से ब्याह करके निश्चिन्त हो गए। नहीं, यह नहीं हो सकता। वह फिर इसके घर नहीं बैठ सकती, मैं इसके साथ नहीं जा सकती।...

थोड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ा रहा फिर बोला, "कहिए तो क्या यह आपका अन्तिम फैसला है ?"

"हाँ, इसमें कुछ भी फेर-बदल नहीं हो सकता।"

"पर तुम कानून की दृष्टि से प्राणनाथ से विवाह नहीं कर सकतीं।"

वह चुप रही।

"तो मेरे साथ रहना तुम्हें स्वीकार नहीं है ?"

उसने एक बार फिर दृढ़ता से उत्तर दिया, "नहीं, तुम्हारे पत्नी है।"

"वह तुम्हारी दासी होगी।"

"मैं किसी को दासी बनाना नहीं चाहती। तुम जाओ राममोहन, जाओ, मेरा मार्ग निश्चित है।"

राममोहन घूरता हुआ चला गया, जैसे वह बदला लेने की भावना से भरा हुआ हो। शेफाली ने सुना, मोटर का दरवाजा खट से बन्द हो गया। वह अपने कमरे में आकर आसन पर गिर गई; तकिए में मुँह छिपा लिया और सोचने लगी—'नारी क्या मनुष्य की तृप्ति के लिए ही है ? क्या उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है ? मैंने आज जाना पूँजीवादी मनुष्य, चाहे जितना भी परोपकारी बने, दयालु बने; पर अपना

स्वार्थ टकराने पर अपना रूप भूल जाता है; राक्षसी वृत्तियाँ उसे दबोच लेती हैं। यह राममोहन प्रसूतिगृह का संचालक, दानी, अपने स्वार्थ के आघात की एक चोट भी नहीं सह सका। शुभदा ठीक कहती है—पूँजीवादी पाशविकता से मुक्त नहीं हो सकता। ओह मेरा कितना पराभव है !'

रात बीत रही थी, घड़ी टिक्-टिक् करके आगे बढ़ रही थी। बारह, एक, दो, तीन बज गए। शेफाली अपने निश्चय पर मजबूत होती जा रही थी, जैसे हर घड़ी और आने-जाने वाली हर साँस उसे एक निश्चित दृष्टि-बिन्दु की ओर ले जा रही हो।

वह उठी और शुभदा के कमरे में गई। शुभदा उस समय नींद में लिपटी सो रही थी। शायद वह बहन की शादी का स्वप्न देख रही थी।

"शुभदा, शुभदा, शुभदा, उठ !"

शुभदा ने करवट बदली, और फिर सोने जा रही थी कि आँखें खोलकर उसने देखा सामने चिन्ताग्रस्त जीजी खड़ी है। वह चैतन्य हो गई।

"कहिए ?"

"हमको इसी समय चलना होगा।"

हैरानी, विस्मय, कातरता, दैन्य, मानो सभी उसके हृदय में एक साथ भर गए। वह पूछ बैठी, "कहाँ ?"

"उठ, मैं यहाँ नहीं रह सकती। उठ !" और इसके साथ ही राममोहन के साथ बीती सारी घटना उसने शुभदा को सुना दी।

शुभदा ने सुना तो कुछ देर के लिए चुप हो गई और चुपचाप उठकर खड़ी हो गई।

"चलो जीजी, मैं तैयार हूँ।"

दोनों ने एक-एक अटैची में आवश्यक सामान रखा और बाहर निकल पड़ीं—पीछे के दरवाजे से।

उन्होंने देखा रसोईदारिन तथा अन्य नौकर अपनी-अपनी कोठरियों

के आगे सो रहे थे। मोहन पण्डाल में सो रहा था, इस खयाल से कि कहीं कोई कुछ उठा न ले जाय। आस-पास कभी-कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। उन्हें हस्पताल के सामने से होकर ही गुजरना था। वहाँ बाहर लान में देखा कि अधनंगी नौ मास का पेट लिये एक स्त्री पड़ी है; रह-रहकर कराह उठती है, फिर सो जाती है।

शेफाली ने उसे देखा तो स्वभाववश बोली, "कोई स्त्री प्रसूतिगृह में दाखिल होने आई है, शायद बहुत रात होने के कारण..."

"होगा कोई, चलिए।"

पास से निकलने पर देखा कि हीरादेई है; सो रही है।

"हीरादेई ?"

"हाँ !"

"चलो, चलो जीजी ! फिर गाड़ी नहीं मिलेगी।"

शेफाली ने एक नज़र हीरादेई पर डाली और दुख की साँस लेकर दोनों आगे चल दीं।

उन्हें लगा जैसे इस प्रसूतिगृह से एक तरह की बदबू उठ रही थी, उसकी ऊँची भव्य आलीशान इमारत की काली दीवारों में प्रकाश के अक्षर लिखे दिखाई दे रहे थे—'मनुष्य को बदलो !' लैम्प की रोशनी में बीच-बीच में कहीं अन्धकार और कहीं प्रकाश में वे दोनों आशा-निराशा के दोनों कदमों से डामर की सड़क पार करती जा रही थीं—दूर, बहुत दूर, किसी नये लक्ष्य को पाने के लिए, किसी नये मोड़ की तलाश में, जहाँ यह सब-कुछ न हो। समय के पंखों पर जहाँ विवेक नई जिन्दगी लिये उड़ रहा हो। वे जा रही थीं अपने चारों कदमों से रूढ़ियों को कुचलतीं, पुराना छोड़तीं नया नापतीं—हर नये मोड़ पर !

दूसरे दिन सबेरे ही मोटर-ताँगों से नागरिकों का दल आ रहा था। प्राणनाथ अपने कुछ मित्रों के साथ एक मोटर में आ गया। साधना की मोटर धड़धड़ाती पोर्टिको में आकर रुकी। पण्डित सामग्री लेकर आये और विवाह-मण्डप में रेखाएँ खींचने लगे। सारे वातावरण में उत्साह-उमंग और उल्लास भर रहा था। सब लोग शेफाली को ढूँढ रहे थे—डाक्टर शेफाली और शुभदा के लिए घर, दीवार, कोने, कमरे, सभी छान डाले गए। सारा वातावरण शेफाली के नाम की आवाज से गूँज उठा। इसी समय पुलिस को लेकर आता राममोहन दिखाई दिया। परन्तु वहाँ शेफाली कहीं नहीं दिखाई दी, न उसकी छाया शुभदा। कई दिनों तक कमरे की दीवारों से गूँज उठती रही—"शेफाली, शेफाली! डाक्टर शेफाली!"

× × ×

कुछ ही दिनों बाद 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के पन्ने उलटते हुए राममोहन ने एक विवाहित चित्र देखा, जिसमें नीचे लिखा था—

'बनारस में विवाहित डा० शेफाली और बैरिस्टर प्राणनाथ'।

उसके कुछ दिनों बाद ही प्रसूतिगृह का नाम लोगों ने पढ़ा—

'शेफाली-प्राणनाथ प्रसूतिगृह'।